॥ श्रीजिनायनमः ।

...चार्य देशभूषण जी मुनि महाराज का टिकैतनगर

में

के अवसर दिये गये दैनिक प्रवचन का सार

卐

मेरे एक छोटा भाई है खा पीकर आया करेगा, और सेवा कर रोज वापस चला जायगा, तब रोजाना ऐसा ही करने लगा तब स्वामी जी बहुत प्रशन्न हुये और कहा कि बड़ा अच्छा हुआ बाहर का झंझट बाहर ही निकल गया, तब ग्वाल आकर रोजाना खुली जगह में आकर चराने लगा, गाय बहुत दूध देती थी, दूध का बढ़ा हुआ देखकर सेवक ने कहा कि महाराज दूध व्यर्थ जाता है मैं पी लेता हूँ फिर बच जाता है सो बछड़े को पिला देता हूं और भी बचजाता है सो थोड़ा आप भी पी लिया कीजिए स्वामी बोले, कि मैं बन फ़ल खाने वाला आदमी दूध से क्या प्रयोज़न इस उपाधि में कौन पड़े हे प्रभू ! देखो कि यह प्रतिदिन उपाधि में फंसते हुये भी, अपने को उपाधि रहित समझता है।

शनैः शनैः वह सेवक गांव से देरकर आने लगा तब स्वामी ने विचार किया कि सामने की जमीन अच्छी है उसमें खेती किया जाय तब स्वामी ने उस जमीन में धान बोवा दिया जमीन अच्छी थी जिससे काफी धान पैदा हो गया, एक दिन अकस्मात् राज कर्मचारी आ निकले और खेत कि पूछ ताछ की तब ग्वाले ने जबाब दिया कि यह खेत विरक्तनंद स्वामी जी के हैं। मैं उनका नौकर हूँ कर्मचारियों ने स्वामी का नाम लिख लिया और राज दरबार में खेतों के स्वामी के नाम लिखवा दिया फसल खतम होते ही स्वामी से छठा भाग मांगा गया तब उन्होंने दे दिया, एक बार अकाल पड़ गया, फिर कर्मचारी टैक्स मांगने आये राज कि कड़ी आज्ञा थी जो टैक्स देनेमें आना कानी करे उसको तत्काल बांध लाना, सिपाहियों ने स्पष्ट उत्तर दिया कि महाराज आप हमारे पूज्य हो परन्तु राज आज्ञा से आप दरबार में चलो फिर क्या था स्वामी जी उनके साथ गए सन्यासी को कैद में देख नागरिक लोगों को आश्चर्य उत्पन्न हुआ झुंड के झुंड लोग उनको देखने को आए स्वामी जी अति संकुचित होते थे पर करें क्या आज उनकी स्थिति में कितना अन्तर पड़ा कहां तो संयास की स्वतंत्रता कहाँ कैद जब राजा ने सब कैदियों का फैसला सुनाकर विरक्तानंद स्वामी को पूछा तब स्वामी जी हाजिर किए गए, स्वामी जी से राजा बोले तेरे पास कितने खेत हैं।

स्वामी जी बोले, "दो"

राजा बोले त्यागी के खेत कैसे। स्वामी बोले मेरे लिए नहीं किन्तु गौ के निर्वाह के लिये राजा बोले, दोनों खेतों का टैक्स अतएव क्यों नहीं दिया। स्वामी बोले इस साल पैदा न होने के कारण से। राजा बोले ग्राम के सभी किसानों का टैक्स आ चुका है तेरा नहीं आया तुझको उचित दन्ड मिलना चाहिये। वहां दन्ड की यह प्रथा थी कि अपराधी को धूप में वस्त्र हीन (लँगोटी मात्र) पहना कर खड़ाकर उसके दोनों हाथ-बांध कर ऊपर उठाकर शिर के पीछे की ओर कर दिए जाते थे और गर्दन के पीछे करे हुए हाथों पर एक भारी शिला रख दी जाती थी। ठीक दुपहर थी वह भी गर्मी की उसी जगह विरक्तानन्द जी को उपरयुक्त दण्ड दिया गया उस वक्त की भास से पसीना बहने लगा आंखों से आंसू की धारा बहने लगी, सोचने लगे हे भगवन् नरक यातना क्या होगी इस समय स्वामी के सन्यस्थ में सचमुच धूल पड़ी।

अब ही विरक्त भेष शोभा देने लगा उनको

ऐसा अनुभव आज से पहले कभी नहीं हुआ था स्वामी के मन में अपने पाप या अज्ञान का फल इस असह्य पीड़ा से कांटा सा चुभ गया जैसे कोई मनुष्य पर अचानक कोड़ा पड़ने से चौंक पड़ता है उसी प्रकार स्वामी पड़ी हुई मार की वेदना को देखकर अज्ञान निद्रा में से चौंक पड़े और अपने किए हुए कृत्यों पर पश्चाताप करने लगे। ऐसा दुःख किसी महान् पातकी को भी नहीं होगा तुझको ऐसा दुःख भोगना चाहिये, या एकांत में प्रभू का ध्यान करना चाहिये ? कैसी विपल्वी माया कैसा उसका प्राबल्य संसार उपाधि छोड़ने को विरक्त हुआ ग्राम में रहा फिर बन में रहा फिर भी यही दशा इस संकट में डालने वाला कौन ? वे ही खेत जो गौ के लिये थे और गौ का दुध भी तो मेरे काम नहीं आता था केवल लंगोटी के लिये यह सब था इत्यादि, शरीर ने ही अपने हाथों से अपने को महान् संकट में डाल दिया खैर जो आ पड़ी उसको बिना भुगते छुटकारा नहीं ? स्वामीजी औरभी बातें विचारते हुए फिर सोचने लगे कि पहिले जब मैं कथा श्रवण के लिये जाता था तो महात्मा कहते थे कि यह देह जिसके भीतर जीव है वह भी अपना नहीं है। तब और कैसे हो सकते हैं ? जब मैं ब्रह्मण था। तो पुत्र वगैरह को अपना मानता था विरक्त होने पर उसकी चिंता मिटी इसी प्रकार खेत मेरे न होनेपर भी विपत्तिमें फंसना पड़ा है इन खेतों को अपने कहे उनका मालिक मैं कहलाया, यही मैं और 'मेरा' दोनों शब्दों से उपाधि बढ़ती है। उसकी जड़ मेरे मन में दृढ़तर जमी हुई थी अब मेरे दृष्टि गोचर हुई।

छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् अस्तु,

उसको जड़ से काट दूं अवश्य मेरी सब उपाधिऐं मिट जावें मैं सुखी हो जाऊँ। एकाएक वह चौका "आज मेरी उपाधि समूल नष्ट हुई" यह शब्द जोर से हँसकर बोल उठा उस समय गर्दन का पत्थर नीचे गिर पड़ा, इनकी यह दशा देख सिपाही तथा कैदियों को आश्चर्य हुआ, स्वामी बिना सिपाहियों से पूछे सीधे राजा के पास जाकर कहा जिसने मुझको यातना में गिराया वह लंगोटी ही है, लँगोटी लज्जा के लिए है लज्जा तभी तक है जबतक अहंता है सो तुम को देता हूँ मैं स्वतन्त्र हूँ, तुम मेरे गुरू इसलिए पूर्ण प्रेम से प्रणाम करता हूँ, सबके सामने नमस्कार कर कौपीन उतार कर फेंक दी दिगम्बर होकर चल दिया, वह सच्चे सुख का भोक्ता हो गया।

सारांश यह है कि जब तक उपाधि लँगोटी की तब तक उसको आत्मा अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति नहींहुई जब लँगोटी भी निकालकर फेंक दिया तब उसको पूर्ण सुख हुआ इसलिये संसार में जीव को संसार ही एक आत्मा साध में विघ्न डालने वाले सबसे बड़ी उपाधि है।

लाला बालचन्द जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया।

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख ८—८—५३ दिन शनिवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि समय की सार्थकता ही मुख्य है।
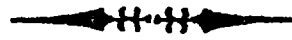
अदित्यस्य गता गतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहु कार्य भार गुरुभिः काले न विज्ञायते ॥
दृष्ट्वा जन्म जराविपत्ति मरणं त्रासश्च नोपद्यते।
पीत्वा मोहमयी प्रमादमदिरा मुन्मत्त भूतं जगत् ॥

सूर्य के उदय और अस्त गमना गमन के द्वारा दिन प्रति दिन आयु नष्ट होती जा रही है किंतु व्यापार व्यवहार संबंधि अनेक गुरुतर कार्य भारों का कारण मनुष्य को इसका पता नहीं रहता कि कितना समय बीत गया और उसे जन्म, बुढ़ापा, विपत्ति तथा मृत्यु को देखते हुए भी उनसे भय उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार यह समस्त जगत् प्रमाद रूपी मोहमयी मदिरा को पीकर उन्मत्त हो रहा है, अर्थात् वह अपने कर्त्तव्या कर्त्तव्य को विवेक से शून्य हो प्रमत्त की भांति अज्ञान निद्रा में सो रहा है।

ऐसी दशा में इस प्रमाद से सावधान होकर हमें विचार करना चाहिये कि हमारे जीवन का कितना समय चला गया जीवन के कितने वर्ष कम हो गये। विचारने पर पता लगेगा कि हमारा बहुत समय चल गया। समय बीता ही जा रहा है और आयु बहुत ही कम रह गई है। अतः मनुष्य को अपने जीवन का जो मुख्य लक्ष्य है, जो प्रथम कर्त्तव्य है, उसकी ओर ध्यान देना चाहिये, और अपने काम को शीघ्र बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

गुरुदेव ने मनुष्य की सार्थकता के बारे में व्याख्यान करते हुए कहा कि मुझे एक सुनी हुई दृष्टांत का याद आता है कि:—बंगाल की एक सुनी घटना है कि एक धनी सेठ के यहां एक दिन दूध बेचने वाली ग्वालिन आई और उसने दूध देकर मुनीम से उसकी कीमत मांगी मुनीम ने उससे कहा कि—पहले बजार का सौदा कर आ, घर जाते समय पैसा ले जाना। वह बेचारी उस समय चली गई तथा बाजार का काम करके फिर सेठ के यहाँ आई और मुनीम से पैसा मांगा। मुनीम कुछ कार्य व्यस्त थे। उन्होंने कहा अभी ठहरो। उस स्त्री ने दो तीन बार पैसा मांगा, परन्तु मुनीम जी वही

जवाब देते रहे। आखीर, जब सूर्यास्त होने को आया और मुनीम ने पैसा नहीं दिये, तब वह स्त्री दुःखित हृदय से बंगला में बोली—"आर बेला नाई" अर्थात् अब समय नहीं है, मुझे बहुत दूर जाना है, सूर्य अस्ताचल को जा रहे हैं सेठ जी भी उस समय पास में ही बैठे काम कर रहे थे। उस बँगालिन के लाचारी के शब्द उनके कानों में पड़े। उन्होंने मुनीम से कहकर उसके पैसे दिलवा दिये। सेठ जी के हृदय में उसकी वह वानी चुभ गई। उन्होंने उसी समय मुनीम से कहा—मेरा तलपट देखो और सब कारोबार बंद कर दो। मुनीम जी उनकी यह बात सुनकर आश्चर्य में पड़ गये और बोले—आप इस तरह क्या कर रहे हैं? सेठ जी ने कहा तुमने नहीं सुना, दूध वाली ग्वालिन क्या कह रही थी? वह कह रही थी कि—"आर बेला नाई"। बात बहुत सत्य है। जीवन सन्ध्या आ गई, भैया! तुझको भी अब समय कहाँ? इस प्रकार कहा? काम काज का सब प्रबन्ध करके सेठ जी घर से चल दिये और अपनी शेष आयु अहनिश भगवान के भजन में या आत्म कल्याण में ही अपने शेष समय को बीताने लगे।

हम लोगों को इस घटना पर विषेश रूप से ध्यान देना चाहिये कि हमारी आयु प्रतिक्षण बीत रही है। जिसकी उम्र चालीस पचास वर्ष की होगई, उनकी तो अधिकांश आयु बीत चुकी अब थोड़ी ही बाकी रह गई। जिसकी उमर छोटी है, उनका भी क्या भरोसा? मानव जीवन की पूर्ण आयु लगभग इस काल में सौ वर्ष की या और भी उससे कम साठ, सत्तर, अस्सी बताई गई है।

इसमें से बाल अवस्था वृद्ध अवस्था यौवन अवस्था इसमें से निकल जाने के बाद फिर मनुष्य आयु सिर्फ चौथी अवस्था मरन का ही आ जाती है। तब क्या कर सकता है? अर्थात् फिर मर करके जन्म मरन के चक्कर में भ्रमण करता रहता है। तब इस जीव को सुख कहां से आयेगा। सिर्फ इस पंचम काल में मनुष्य आयु कम से कम ८० वर्ष या साठ वर्ष या ७० वर्षकी होती है। इसमें दोनों बाल युवा अवस्था निकल जाने के बाद वृद्ध आ जाती है उसमें फिर भी मोह का जबरदस्त होने से ज्यादा तृष्णा बढ़ती है, परन्तु इसके मुंह से कभी भगवान का नाम लेने को भी मौका नहीं मिलता है, फिर विचारे आत्म कल्याण साधना करने को मौका कब मिलेगा? अर्थात् नहीं।

गुरुदेव कहते हैं कि:-यह मनुष्य पर्याय मिलना बहुत कठिन है? लाख चौरासी की फेरी पूरी करनेके बाद फिर एकबार पारी मनुष्य पर्याय की आती है? अगर इस पर्याय में आपका कुछ न बना तो फिर इस मनुष्य पर्याय का अवसर चुक जाने के बाद फिर लक्ष चौरासी योनि पूरा करने तक दुःख से रोना ही पड़ेगा। इसलिये हे संसारी जीवों! तुम ऐसे भयावने घोर जंगल में पड़े हुए हैं क्या इसमें रहते रहते तुझको भय नहीं लगता है?

गुरुदेव ने इस दुर्लभ मनुष्य पर्याय के बारे में एक दृष्टांत दिया कि किसी एक नगर में एक राजा राज करता था उस राजाके तीन सौ साठ रानियाँ थीं प्रत्येक रानी को राजा के पास जाने की बारी ३६० दिन के बाद एक बार आती थी। राजा एक दिन कहीं परदेश चला गया था और

उसी रात को आने वाला भी था। तब रानी ने अपनी दासी से कह दिया कि हम यहां सो जायँगे और जब राजा साहब यहां आवे उस समय मुझको जगा देना इतना कहकर रानी अपने अन्तःपुर में सो गई। रात को १० बजे के करीब राजा साहब आये और उसी रानी के महल में आकर सो गये। परन्तु रानी के कहे अनुसार दासी ने रानी को नहीं जगाया। क्योंकि अगर रानी को उठाने जायंगे तो राजा मेरे ऊपर नाराज होंगे इस भय से नहीं जगाया तब सुबह होते ही राजा साहब उठकर वहां से चले गये। बाद में रानी जगी और दासी से पूछा राजा साहब आये थे? उत्तर में दासी ने कहा कि हाँ आये थे। तब मुझको क्यों नहीं उठाया? दासीने कहा कि अगर आपको उठाती तो मुझ पर राजा साहब नाराज होते इस भय से आपको नहीं उठाया। तब रानी ने इस बात का बहुत अफसोस किया और दुःखी हुई और कहने लगी कि आज ही मेरी बारी राजा के पास जाने की थी अब बारी चूक गई अब फिर ३६० दिन पूरा होने के बाद मेरी बारी आवेगी। तब तक मुझको दुःख भोगना ही पड़ेगा इसी प्रकार इस संसारी जीव उत्तम मनुष्य पर्याय प्राप्त करने के बाद भी अगर इस मनुष्य पर्याय से कुछ आत्मसाधनरव्रत, नियम, सत्सँग, गुरु सेवा, परोपकार और चार प्रकारका दान इत्यादि को न करके अन्त में इसी प्रकार मनुष्य पर्याय को खो दिया तो फिर भी लक्ष चौरासी योनी भ्रमण करने के बाद फिर मनुष्य पर्याय का नम्बर लगेगा। इसलिए हे जीव तू अपने सु अवसर को मत खो!

सँसार में स्वार्थ और परमार्थ ऐसे दो मार्ग हैं इनमें से स्वार्थ मनुष्य प्राणी के साथ पहले से ही सम्बन्ध जोड़ता है और उसमें प्रवीण होनेसे मनुष्य अपने भरण-पोषणादि व्यवहारिक कार्यों को कर सकता है, वह स्वार्थ अर्थात् सँसार का प्रपँच यदि यथार्थ रूप से साधन करने आवे तो उससे अपने आप परमार्थ रूप उत्पन्न होता है।

प्रपँच अर्थात् व्यवहारिक व्यापार और परमार्थ अर्थात् आत्म तत्वज्ञान सम्बन्धी व्यापार जो मनुष्य प्रपँच को यथार्थ रीति से नहीं साध सकता उसको परमार्थ साधन अत्यन्त कठिन हो जाता है, परमार्थ को जानने समझने को पाठशाला रूपी कूँचि यह प्रपँच है प्रपँचमें कुशल हुआ मनुष्य सहज ही में परमार्थ को साध सकता है, प्रपँचमें (संसार व्यवहारमें) जितनी सावधानी और लगन रखने की आवश्यकता है उतनी परमार्थ में भी है, अतएव प्राप्ँचिक प्रसंग में किस भांति सावधान रहना उचित है, सो सुन!

वास्तविक विचार करने से इस संसार में कुछ भी सत्य नहीं है, जो जीव ध्यान अध्ययन धर्म द्वारा नित्य और सच्चा तत्व का अवलोकन करके वाह्य निवृत्ति का निरोध करके प्रवृत्ति का त्याग कर देते हैं, परमात्मा के साथ अपना ऐक्य करते हैं, वे सत्य आत्म तत्व को पाते हैं, संसार अनित्य है और इन्द्रिय सुख जो हैं हमेशा इस जीव को कष्ट के अलावा सुख तो तिल मात्र का भी नहीं है। परन्तु यह जीव अपने समय का बिलकुल ख्याल न करके रात दिन पर पदार्थों में अपने समय को यह संसारी

जीव खो देता है। मनुष्य पर्याय ऐसी अमूल्य वस्तु है जैसे एक बूँद पानी हौज से नीचे गिर जाने के बाद फिर लौटकर उस हौज में नहीं जा सकता है। उसी तरह मनुष्य पर्याय एक बार इस भव से निकल जाय तो फिर मिलना बहुत मुश्किल है।

हे जीव! तू एकेन्द्रिय पर्याय जब धारण किया था तब तुझको हेय और उपादेय का ज्ञान नहीं था, दो इन्द्रियों में भी समनस्क न होने के कारण तुझे वहां भी अपने कल्याण का साधन नहीं मिला तीन इन्द्रिय तथा चार इन्द्रियों में भी अपने साधन का सामग्री प्राप्त नहीं हुआ। पंचेन्द्रिय में पशु पर्याय धारण किया वहां भी अनेक प्रकार दुःख उठाना पड़ा तथा पराधीन होना पड़ा परन्तु आत्म हित का साधन नहीं मिला। अब बड़ी मुश्किल से पशु पर्याय से छुटकारा पाकर मनुष्य पर्याय में आया तब तू मिथ्यात्व के उदय से पशु के समान आचरण करके जिन्दगी भर पर की सेवा सुश्रुषा किया परन्तु भगवान का मार्ग और भगवान का कहा हुआ उपदेश से तेरी रुचि उत्पन्न नहीं हुई? क्योंकि मनुष्य पर्याय पाकर आत्म साधन को ख्याल नहीं किया, आप समान मूर्ख कौन होगा, जैसे मनुष्य बड़ी कठिनता से धन कमा करके अगर उसकी रक्षा न करके बे फिकर गाढ़निन्द्रा में सो जाता है। तब लुटेरा आकर सभी लेजाने के बाद जाग्रत होता है उसी तरह मनुष्य भव धारण करके विषय वासना में उसे व्यय किया अन्त में दुःख पाकर अनेक दीर्घ संसार में भ्रमण किया।

लाला रघुबरदयाल प्रेमचन्द जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया।

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख ९-८-५३ दिन इतवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि संसार बन्धन से छूटने के क्या उपाय हैं
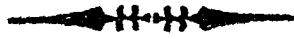
वेदान्तार्थ विचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम्।
ते नात्यन्तिक संसार दुःखनाशो भवत्यनु॥
त्यक्त्वाऽहं ममता भाव निश्चेष्ठो निरुपाधिकः।
धीरो ज्ञान कुठारेन छिन्ते संसार बंधनम्॥

शास्त्रों का अर्थ विचार करने से उत्तम ज्ञान प्राप्त होता और इस ज्ञान से तुरन्त ही संसार सम्बधि दुःखों का नाश होता है। धीर पुरुष अपने अहंकार ममकार इत्यादि संसारीक वाह्य पदार्थों से विचारों को हटाकर अगर दो घड़ी भी अपने आत्मविचार संबंधि बिचार करेगा तो उस जीव का कर्म बन्ध जरूर ढिला होगा और जरूर इस समुद्र से तर जायगा।

जिसके पास अमोघ शस्त्र रहता वे पुरुष अगर किसी जाल में फंस जाय अथवा कोई शत्रु इनको बन्धन से बांधे हो तो जो शस्त्रधारी मनुष्य हैं उनको कोई बात की चिंता या बंधन का कभी फिकर नहीं रहता है। क्यों कि उनके पास शस्त्र मौजूद तुरन्त ही मौका पाकर उसे काटकर शीघ्र ही बन्धन से मुक्त हो जाता है, उसी तरह से ज्ञानी जीव भी अपने शास्त्र ज्ञान के बल के द्वारा मौका पाकर ज्ञान रूपी शास्त्र के द्वारा कर्म बन्धन को धीरे धीरे काटकर कर्म बन्धन से बिना तकलीफ से पार हो जाता है। इसमें कोई शंका नहीं है। कहा भी है कि:—

ज्ञान शून्यन पंचेंद्रिय पंचाग्नि।
ज्ञानि इन्द्रिय पंचरत्न॥
ज्ञानविल्लदे भोगिसुव भोगि भवरोगि।
ज्ञानविडिद भोगि योगि॥

ज्ञान शून्य मनुष्य के लिये पांचों इन्द्रिय पंचाग्नि के समान है और जो ज्ञानी है उनके लिये वही पंचोंइन्द्रिय पंच रत्न के समान हैं, ज्ञान रहित होकर भोगने वाले योगी भवरोगी हैं और ज्ञान सहित होकर जो भोग को भोगने वाले वे भोगी होने पर भी वे योगी हैं!

ज्ञानी को कर्म बन्ध क्यों नहीं होता है? इसके उत्तर में गुरुदेव ने कहा है कि जैसे छोटा बच्चा दाई के पास रहकर हमेशा दाई का दूध पीने पर भी दाई के उपर उस बच्चे का प्रेम दाई

पर नहीं रहता है परन्तु वे बच्चा अपनी मा की याद करके रोता है। उसी तरह ज्ञानी जीव संसार का सुख का अनुभव करने पर भी उसी में आशक्त न होकर अपनी आत्म तत्व की रुचि में ही उनकी भावना रहता है।

कोई भक्त गुरुदेव से कहता है। कि हे गुरुदेव! इस आत्मा को अनादि काल से लगी हुई संसार की कल्पित भ्रांति को किस रीति से और कहा जाने से मिटेगा?

गुरुदेव ने कहा कि, हे वत्स संसार बन्धन सगुरु के उपदेश से ही छूटता है और किसी जगह जाने से नहीं छूटेगा जबतक सद्गुरु की खोज ओर सत्संग नहीं करेगा तबतक संसार बन्धन नहीं छूट सकता है, इसका दृष्टांत देकर समझाते हैं सो सुनो किसी एक नगर का राजा बड़ा पराक्रमी था उसने अनेक देश देशांतरों में जाकर वहां के राजाओं को जीता वहां से अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्न, मणि, माणिक, लाकर अपने यहां रखा, वह राजा बड़ा विलास प्रिय था उसने एक सुन्दर मकान बनवाया यह मकान चौदह मंजिल का था उन मंजिलों में नीचे के भूभाग से लेकर ऊपर के शिखरतक अनुक्रम से एकसे दूसरे में विशेष दूसरे से तीसरे में विशेष इस तरह जीना में मिले हुये रत्नों को जड़वा दिया था, उस महल में जैसे २ ऊपर चढ़ा जावे वैसे २ मणि माणिक का अधिक तेज और शोभा दिखाई पड़ती थी वह राजा इस महल में नित्य प्रति नवीन २ विलास सामग्री का उपभोग करता था।

एक दिन रात्रि में राजा को जरा सी निंद्रा आगई और धीरे २ उसके पेट में दर्द होने लगा परन्तु राजा ने कुछ ध्यान न दिया और अपने विलास भवन में जाकर सो रहा, परन्तु पेट में पीड़ा अधिक होने लगी। प्रथम मंजिल पर चैन न मिलने से दूसरी मंजिल पर सोया परंतु वहां भी दर्द कम न हुआ ज्यों २ समय बीतता गया त्यों त्यों पेट का दर्द बढ़ता गया जिससे व्याकुल हो गया यहां हवा बराबर नहीं आती है और न कुछ अच्छा लगता है इसलिये और ऊपर के मंजिल पर चलें ऐसा विचार करते २ एक २ मंजिल ऊपर चढ़ता गया निदान वह चौदहवें मंजिल पर पहुँचकर दात्र पंलग पर सो रहा, इस मंजिल पर मणि माणिक्य का जड़ाव सब मंजिलों से अधिक था यहाँ की शोभा का पार नहीं था जिस पर दीपों का प्रकाश भी चारों ओर हो रहा था, इस प्रकाश से राजा को और बेचैनी हुई पेट का दर्द भी बहुत बढ़ गया, राजा बहुत व्याकुल होने लगा पंलग पर लेटे २ बहुत सी करवटें बदली बहुतेरा तड़पा किंतु उदर पीड़ा कम न होती दिखाई दी इस दुःख चित्त अत्यंत व्यग्र हो गया तबराजा मंजिलों से क्रमशः उतर कर नीचे टहलने लगा ओर फिर विचार किया कि किसी वैद्य को बुलाना चाहिये नौकर को बुलाने की आज्ञा देने वाला ही था इतने में महल के दरवाजे पर एक वैद्यराज आ निकले पुकार रहे थे कि किसी को औषधि लेना हो तो ले ले, यह पुकार सुनकर राजा ने तत्काल वैद्यराज को अपने सन्निकट बुला लिया और सादर आसन पर बिठाकर अपनी उदर व्याधि के शात्यर्थ औषधि मांगी, तुरन्त ही वैद्यराज ने एक चमत्कारी जड़ी निकाली और दिया क्षणभर में उसके प्रभाव से पेट गड़गड़ाहट होने लगी और दस्त

करने की इच्छा हुई पाखाने में जाने पर ऐसा साफ दस्त हुआ कि उदर व्याधि दूर हो गई। जिससे राजा को बड़ा आनन्द मालूम हुआ, पीड़ा से जो रात भर जागा था शांति मिलने से सो गया मन में विचारा कि देखो वैद्यराज की जड़ी का कैसा अद्भुत प्रभाव है, इस दृष्टांत से यह मालूम होता है कि हे संसारी प्राणियों इस जीवात्मा के संबन्ध में ऐसा ही समझो, इस जीव को राजा समझो इस शरीर को चौदह महलों वाला मकान समझ, पांचों इंद्रिया मन और चारों कषायें पेट में पीड़ा उत्पन्न करने वाले रोग समझो, वैसे ही यह जीव भी संसार रूपी बन्धन के कल्पित महान् दुःख को प्राप्त हुआ है। वह दुःख किसी प्रकार से नहीं मिट सकता है। जड़ी बूटी देने वाले सच्चे सद्गुरु रूपी वैद्यराज की चमत्कारिक सदुपदेश मिलने से ही मिट सकता है, इसके लिये कहीं अन्य भगाने की आवश्यकता नहीं जैसे वैद्यराज की जड़ी बूटी से राजा को आनन्द मालूम होने लगा वैसे ही इस जीवात्मा को सद्गुरु वाणी से आनन्द प्राप्त होता है यह सद्गुरु कैसा है ?

विषाया शा वशानी जो निरारंभो परिग्रहाः।
ज्ञान ध्यान नपोरक्तत परचीसः प्रशस्यते ॥

अर्थात् विषयों की आशा से रहित और आरम्भ परिग्रह से रहित, निरारंभ ध्यान अध्ययन में सर्वदा लीन अपने निकट आने वाले जीवों को सन्मार्ग का उपदेश देने वाले और संसार रूपी दुखसे निकाल कर इष्ट स्थानों में पहुँचाने वाले को सद्गुरु कहते हैं—

आत्म स्वरूप को पहिचान करना संसार बन्धन से छूटना है सांसारिक प्रयत्नों में लगे रहना संसार बन्धन का कारण है। सांसारिक संकल्प का जब तक त्याग न किया जायगा। आत्म स्वरूप की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

इस पर शिष्य ने पूछा—संकल्प विकल्प क्या चीज है कैसे होता है। उत्तर—बाह्य चेतन और अचेतन पदार्थ दोनों संकल्प विकल्प उत्पन्न करके बन्धन में डालने वाले होते हैं पुत्र मित्र स्त्री, कुटुम्ब धन सम्पदा को अपना समझना संकल्प विकल्प है यही दुःख दायी है परमात्मा रागादि भावों से कर्म रूपी अन्जन से रहित है। केवल ज्ञान से परिपूर्ण हैं परमानंद मई है ऐसे परमात्मा शांति रूप शिव स्वरूप-शुद्ध-बुद्ध को पहिचान ध्यान कर इससे पारघाट लगेगा, तेरी आत्मा सांसारिक राग द्वेष रूपी लहरों के बीचमें पड़ गई है जिससे अपनी वस्तु दिखाई नहीं देती है, संसारी जीव शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से परमात्मा स्वरूप है, जैसे सूर्य का प्रतिविंव अनेक पात्रों में जल भरने पर प्रत्येक में अलग २ दिखाई देता है, परमात्मा राग द्वेष से रहित, शिव पद पाने वाला है, सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान सम्यक् चारित्र रूपी त्रिशूल को धारण करने वाला महादेव है, संसार में सहिष्णुता को प्राप्त करने वाला विष्णु है जिन्होंने पांचोंइंद्रियों और कर्म को जीत लिया वह जिन हैं और इनके बनाये हुये मार्ग पर चलने वाले जैन हैं। जिन्होंने कर्म भव को हरा वो हरिहरा है सभी का ईश्वर सो महेश है, केवल ज्ञानरूपी बुद्धि को प्राप्त किया व्रत बुद्ध है जिन्होंने कर्म शत्रुओं को जीना व्रह बीर है, गायत्री से मोक्ष मिलता है अर्थात् गायते त्रायतेति सगायत्रो जिनकी वस्तुतिका गान करने से त्राण मिले उसे गायत्री

कहते हैं यही सच्ची गायत्री है, जब तक इनका स्वरूप खुलासा न समझ लिया जावे संसार बन्धन से नहीं छूट सकता है अतएव अपनी उपाधि को प्राप्तकर अन्य सांसारिक उपाधि को छोड़े तो मोक्ष लक्ष्मी मिल जायगी।

शुद्धात्मा ही परमात्मा है, वह किसी रङ्ग का नहीं है, न उसमें कोई गंध है और न वह स्त्री, पु० न पुंसक है न वह कठोर न नरम इत्यादि है वह निरंजन निर्विकार है—सब लोग कहते हैं कि परमात्मा जगत् कर्ता और सर्व व्यापी हैं। परन्तु अपने कर्मों का कर्ता प्रत्येक जीव है इस हिसाब से वह जगत् कर्ता है परमात्मा केवल ज्ञान सम्पूर्ण पदार्थों का जानने वाला है अतएव वह सर्व व्यापी है ऐसा परमात्मा हृदय में सदैव है दूध में घी मक्खन सदैव है परन्तु अज्ञानी कहता है इसमें कहाँ है ज्ञानी मथ करके दिखा देता है कि दूध में घी मक्खन मौजूद है, तब उसे विश्वास होता है, इसी तरह जब तक स्वरूप का शुद्ध ज्ञान नहीं होगा तबतक कुछ लाभ नहीं मिल सकता है, यही परमौषधि है, श्री गुरु यही औषधि दे रहे हैं पेट में दर्द शांति करने के लिये थोड़ा २ सेवन करो तो जल्द शांति हो जायगा। औषधि कडवी होने के कारण लेकर बाहर फेंक देते हैं तो जबतक औषधि न सेवन की जावे कैसे असर कर सकती है श्रीगुरु धर्मार्थ जबरदस्ती औषधि देते हैं कि किसी तरह इसका हित हो जावे, परन्तु फिरभी पीने से दूर भागता है श्रद्धा नहीं करता है, और न फुरसत मिलती है न वैद्य पर विश्वास करता है तो कैसे आरोग्य लाभ हो वैद्यराज के पीछे अनेक रोगी जा रहे हैं, जंगल में पहुँचकर वैद्यराज औषधि दिखाते जाते हैं जो रोगी पहिचान लेते हैं वह उनके रोग को दूर कर देगी जो नहीं ध्यान देते हैं वह रह जाते और वैद्यराज के चले जाने पर पीछे पछताते हैं।

हे जीवों इस तरह सद्गुरु रूपी वैद्य आप को मिला है इस वैद्य से अगर दवाई लेकर अपना जन्म मरण रूपी रोग को मिटाना चाहते हैं तो तुम इनका सत्संग करके जो इनकी वाणी से अमृत रूपी उपदेश अमृत रूपी को पीकर अपने जन्म मरण रूपी रोग को तुम मिटा लो येही सद्गुरु का संघ करने का फल है।

कहा भी है कि:—

महानुभाव संसर्गः कस्य न्नोन्नाति कारकः।
रथ्याम्बु जह्नावी संगात्त्रिद शैरपि वंद्यते॥

महात्मा पुरुषों का संसर्ग किसकी उन्नति नहीं कर सकता है? सबकी करता है, गली कून्चे के जल को गङ्गा के संग से देव लोक भी बन्दना करते हैं।

ज्ञान बड़े गुणवान की संगति।
ध्यान बढ़ें तपसि संग कीने॥
मोह बढे परिवार की संगति।
लोभ बढे धन के चित दीने॥
क्रोध बढे नर मोह के संगत।
काम बढे त्रिय के संग कीने॥
बुद्धि विवेक विचार बढे।
कवि दीन सुसज्जन संगत॥

लाला शिखरचन्चन्द राजकुमार जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया।

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख १०-८-५३ दिन सोमवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में मांस भक्षण का निषेध करते हुये कहा कि
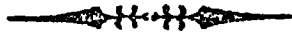
मासां शनज्जीव वधानुमोदस्ततो।
भवेत्पाप मनतं भुग्रं ॥
ततो व्रजेत दुर्गति मुग्र दोषां।
मत्वेति मांसं परिवर्जनीमं ॥

मांस खाने से जीवों के मारने की हिंसा की अनुमोदना होने से पाप का आगमन होता है, पाप के आने से दुर्गति, नरक तिर्यंचगती मिलती है। दुर्गति के मिलने से महान दुःख भोगना पड़ता है। इसलिये मांस भक्षण करना सर्वथा दुःख दायक है। ऐसा समझकर कभी भी मांस नहीं खाना चाहिये।

जो लोग मांस का सेवन करते हैं, उनमें कुक्कुर में कोई भी अन्तर मालूम नहीं पड़ता वे लोग निश्चय से कुत्ते के ही समान गर्ह्य और अस्पर्श हैं। क्योंकि जिसप्रकार कुत्ता प्राणियों के शरीर से उत्पन्न होने वाले अपवित्र कृतियों के घर स्वरूप, दुर्गंध युक्त विष्ठा और मांस के खाने से अपवित्र और हेय समझा जाता है। उसी प्रकार वैसे ही मांस के खाने वाला निर्दयी पुरुष क्यों नहीं अपवित्र और हेय समझा जाय, निश्चय वे हेय ही है। अनु ११५।५५

महा भारत में भी कहा है कि:—

यच्छेत् पुरुषोऽत्यन्त मात्मानं निरुपद्रवं।
स वर्जयेत् मांसानि प्राणि नामिह सर्वशः॥

जो पुरुष अपने लिये आत्यन्तिक शान्ति लाभ करना चाहता है, उसको जगत् में किसी भी प्राणी का मांस किसी भी निमित्त नहीं खाना चाहिये। यद्यपि जगत में बहुत से लोग मांस खाते हैं, परन्तु विचार करनेपर यही सिद्ध होता है कि मांस भक्षण सर्वथा हानिप्रद है। इससे लोग परलोक दोनों बिगड़ते हैं। बहुत से लोग तो ऐसे हैं जो मांस भक्षण को हानिकारक समझते हुए भी बुरी आदतके वशमें होनेकेकारण नहीं छोड़ सकते। कुछ ऐसे हैं जो आराम और भोग शक्तिके वशमें हुए मांस भक्षण का समर्थन करते हैं। परंतु उन लोगों को भी विवेकी पुरुषों के समुदाय में नीचा देखना पड़ता है। मांस भक्षण से उत्पन्न होने वाले दोषों का पार नहीं है

उसमें से यहां संक्षेप में कुछ बतलाये जाते हैं। इसको मन पूर्वक पढ़े और उसमें जो मांस खाते हो वे मांस खाना छोड़ दें।

१-मांस भक्षण भगवत्प्राप्ति में बाधक है। २-मांस भक्षण से परलोक में ईश्वर भी अप्रसन्न होता है। ३-मांस भक्षण से महा पाप है। ४-मांस भक्षण से परलोक में दुःख प्राप्त होता है ५-मांस भक्षण मनुष्य के लिये प्रकृति विरुद्ध है। ६-मांस भक्षण से मनुष्य पशुत्व को प्राप्त होता है। ७-मांस भक्षण से मनुष्य की अनधिकार चेष्टा है। ८-मांस भक्षण घोर निर्दयपना है ९-मांस भक्षण शास्त्र निंदित है। अब उपर्युक्त दश विषयों पर संक्षेप में पृथक् पृथक् विचार कीजिये। सम्पूर्ण रूप से अभयपद की प्राप्ति को ही या परमपद प्राप्ति या भगवन् पद प्राप्ति कहते हैं। इस अभय पद की प्राप्ति उसी को होती है जो दूसरों को अभय देता है। जो अपने उदर पोषण अथवा जीभ के स्वाद के लिये कठोर हृदय होकर प्राणियों कि हिंसा करता कराता है, वह प्राणियों को भय देने वाला और उनका अनिष्ठ करने वाला मनुष्य अभय पद को कैसे प्राप्त हो सकता है? कहा भी है कि भगवान् ने कहा है किः—निराकार उपासना में लगे हुए साधन के लिये, सर्व भूतहिते रतः" और भक्त के लिये, "अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एवच" ऐसे कहकर सर्व भूत हित और प्राणी मात्र के प्रति दया और मैत्रि करने का विधान किया है। भूत हित और भूत दया के बिना परम पद की प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर है। अतएव आत्मा के उद्धार की इच्छा रखने वाले पुरुष का कर्तव्य है कि वह किसी भी जीव को किसी समय किसी प्रकार किंचित्मात्र भी कष्ट न पहुँचावे। भगवान प्राप्ति की तो बात ही दूर है, मांस खाने वाले को तो स्वर्ग की प्राप्ति भी नहीं होती है। मनु महाराज ने भी कहा है किः

न कृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
नच प्राणिवधः स्वर्ग्य स्तस्यान्मांसं विवर्जयेत् ॥

अर्थात्—प्राणियों की हिंसा किये बिना मांस उत्पन्न नहीं होताहै और प्राणि वध करनेसे स्वर्ग नहीं मिलता अतएव मांसका त्याग करनाचाहिये

(२) दूसरा परमात्मा के दृष्टि से सब जीव एक ही हैं, या यों कहना चाहिये कि उसमें और पर जीवों की आत्मा में या जीवों में कोई अन्तर नहीं है। इसलिये भक्ति में सभी जीव अपने भाई के समान होते हैं? इस रहस्य को जानने वाले ईश्वर भक्त के लिये परम पिता परमात्मा की संतान अपने बन्धुरूप किसी भी प्राणि को मारना तो दूर रहा, वह किसी को किंचित् कष्ट भी नहीं पहुँचा सकता। जो लोग इस बात को न समझकर स्वार्थ वश दूसरे जीव की हिंसा करते हैं, और हिंसा करते हुए भी अपने ऊपर भगवान की दया चाहते हैं और ईश्वर प्राप्ति की कामना करते हैं वे बड़े भ्रम में हैं। प्राणि वध करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्यों पर ईश्वर कैसे प्रसन्न हो सकता है? किसी पिता का एक लड़का लोभ वश अपने दूसरे निर्दोष भाइयों को सताकर या मारकर जैसे पिता का कोप भाजन होता है वैसे ही प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने वाले लोग ईश्वर के अप्रसन्न और कोप के पात्र होते हैं।

(३) धर्म में सबसे पहला स्थान अहिंसा को दिया गया है, और सब तो धर्म के अङ्ग है,

परंतु अहिंसा परम धर्म है, "अहिंसा परमोधर्मः" (महाभारत अनुशासन पर्व ११५।२५) धर्म का तात्पर्य अहिंसा में है। धर्म को मानने वाले सभी लोग अहिंसा और त्याग की प्रशंसा करते हैं। जो धर्म मनुष्य की वृत्तियों को अहिंसा, त्याग तप निवृत्ति और संयम की ओर ले जाता है। वही याथार्थ धर्म है। जिस धर्म में इन बातों की कमी है वह धर्म अधूरा है। मांस भक्षण करने वाले अहिंसा धर्म का हनन करते हैं। धर्म का हनन ही पाप है।

कोई यह कहे कि हम स्वयं जानवरों को न मारते हैं और न तो मर वाते हैं, दूसरों के द्वारा मारे हुए पशु पक्षियों का मांस खरीदकर खाते हैं इसलिये हम प्राणी हिंसा के पापी क्यों माने-जांय। इसका उत्तर स्पष्ट है कि हिंसा मांसाहारियों के लिये ही की जाती है। कसाई खाने मांस खाने वालों के लिये ही बने हैं। यदि मांसाहारी मांस खाना छोड़ दें। तो प्राणि वध कोई किस लिये करे ? फिर यह भी समझ लेना चाहिये कि केवल अपने हाथों से मारने क नाम ही हिंसा नहीं है, महर्षि पतंजलि ने अहिंसा के मुख्यतया २७ भेद बताये हैं जैसे

१ वितर्क हिंसादया कृत कारितानुमोदिना लोभ क्रोध मोह पूर्व का मृदुमद्यादिमात्रा दुःखाज्ञानानंत फला इति पति पक्ष भावनम्-

अर्थात्—स्वयम् हिंसा करना, दूसरे से करवाना और उसका समर्थन करना यह ३ प्रकार का हिंसा लोभ क्रोध, और अज्ञान के कारण होने से तीन × तीन नौ भेद हुये-यह नौ प्रकार की हिंसा मृदु-मद्य-और अधिक मात्रा से होने से नौ × ३ = २७ प्रकार की हो जाती है।

इसी तरह से मिथ्या भाषणादि का भेद भी समझ लेना चाहिये यह हिंसादि दोष कभी न मिटने वाले दुःख और अज्ञानरूप फल को देने वाले हैं ऐसा विचार करना प्रति पक्ष भावना है यही सत्ताइस प्रकार की हिंसा शरीर वाणी, मन-से होनेके कारण ८१ भेदों वाली बन जातीहै इसलिये स्वयम् न मार कर दूसरों के द्वारा मार कर खाने वाला प्राणी हिंसा का भागी है। मनु महाराज ने कहा है किः—अगुमंना विशिष्यता, निहंता-क्रय विक्रयी, सस्कर्ता चोपहर्नाच खाद् कश्चेनि घातकाः सलाही आज्ञा देने वाला अंग काटने वाला मारने वाला मांस खरीदने वाला बेचने वाला पकाने वाला परोसने वाला और खाने वाला यह सभी घातक कहलाते हैं।

इसी प्रकार महाभारत में भी कहा है।

धनेन क्रयि को हंति खाद् काश्चोप भोगना।
घातको वध बंधाभ्य निन्येशात्रि विधो वदा ॥
आहर्नात्रगुमंतात्र विशिषना क्रय विक्रय,
संस्कति चोपभुक्तात्र खाद् का सर्वैर्घने ॥
(११५॥४०॥४९ महाभारत अनुशासन पर्व)

-मांस खरीदने वाला धनसे, खानेवाला उपयोग से, मारने वाला मारकर बांधकर प्राण की हिंसा करता है, इस प्रकार तीन तरह से बध होता है जो मनुष्य मांस लाता है। जो मंगाता है पशु के अङ्ग काटता है और खरीदता है जो बेचता है। जो पकाता है और जो खाता है यह सभी मांस खाने वाले घात की हैं अतएव मांस भक्षण धर्म का हनन करने वाला होने के कारण सर्वथा महा पाप है, धर्म पालने वाले के लिये हिंसा का त्याग प्रथम सीढ़ी है जिसके हृदयमें अहिंसा का भाव नहीं है उसके हृदय में धर्म का भाव कहां है ? भीष्मपितामह राजा युधिष्ठिर से कहा है किः—मांस भक्षीयते स्वभक्षीयते यस्मान्

भक्षयिष्येतमप्यहं हे युधिष्ठिर ! वह मुझे खाता है इसलिये मैं भी उसे खाऊँगा यह मांस शब्द का मांसत्व है ऐसा समझो ११६-३५ महाभारत अनुशासन पर्व) इस प्रकार की बातें मनु महराज ने कहा है:—

मांस भक्षिता मुत्रयस्यमांस निहाद्यस्यहम् ।
एतानि मांसस्य मांसत्वम् पवई निमनीषिणा ॥

मैं यहाँ जिसका मांस खाता हूं वह परलोक में मेरा मांस खायेगा महर्षियों ने मांस शब्द का अर्थ ऐसा किया है आज यहां जो जीव जिस जीव का मांस खावैगा वही जीव वदला लेने के लिये उसी जीव का मांस किसी समय वह खावैगा, जो मनुष्य जिस जीव को जितना कष्ट पहुँचाता है समयातर में उसको अपने किये हुये फल का कष्ट अधिक मात्रा में मय ब्याज के भोगना पड़ता है यह युक्ति युक्तिवान है जैसा दूसरे के द्वारा सताये जाने पर किसी को दुःख कष्ट होता है, वैसा ही अनुभव सबको होता है पर पीड़ा महा पातक है पाप का फल सुखकर कैसे हो सकता है इसलिये भीष्मपितामह ने कहा है कि:—

कुंभी पाकेचपच्यंते, ताम नाम योनि मुवागताः ।
आक्रम्यमार्य माणश्चमास्यंते वेपुन-पुनः ॥
(अनुशासन पर्व ११६-३१ महाभारत)

मांसाहारी जीव अनेक योनियों में उत्पन्न होकर अन्त में कभी पाक नर्क में यंत्रणा भोगते हैं और बलात् कर दवा कर मारे जाते हैं इस तरह वह बार २ नाना कुयोनियों में भ्रमण करते हैं। मनुष्य का आहार मांसाहार नहीं है मांसाहार करने वाले जीव, कुत्ते सिंह भेड़िया इत्यादि की आकृति उनके दांत जवड़े पंजे, नख हड्डी इत्यादि के देखने से स्पष्ट मालूम देता है कि मनुष्य का आहार मांस नहीं है, जल चिकित्सा के प्रसिद्ध आविष्कारक लुईको, महोदय ने कहा है मनुष्य मांस भक्षी प्राणी नहीं हैं मनुष्य प्रकृति के विरुद्ध मांस भक्षण करने से अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, मनुष्य की प्रकृति सौम्य है सौम्य प्रकृति वाले के लिये अन्न दूध फलादि सौम्य पदार्थ ही स्वाभाविक भोजपदार्थ है गौ बकरी कबूतर सौम्य प्रकृति के पशु पक्षी मांस न खाकर अन्न, घास इत्यादि खाते हैं मांसाहारी पशु पक्षियों की आकृति सहज ही भयानक होती है, शेर, बिल्ली, कुत्ते इत्यादि को देखते ही इसका प्रमाण मिल जाता है। महाभारत में लिखा है।

इमेवै माणवा लोके नृशंसा मांसगर्धिना ।
विसृज्यविविधान भक्षान महारक्षोगनाइव ॥
अपूपान विविधाकारा न-शाकानि विविधानिचं
खांडवान् रसयोगान्न, तथे छति यथानिशम् ।
(महाभारत ११६-१०२ ।)

दुःख है कि मनुष्य नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ छोड़ कर राक्षस की भांति मांस के लिये लालयित रहते हैं तथा भांति २ की मिठाई, शाक सरस पदार्थों को भी पसंद नहीं करते हैं। इस से सिद्ध है कि मांस मनुष्य का खाद्य पदार्थ नहीं है। भोजन से ही मन बनता है, जैसा खावै अन्न वैसा होवे मन, यह कहावत प्रसिद्ध है मनुष्य जिस पशु, पक्षी का मांस खाता है उसी पशु, पक्षी के गुण उस मनुष्य में आते हैं उसकी आकृति वैसी ही वन जाती है। क्रूर और अमर्यादित जीवन बन जाता है। मांसाहारी पशु, पक्षियों की योनि में जाकर अनेक प्रकार के दुख भोगता है।

लाला गुन्धरलाल निर्मलकुमार जी जैन सर्राफ टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकीमें छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख ११-८-५२ दिन मङ्गलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में अहिंसा का ही स्पष्टी करण करते हुए आज फिर कहा कि:—
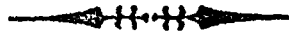
हे सँसारी प्राणियों! तुम्हारे कल्याण के लिये मांसाहार के विषय में आज फिर मैं कहूँगा उसे ध्यान देकर सुनो। मनुस्मृति ५४-५-४९ में लिखा है कि:—

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्म सुखेच्छया।
स जीवश्चं मृतश्चैव न किंचत्सु मेधते॥
समुत्पत्ति च मांसस्य बधबंधौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्व मांसस्य भक्षणात्॥

जो निरापरध जीवों को अपने सुख के लिये हिंसा करता है वह जीता रहकर अथवा मरने के वाद भी इहलोक परलोक में सुख नहीं पाता है। मांसकी उत्पत्ति का विचार करते हुये प्राणियों की हिंसा और बन्धनादि के दुःख को देखकर मनुष्य को सब तरह के मांस भक्षण का त्याग कर देना चाहिये।

मनुष्य खुद हिंसा नहीं करता है, अगर उसके मन में कदाचित् भाव भी हो जाय तो भी कर्म का बन्ध कर लेता है, क्योंकि भाव हिंसा भी तीव्र कर्म बन्ध का कारण होता है। इसके वारे में एक दृष्टांत याद आता है कि:—

स्वयंभू रमन समुद्र में एक महा मगर मच्छ रहता था। एक दिन वह अपना मुंह फाड़कर पानी में पड़ा हुआ था इधर उधर की बहुत सी छोटी छोटी मछलियां उसके मुंह में आकर झुण्ड के झुण्ड विचरने लगे। तब उसी समय उस मगर मच्छ के कान में रहने वाला एक तन्दुल मच्छ रहता था। उसने देखा कि मगर मच्छ के मुँह में बहुत सी मछलियों के झुण्ड इस समय एकत्रित हुये हैं। यह विचारा क्यों सुसत पड़ा है अगर यह सभी को एक साथ निगले तो इसका पेट भर जायगा। अगर मेरे मुँह में ये होतीं तो मैं फौरन इन सभी को निगल जाता। इस तरह तन्दुल मच्छ ने अपने मन में केवल विचार करने से ही उसको सातवें नरक का बन्ध होगया था। इसलिये केवल संकल्प मन में होने पर भी पाप का बन्ध होता है, फिर साक्षात् खाने में या जीव को मारने में हिंसा नहीं होगी? अवश्य होगी। प्रजापति ने कहा है कि

सर्वेषामेव मांसानां महान् दोषस्तु भक्षणे।
निवर्तने महत्पुण्यमिति प्राह प्रजापतिः॥

पूर्ण रीति से आशीर्वाद देंगे उनका जिन्दगी भर कल्याण होगा। उन्हीं को हम परम उपकारी या भाग्यवान समझेंगे।

महा शांति पर्व २६२-२४-२५-२८-३०

यस्मान्नोद्विजते भूँत जातु किञ्चित् कथञ्चन॥
अभवयं सर्व भूतेभ्यः सपाप्नोनिसदामुने॥१॥
यस्मादुद्विजते विद्वन सर्व लोकौ वृकादिवा।
क्रोशनस्तीर मासाद्य यथा सर्वे जलाचराः॥२॥
तपोभिर्यज्ञदानैश्च वाक्यैः प्रभाश्रितैस्तथा॥
प्राप्नोत्यभयदानस्य यद्यत् फलमिहाश्नते॥३॥
लोकेयः सर्व भूतेभ्यो ददात्यभय दक्षिणाम्॥
ससर्व ज्ञैरीजानः प्राप्नोत्यभय दक्षिणाम्॥४।
न भूतानमहिसाँय। ज्यायान् धर्मोऽस्तिकेश्चन॥

हे मुनिवर जिस मनुष्य से किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचता है उसे किसी प्राणी का भय नहीं रहता है जिस प्रकार बड़वानल से भयभीय होकर सभी जल जन्तु समुद्र के तीर इकट्ठा हो जाते हैं, उसी प्रकार हे विद्वत्वर जिस मनुष्य से भेड़िये की भाँति सब लोग डरते हैं वह स्वयम् भयको प्राप्त होता है इसमें कोई संदेह नहीं है मनुष्य के लिये जो तप यज्ञ, दान, संयम, उपदेशादि से जो फल मिलता है उससे अधिक फल जीवों को अभय दान देने से प्राप्त होता है जो मनुष्य संसार के प्राणियों को अभय दान देता है वह सारे यज्ञों का स्वर्ग का मोक्ष का अनुष्ठान कर चुका उसके बदले में उसे सबसे अभय प्राप्त होता है अतएव प्राणियों को कष्ट न पहुँचाने समान तीनों लोको में इसके समान कोई दान नहीं है और दया मूल धर्म ही प्राणियों का हित करने वाला है।

अहिंसाः—फिर भी सद्गुरु ने मानवों को सम्बोधन करके कहा किः—हे संसारी समस्त मानव प्राणियों! सर्व भूत प्राणि प्रति दया और नम्रता रखनी चाहिये, इसके समान कोई धर्म नहीं है। "अहिंसा परमोधर्मः" अर्थात् दूसरे प्राणी को पीड़ित करना, इसका वध करना इत्यादि दुष्ट और हिंसक आचरण का त्याग करना इसका नाम अहिंसा है, और यही सबसे श्रेष्ट है। नम्रता भी दया के साथ लगी हुई है, जहां दया है वही धर्म है मुख्य दया ही धर्म का मूल होने से सभी जीवोंपर दया करना मानव मात्र का कर्त्तव्य है। जिस भांति मुझको कोई आघात लगने से तथा निष्ठुर बचन सुनने से मन में दुःख होता है, वैसे ही दूसरे को भी होताहै इसबात को समझते हुए पुरुष ही दयालु है और पूरा अहिंसा धर्म का उपासक माना जाता है। क्योंकि अपने समान दूसरे को जानने वाला और किसी को कभी दुःख देने वाला नहीं हो सकता है। और भी दयालु-दयालु पुरुष किसी कारण से अथवा प्रारब्ध योग से दूसरे किसी प्राणि को पीड़ा पहुँची हुई देखकर अपने अन्त करण में बड़ा खेद पाता है, तथा उसका दुःख दूर करने में अपने जन्म भर तक प्रयत्न करने में नहीं चूकता है। ज्ञानी पुरुष में पहले अन्श में दया होनी चाहिये। निर्मल और सूक्ष्म ज्ञान से देखा जाय तो सब प्राणियों के भीतर बसने वाले और कोई जीव नहीं है तथा वही जीव आगे चलकर परमात्मा बनेगा। ज्ञानी ऐसा मानता है कि जो जीवतत्व मुझ में है वही दूसरे जीवों में है। इससे वह जानता है कि उसको दुःख हुआ तो मुझको ही हुआ दया यह सच्चा जीव मात्र का कल्याण ही एक अद्भुत महान धर्म है। और निर्दय के समान और कोई अधर्म नहीं है, निर्दय पुरुष कदापि शक्तिमान

अथवा ज्ञानवान् कभी भी नहीं हो सकता है। जहां निर्दयता होती है, वहां निरन्तर पाप निवास करता है। जहां पाप रहता है वहां ज्ञान अथवा भक्ति का निवास नहीं होता। अन्धकार होता है,-वहां प्रकाश नहीं होता है। और जहां तेज रहता है। वहां अन्धकार नहीं होता है। जहां पापादि दुष्कर्मरूप अन्धकार रहता है, तहां पुण्य ज्ञान रूपी तेज का प्रकाश नहीं होता है। अतएव ज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रथम सहृदय अतः करण वाला होना उचित है, दयालु का अतिशय मृदु और निर्मल होता है। इससे उस पर आत्मा के प्राप्ति में प्रयासरूप बीज द्वारा, दया का अँकुर निकल आता है, और वह प्रतिदिन वृद्धिगत होता रहता है।

निर्दय मनुष्य का अन्तःकरण इससे बिलकुल उल्टा है, वह मलीन और पाषाणवत् कठिन होता है। इससे उसके हृदय में सत्संग तथा सद्गुरु के बोधरूप जल का बार बार सिंचन करने पर भी ज्ञान बीज का अँकुर नहीं उठने पाता। वह सर्व प्राणी मात्र को अपना शत्रु मानता है, वह हमेशा किसी जीव का कल्याण कर नहीं पाता है अर्थात् किसी जीव पर भी दया नहीं करता है। उसके शरीरमें हमेशा क्रोध बसा रहता है। और क्रोध से ही सब कार्य बिगड़ता है, अतः समस्त अवगुणों का मूल रूप जो निर्दयता उसको जड़ से नष्ट करके, मनुष्य को सर्व प्राणी मात्र के प्रति दयालु बनना चाहिये, यह उसका मुख्य कर्त्तव्य है।

कोई प्रश्न पूछता है कि हे गुरुदेव! पाप पुण्य क्या है? गुरुदेव कहते हैं कि, जो मनुष्य भगवान और सच्चा शास्त्र पर विश्वास नहीं रखता है, और वह मन माने अपने पकड़ा हुआ धर्म को मानता है वही पाप है।

अतएव तेरे लिये इस कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की अवस्था में शास्त्रीय प्रमाण है, ऐसा जानकर तुझे शास्त्र विधि से नियत किये हुए ही कर्म को करना चाहिये, परन्तु जिस मनुष्य को भगवान और शास्त्र में विश्वास नहीं है। शास्त्र कि व्ययवस्था न मानने पर उनके लिये अकर्त्तव्य ही पाप है। इसीलिये मनुष्य को जिनका कल्याण करना है अतएव बात बुद्धि से सोचनी चाहिये कि मनुष्य के लिने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य क्या है इस प्रकार सोचने की बुद्धि मनुष्य में ही है। पशु पक्षी आदि जीवों में नहीं है। इसीलिये यह बात मनुष्य पर ही लागू पड़ती है। जो मनुष्य शरीर को प्राप्त करने के बात कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य को सोचता नहीं है। वह गिर जाता है।

लाला अजितप्रसाद धन्नूमल जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख १२-८-५३ दिन बुधवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में संसार रूपी भयानक अटवी में पड़ीहुई आत्मा को समझाते हुए कहा कि:—
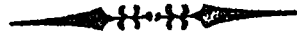
यह संसारी जीव अनादि काल से संसार रूपी महान् भयानक खाई में पड़ा हुआ है, और इसको उठाने के लिये और कोई दूसरे का साथ न होने के कारण इसी में ही पड़कर अतयन्त दुःखी ही रहता है संसारी आत्मा कहता है कि मेरे को उठाने के लिये कोई आयेगा और मैं उसके सहारे से जल्दी उठजाऊँ इसी आशा से अर्थात् इस महान् भयानक संसाररूपी अँधकार में पड़कर तड़फ रहा है, परन्तु अभी तक इसको उठाने वाला कोई न मिला ।

गुरुदेव कहते हैं कि:—हे संसारी प्राणी जिसके भरोसेपर आप अभीतक इस महान् खड्ढे में पड़ा है, क्या वे तुम्हारा कोई हित करने वाले हैं, या आपको सहारा देकर इस भव रूपी समुद्र कूप से उठाने वाले हैं, उल्टा आपको संसारिक पदार्थों के लालच दिखलाकर आपको इसी भव रूपी खड्ढे में सड़ा देंगे । इसलिये आप किसी का सहारा न करके आप स्वयं ही अपना बल लगाकर उठने का प्रयत्न करें, अगर प्रयत्न नहीं करेगा तो आप कभी भी इससे उठकर अपने इष्ट स्थान को नहीं पहुँच सकता ।

कहा भी है:—

रे जीवाणंत संसारे संसरंत बहुवारं ।
पत्तोन वोहिला हो मिच्छत विजं भय पडीहिं ॥
संसार भमण गमनं कुणंत आराहिओं न जिणधम्मो,
तेण विना वरं दुक्खं पत्तोसि अनन्त वाराइं ॥
ससारे णिव सतंत भरणाई पावि ओसि तुमं ।
केवल्मि विना न तेसिंसंख पञ्जति नो हवई ॥
तिणिसया छत्तीसा छावढिढ सहस्सवार भरनाई
अन्तो मुहुत्तमज्झे पत्तोसि निगोय मज्झीम्म ॥

हे जीव तू संसार में संसरण करते हुये, अर्थात् संसार का विस्तार करते हुये अनन्त बार जन्म और मरण प्राप्त करते हुये भी अँनत काल तक भ्रमण किया, और आप एक मिथ्यात्व के निमित्त से दुर्लभ ऐसे मनुष्य पर्याय को बार-बार संसार रूपी महान् समुद्र में कितने बार इसको फेंक दिया । हे जीव, हे आत्मन, संसार भ्रमण करते हुए भी आपको जैन धर्म की आरा-

धना करने का मौका अभी तक नहीं प्राप्त हुआ उस सच्चे धर्म की अराधना के विना आपने अनँत बार दुःख उठाया। और संसार में रहते २ कितने काल तक जन्म मरण किया इसका कोई पता नहीं। सर्वज्ञ भगवान के उपदेश बिना असंख्यात पर्याय धारण किया। और छोड़ा इसका कोई अन्त या गिनती नहीं रहा, अन्तर मुहूर्त में ३३३६६ बार एक अन्तर में मुहरत में जन्म और मरण करते हुये निगोद में पड़ा रहा, परन्तु वहाँ सच्चे धर्म की आराधरा के बिना दुःख ही दुःख अभीतक उठाया है परन्तु सुख का लेश मात्र अभी तक प्राप्त नहीं हुआ कितने दुख की बात है। हे जीवात्मन्! सोचे कि तू इस योनि में जब तक भ्रमण किया तब इसमें आपको कुछ शांति या विश्रान्ति मिली! क्या जो चीज तूने अभी तक अपनी इंद्रियों की तृष्णा को शांत करने के लिये जो अनेक सामग्री का संचय किया उससे आपकी क्या कुछ तृष्णा मिट गई। इस संसार में इँद्र जाल के समान क्षण में नष्ट होने वाली वस्तुओं को तूने अपना माना, और उसी में अभी तक लिपटा रहा। अन्त में नष्ट होने के बाद तू हा हाकर मचाया, क्या इस बात का तुमको याद नहीं रहा। इस पर वस्तु के पीछे तूने कितने जीवों के साथ आपस में राग द्वेश करके अन्त में अपने सच्चे आतम स्वरूप से विमुख होकर कुगति में प्रयाण किया। हे आत्मन् इस बात को अगर थोड़ी देर के लिये अगर आप विचार करके देखेगा तो पता चलेगा कि हाँ मैं यह क्या कर रहा हूं। मेरा क्या कर्त्तव्य है, तब सचेत हो कर कहेगा कि हो, हो, पशुके समान इस समय मेरा जीवन बीत रहा है! मैं अपने सच्चे कर्त्तव्य से च्युत हो गया हूँ। मैं क्षीण संसारी दुखदाई इस भव बन में सच्चे मार्ग के बिना मैं असली स्वरूप को भूले हुये भटक रहा हूँ।

सतगुरु कहते हैं कि! हे संसारी जीवों! जब तक तुम्हारी आंखों पर अज्ञान रूपी पट्टी बंधी रहेगी, तब तक कितना भी प्रयत्न करने से भी वह सच्चा रास्ता मिलना दुर्लभ है। जैसे कोई अन्धा मनुष्य अपने को रास्ता न मिलने के कारण जंगली रास्ते में जाकर फँस जाता है, और अनेक बड़े बड़े बबुल के पड़े हुये काटे पाव में घुस जाते हैं! तब उसको दारुण दुःख होकर चिल्लाता हुआ जोर से शोर मचाता है। और उसी में दौड़ता रहता है जितना दौड़ता उतना ही आपत्ति भोगना पड़ता है! उसी तरह संसारी जीव अपने निज स्वरूप को भूलकर महान् भयानक विषय वासना रूपी काटे से भरी हुई प्रखर जंगल में फँसा हुआ है। इसमें फँसने के कारण यह है कि ज्ञान रूपी आंखों पर अज्ञान रूपी पट्टी बंधी हुई है। बार बार इसमें चिल्लाता है, रोता है, पीटता है, दुःख की वेदना से तड़फड़ाता है, परन्तु आंखों में अज्ञान रूपी पट्टी बांधने के कारण उस वासना रूपी कोठे से बाहर नहीं निकल सकता है! यही हे आत्मन् तेरी दशा हो रही है तू अपने निज स्थान को भूलकर अन्य भयानक अटवी में आकर तू फँसा हुआ है। अब तुझको उसमें से निकलवा कर ठीक रास्ते से लगाने वाले जब तक श्री गुरू नहीं मिलेगे, तब तक तू यही पड़ा रहेगा। अगर सद्गुरु नही मिलेगा तो इसी में सड़कर आपको तकलीफ अन्त तक उठाना होगा। तू विषयांध

होकर इसमें फँसा हुआ है, इसलिये तुझको हमेशा जन्म मरण करना पड़ रहा है। विषयांध प्राणी क्या नहीं करते हैं, और कौन कौन से दुःख नहीं भोगते हैं।

इस पर एक दृष्टांत याद आता है, हे जीवात्मा तू इसको मन लगाकर सुनोः—एक महान् भयानक जंगल में एक ऊँट रहता था वह ज्यादा वृद्ध हो गया था, इस वजह से ज्यादा थकने के कारण वह मर गया, मरने के बाद उसकी लाश को बहुत से गीदड़ चील इत्यादि पशु-पक्षियों ने भीतर के मांस को खाते खाते पोल कर दिया था एक दिन एक कौवे ने मांस के लोलुप होकर खाते २ भीतर चला गया और बाहर आने कि उनको गरज नहीं रहा! क्योंकि वे मन में विचार करने लगा कि अब इस स्वादिष्ट वस्तु को छोड़कर बाहर कहां ढूढता फिरै! तब वह कागा कई दिनों तक उसी पोल में रहा एक दिन जोर से पानी बरसा परन्तु उस कागा को पता नहीं पड़ा कि जंगल में पानी की बरसा जोर से हो रही बाद में जँगल का पानी इकट्ठा होकर जहाँ ऊँट मरा पड़ा हुआ था उसी स्थान पर पानी भर कर बेग से बहता हुआ आया, और मरा हुआ ऊँट पानी में बहता गया! धीरे२ ओ ऊँट की लाश बहते २ समुद्र में प्रविष्ट हो गई! तब उस पोल में मांस को खाने में मग्न हुआ कौवा ऊँट के पोल में निश्चिंत होकर बैठा था, और उसको अपने भविष्य में क्या हाल होगा यह मालूम नहीं था। धीरे धीरे उसमें पानी आकर भरने लगा, और पूरा पोल भर गया। तब कौवा बाहर आकर देखता है कि चारों तरफ पानी २ दिखाई पड़ता है। तब उसको एक भी झाड़ बैठने के लिये नजर न पड़ी तब काँव, काँव करते हुये समुद्र में गिर कर डूबता है और उड़ता है, अन्त में वह विषयाशक्त मांस लोलुपी कौवे ने थककर समुद्र में ही मग्न हो गया! अर्थात् विषय वासना के लोलुप से समुद्र में प्राण गवा दिया। इस तरह संसारी प्राणी एक एक इन्द्रिय रूपी विषय वासना में रात दिन रत होकर अन्त में संसार रूपी महा प्रलय रूपी पानी में जाकर जब डूबने लगता है। तब सोचता है कि अपने को बचाने की चेष्टा करता है। परन्तु उससे बचने कि कोई उम्मेद न होने के कारण दुःखी होकर थक जाता है। अन्त में उसी संसार समुद्र में डूब जाता है, और बार २ जन्म और मरण के आधीन होकर चारों गति में भ्रमण करता है। गुरुदेव कहते हैं कि, हे संसारी जीवात्मन् अब तुम जागो जागो, और विषय वासना दूर करने का प्रयत्न करो! जब इससे दूर होने का प्रयत्न करोगे, तो इस भव रूपी समुद्र से पार होने में कोई सम्भव नहीं है। इसलिये तू जल्दी श्रीगुरू की शरण जा और उन्हीं का सहारा ले तब तेरा बेड़ा पार होगा।

हे गुरुदेव! मेरे मन में एक शंका उठी है कि सद्गुरु किसे कहते हैं! उत्तर में—सद्गुरु देव ने कहा किः—

विषयाशा वशातीतो निरारम्भो परिग्रहा।
ज्ञान ध्यान तपो तक्त तपश्विसे प्रशस्यते॥

विषय वासनाओं से रहित, आरम्भ रहित, तथा परिग्रह से रहित और ध्यान अध्यानन में रत चारों कषायोंसे रहित निर्ममत्व से सहित जी हैं वही महात्मा हैं और सभी सँसारी जीवो को

सच्चा मार्ग बतलाने वाले हैं, इसके अलावा अन्य जो महात्मा होंगे धूर्त उनको समझना चाहिये, और वे सभी संसार सागर से उठने वाले नहीं हैं ! खेद की बात है कि आज कल लोग स्वार्थ वश किसी साधारण से साधारण मनुष्य को भी महात्मा या सद्गुरु भगवान शब्द का प्रयोग वस्तुतः बहुत समझ सोचकर किया जाना चाहिये। वास्तव में महात्मा तो वे ही जिनमें महात्माओं के लक्षण और आचरण हो। ऐसे महात्मा का मिलना बहुत दुर्लभ है। यदि मिल जाय, तो उनका पहचानना तो असम्भव सा ही है (महान् संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽयोधश्च" इस प्रकार नारद भक्ति सूत्र में ३९) महात्मा का संग दुर्लभ और अमोघ है ! साधारण तया उनकी यही पहचान है कि उसका संग अमोघ होने के कारण उनके दर्शन, भाषण चारित्र तप संयम से मनुष्य के ऊपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। संसार विषयों से वैराग्य उदासीनता सत्य न्याय सहन शीलता आड़म्बरादि परिग्रहो से रहित पक्षपात रहित, हृदय में सर्व प्राणी मात्र पर दया भाव, अपने आत्म स्वरूप में लीन परोपकारी निंदा स्तुति में समान भाव रखने वाले, दुर्जन सज्जन को एक समान देखने वाले हों, ऐसे त्यागी महात्मा होने चाहिये वह ही सच्चा जगत का कल्याण करने वाले हैं ! महात्माओं के लक्षण यह है, कि सर्वत्र समदृष्टि होने के कारण उनमें राग द्वेश का अत्यंत अभाव रहता है, इस लिये उनको प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में हर्ष विषाद नहीं रहता है। भूतों में आत्मबुद्धि होने के कारण अपने आत्मा के सदृश ही उनका सभी जीवों में प्रेम हो जाता है। इससे अपने और दूसरों के सुख दुख में उनकी सम बुद्धि हो जाती है। और इसलिये वे सम्पूर्ण भूतों के हित में स्वाभाविक ही रत होते हैं। उनका अन्तः करण अति पवित्र हो जाने के कारण उनके हृदय में भय मोह शोक उद्वेग, काम क्रोध लोभ इत्यादि दोषों का अभाव रहता है। हृदय में अहँकार का अभाव हो जाने से मान बड़ाई और प्रतिष्ठा कि इच्छा की तो उनमें गन्ध मात्रा भी नहीं रहती ! शांति सरलता, समता, सुहृदयता, शीलता, संतोष, उदारता, और दया के तो अत्यन्त समुद्र होते हैं। इसलिये उनका मन हमेशा प्राणि मात्र का कल्याण करने में प्रफुल्लित और आनन्द में मग्न तथा सर्वथा शांति रहते हैं। कहा भी है किः—

यद्यदा चरति श्रेष्ठस्ततं देवेतरो जनः।
य यत्प्रमानं कुरूतँ लोकस्त दनु वर्तते ॥

श्रेष्ट महात्मा पुरुष जो आचरण करते हैं। दूसरे लोगों को भी उसी के अनुसार करवाते हैं वे जो कुछ प्रमाण कर देते हैं। लोग भी उसी के अनुसार करने लगते हैं ! उपासक प्रत्येक आचरण सत्य, न्याय और ज्ञान से पूर्ण होता है। किसी समय उनका कोई आचरण वाह्य दृष्टि से भ्रम वश लोगों को अहित से या क्रोध युक्त मालूम हो सकता है किन्तु विचार पूर्वक देखने से वस्तुतः उस आचरण में भी दया और प्रेम ही भरा रहता है और परिणामों में उससे लोगों का परम हित होगा है। अहंकार या ममत्व बुद्धि न रहने के कारण सब के साथ पक्षपात रहित प्रेम मय और शुद्ध भाव रहता है।

गाँधीप्रसाद अग्रवाल दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख १३-८-५३ दिन गुरुवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में धर्म की व्याख्या करते हुए कहा कि:—
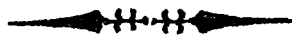
कई भक्तों ने साधन सम्बन्धी प्रश्नोत्तर किये:—कि हे गुरुदेव ! हम लोग शयन के समय मन में जो एक सांसारिक वातावरण चल पड़ता है उसे हटाकर भगवान के गुणों का चिंतवन, स्तुति, पूजा उनके स्वरूप के चिंतवन करने का ध्येय बनाते हैं, किंतु प्रथम तो शयन के समय उसकी श्रुति नहीं होनी है यदि होती है तो पहिले का प्रभाव बलात्कार से चल पड़ता है, ऐसा क्यों होता है और उसके सुधार का क्या उपाय है ?

उत्तर में गुरुदेव ने कहा कि—यह संसार का चिंतवन जन्म जन्मातर के किये हुये कर्मों का अभ्यास है तथा सांसारिक पदार्थों में आसक्ति होने के कारण उनमें प्रीति हो रही है, यही कारण है कि चिंतवन करने पर भी बार २ बलात्कार साँसारिक वस्तुयें याद आ जाती हैं। जैसे प्रातःकाल के समय मनुष्य यह विचार कर लेता है कि शौच स्नानादि क्रिया करना है, परन्तु प्रथम तो चार बजे नींद नहीं खुलती है यदि नींद भी खुली तो उठने को मन नहीं करता है, आलस्य और आसक्ति के कारण लेटे रहने में ही मन रहता है, क्योंकि उसमें सांसारिक सुख बुद्धि है, किंतु शौच नित्य कर्म करना सर्वथा लाभ की बात है, इसलिये विचारक मनुष्य जल्दी ही उठकर नित्य कर्म में रत हो जाते हैं, ऐसे ही शयन के समय में विचार द्वारा मन को समझाया जाय और बुद्धि के निश्चय पर जोर डाला जाय कि सांसारिक चिंतवन हानि कारक है, भगवान के गुणों का चिंतवन, स्तुति, पूजा इत्यादि बहुत लाभदायक है तो मन के विचार सुमार्ग पर लग सकते हैं।

फिर प्रश्न किया—कि प्रातःकाल पूजा पाठ जप, ध्यान, स्वाध्याय नित्य कर्म करते समय, आलस्य और चित्त की चंचलता के कारण जैसा चाहिये वैसा सत्कर्म साधन नहीं कर पाते हैं, यदि उपर्युक्त साधन का सुधार किया जाय तो सहस्र गुणा लाभ प्रद हो सकता है, ऐसे तो हम पढ़ते समझते, और सुनते हैं तथा चेष्टा

भी करते हैं परन्तु कौमी सुधार नहीं होता है। इसका क्या कारण हैं ? तथा इसके सुधार का क्या उपाय है ?

उत्तर में गुरुदेव ने कहा—भगवान में अनन्य श्रद्धा तथा प्रेम की कमी, और विषय भोगों की अत्यन्त आसक्ति ही, इसका कारण है, इस विषय में हमको दृढ़ विश्वास करके उसके तत्व को समझकर श्रद्धा, भक्ति और वैराग्य युक्त चिन्ता से रुचि पूर्वक सत्यार्थ सत्कर्मों का अभ्यास करना चाहिये जिसमें उच्च कोटि का साधन बने, भगवान के उपदेश किये हुये मार्ग पर रुचि रखकर शास्त्र मनन करता रहे तो हेयोपादेय का ज्ञान होगा, आत्म बल बढ़ जायगा विचार शक्ति जागृति होगी। सांसारिक वासनायें कम हो जावेंगी, जब तक गाढ़ रुचि नहीं होगी तब तक सुधार होना अशक्य है।

प्रश्न—हे गुरुदेव कल्याणमयी पुरुष चलते उठते, बैठते, खाते, पीते, सभी समय निरंतर भगवान की स्तुति उनका स्मरण रखते हुये ही सब काम करना चाहता है। कुछ चेष्टा भी करता है पर यह बनता नहीं है, इसका क्या कारण है ? तथा इसका क्या उपाय है ?

उत्तर में गुरुदेव ने कहा—भगवान में श्रद्धा और प्रेम की कमी ही इसका कारण है, भगवान के मार्ग में और तत्वों में श्रद्धा पूर्वक अभ्यास किया जाय तो यह दोष दूर हो सकता है जैसे नटिनी का रुपयों से प्रेम है इसलिये वह बांस पर चढ़कर एक बांस से दूसरे बांस के बीच में बंधे हुये रस्से पर गाती बजाती हुई चलती है। किंतु उसका ध्यान निरन्तर अपने पैरों पर ही रहता है, यदि अनवरत ध्यान पैरों पर न रहे तो रस्से पर से गिरजाना सम्भव है।

इसी प्रकर हमारा प्रेम भगवान की भक्ति में रहे तो किसी प्रकारकी बाधा नहीं हो सकती है इससे यही सिद्ध होता है कि हमारी श्रद्धा और भक्ति की कमी इसका कारण है। जैसे नटिनी का ध्यान सर्वदा अपने पैरों की ओर रहता है वैसे ही हम निरन्तर भगवान का स्मरण रखें और जैसे नटिनी गाती बजाती चलती हैं वैसे ही हम भी करें तो सफल हो सकते हैं।

प्रश्न—हम लोग बहुत बार तो संसार का व्यर्थ चितवन करते रहते हैं, जिससे न तो स्वार्थ की सिद्धि होती है और न परमार्थ ही बनता है इस बात को जानते हुये भी और प्रयत्न करते हुये भी उसको छोड़ नहीं पाते हैं इसका क्या कारण है ? और इसका क्या उपाय है ?

उत्तर में गुरुदेव ने कहा—अज्ञान के कारण सांसारिक पदार्थों में मन को सुख प्रतीत होता है तथा उसके चितवनकी अनादिकाल से आदत पड़ी हुई है यही कारण है कि प्रयत्न करने पर भी हम उसे छोड़ नहीं पाते हैं। अतः हम संसार के पदार्थों को क्षण भंगुर, नाशवान, दुःख रूप हानिकारक समझकर आसक्त न हों, सच्चे तत्व को जानने का अभ्यास करें तो संसार के व्यर्थ चिंतवन से बच सकते हैं।

प्रश्न—हम लोग समझते हैं कि सेलटेक्स और इनकम टेक्स की चोरी करना, चोर बाजारी करना रिश्वत देना, तथा और अनेक प्रकार के झूठ चोरी; कपट बेइमानी करके धन पैदा करना यह सब इस लोक पर लोक दोनों में हानिकारक है, परन्तु फिर भी छूटते नहीं हैं, इसका क्या

कारण है ?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा कि धन से मिलने वाले तथा धन में आसक्ति है इसीकारण से यह हानिकारक कर्म नहीं छूटता है, इसके लिये लोग बुरा कहते हैं परन्तु वास्तव में इसको समझते नहीं हैं कोई भी मनुष्य जान बूझकर ऐसा पापकारी कार्य नहीं कर सकता है जब हम जानलेंगे कि धन, सम्पदा नाशकारी है, उसके साथ हमारा जो सम्बन्ध है वह क्षणिक है और दोनों लोकों में दुःखदायी है, तभी हम इससे छुटकारा पाजायेंगे अन्यथा इससे छुटकारा नहीं मिल सकता है ?

प्रश्न—हम यह समझते हैं कि परस्त्री के साथ सम्भाषण, चिंतवन, एकांतवास सभी हानिकारक है इसमें लज्जा, मान, धर्म हानि, शारीरिक हानि, प्रत्यक्ष हानिकारक है और परलोक में भी दुःखदायी है। ऐसा समझते हुये भी हम अपने मन को रोक नहीं सकते हैं इसका क्या कारण है ?

उत्तर—श्रीगुरुदेव ने कहा अज्ञान के कारण उसमें सुख बुद्धि हो रही है, इसलिये आसक्ति और इन्द्रियों को उस पाप से रोक नहीं सकते हैं, पाप और पुण्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सच्चे धर्म मार्ग का अवलँबन नहीं किया, अनादि काल से इन्द्रियों की गुलामी किया इन्द्रियों के सुख को अपना सुख समझा जबतक इसका अन्तर नहीं समझेगा तब तक अज्ञानी जनका पूजा पाठ, जप, तप सब व्यर्थ है।

प्रश्न—मान, बड़ाई, और पूजा अनिष्टादि चाहना परमात्मा की प्राप्ति में बाधक है यह काम जानते हैं अच्छे पुरुषों से सुनते हैं, शास्त्र में भी पढ़ते हैं और विवेक से समझते हैं तथा विचारों के द्वारा इनके हटाने की चेष्टा भी करते हैं परन्तु तो भी उसी में फँसजाते हैं इसका क्या कारण है ?

उत्तर श्रीगुरुदेव कहते हैं—कि यह दोष आत्म कल्याण की प्राप्ति में महान् बाधक है यह बात न तो हम समझते हैं और न इसका समुचित प्रयत्न करते हैं न इसके हटाने का प्रबल प्रयत्न करते हैं, देह के नाम रूपादि में अभिमान करते हैं जो सर्वथा अज्ञान मूलक हैं क्योंकि देह की मान बड़ाई के लिये पूजा प्रतिष्ठादि करता रहता है इसलिये मामूली साधन और प्रयत्न के द्वारा यह हटाने की बात नहीं है, देह की नाम, बड़ाई दूर करने के लिये सद्शास्त्र का स्वाध्याय और सत पुरुषों का सत्संग करना चाहिये तो उपर्युक्त सभी दोष हटजायेंगे।

प्रश्न—जब कि विषय सेवन की अनादिकाल से आदत पड़ी हुई है तो उसको कैसे दूर किया जा सकता है ?

उत्तर में श्रीगुरुदेव ने प्रवचन किया कि जैसे एक दो साल का बालक टट्टी पेशाब में हाथ छोड़ देता है और अज्ञान के कारण वही हाथ मुख में भी रख लेता है किंतु समझदार पुरुष उसके दोषों को बतलाकर बार बार उसे समझाकर उसे बुरा बतलाते हैं और उससे निषेध कराते हैं। ऐसा करते रहने पर उस बालक की आदत ठीक हो जाती है लड़कपन दूर हो जाता है, इसी प्रकार विषयों को बुरी दृष्टि से देखने वाले विरक्त पुरुषों को बार २ समझाने और उसका निषेध करने पर उनके अभाव से विषयों से अरुचि होकर वैराग्य हो सकता है।

प्रश्न—झूठ कपट चोरी हिंसा अविचार मांस भक्षण मद्य और मादक वस्तुओं का पान जुवादि दुराचार, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर,, ममता अहँकार राग द्वेष अज्ञानादि दुर्गुण हमेशा हानिकारक और त्याज्य हैं। तथा दान, तीर्थ, पूजा, तप, सेवा, व्रतउपवास परोपकार इत्यादि सदाचार क्षमा, दया संतोष समता शांति, धीरता गम्भीरता, शूरवीरता, ज्ञान, वैराग्य श्रद्धा, प्रेमादि उत्तमगुण सर्वथा लाभ प्रद और सेवन करने योग्य हैं इस प्रकार शास्त्र और महा पुरुष भी कहते हैं तथा विचार से हम भी मानते हैं कि और दुर्गुण दुराचार त्यागने एवम् सद्गुण और सदाचार ग्रहण करने केलिये प्रयत्न भी करते हैं परंतु सफल नहीं होते हैं इस का क्या कारण है ?

उत्तर--श्रीगुरुदेव ने प्रवचन किया भगवान शास्त्र, महापुरुष, परलोक, अपनी आत्मा तथा दूसरे की आत्मा, शुभाशुभ कर्मों के फल में विश्वास की कमी के कारण हमारी मान्यता सन्देह पूर्ण और कमजोर है और हमारा प्रयत्न भी शिथिल है यही कारण है हम त्याग ने योग्य वस्तुओं का त्याग नहीं करते हैं और ग्रहण करने योग्य का ग्रहण नहीं करते हैं, वास्तव में यदि हम वास्तविक रूप से त्याग और ग्रहण योग्य वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लेते तो त्याग ने योग्य वस्तुओं का ग्रहण नहीं करते और न हमारे हृदय में कोई बुरी भावना टिक सकती है इसी प्रकार वास्तव में हम ग्रहण योग्य वस्तुओं को ग्रहण योग्य जान लेने तो सद्गुण और सदाचार ग्रहण किये बिना हम कैसे रह सकते।

प्रश्न—सब शास्त्र और महा पुरुष कहते हैं तथा विचार के द्वारा हम भी मानते हैं फिर भी हम लोगों के द्वारा उन नित्य आनन्द स्वरूप भगवान के द्वारा कहा हुवा धर्म और उनकी आज्ञा का पालन नहीं हो सकता इसका क्या कारण है ?

उत्तर—श्रीगुरुदेव ने कहा शास्त्र के अनुकूल चलनाही भगवानका कानून है शास्त्रके अनुकूल चलना ही उनके कानून के अनकूल चलना है तथा शास्त्र के विपरीत आचरण करना ही उनके विरुद्ध आचरण करना है इस प्रकार भगवान और उनके कानून के तत्त्व को जानने वाले पुरुष से कभी भी किंचित शास्त्र के विरुद्ध कार्य नहीं हो सकता है । प्रमात्मा के उपर्युक्त सम्पूर्ण गुणों का रहस्य जानने पर प्रमात्मा के सिवाय और किसी पर प्रीति कैसे हो सकती है, वह तो प्रमात्मा और धर्म का अनयन्य भक्त और उपासक बन जाता है धीरता, वीरता, गंभीरता शांति इत्यादि अनेक गुणों काभंडार बन जाता है कहा भी है:—

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यम् विनाच विपरीतात्
निस्संदेह वेध्यस्तदाहुस्त ज्ञानमार्गामनः ॥

अर्थात सर्वज्ञ उस जानने को ज्ञान कहते हैं। जो न न्यून हो, न अधिक हो, न विपरीत हो, संदेह रहित हो और यथार्थ स्वरूप हो।

अर्थ—उन परमात्मा के तत्त्व को जानने के लिये उनमें परम श्रद्धा और प्रेम करने के लिये हम लोगों को हर समय स्मरण रखते हुये उसकी आज्ञा का पालन करने के लिये प्रयत्न शील रहना चाहिये उनके मार्ग पर चलना और अश्रद्धा नहीं करना एवमं उनके मार्ग पर श्रद्धा रखने वाले महापुरुषों का सत्संग करना इत्यादि सत्कर्म करने वाला सच्चा धर्मात्मा और प्रेमी तथा भक्त कहलाता है इससे संसार में कोई आपत्ति विपत्त नहीं होती है, और कर्म की निर्जरा होने पर सुगमता से अपने मार्ग को तय करलेता है।

गुलाबराय बसंतलाल जैन दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख १४-८-५३ दिन शुक्रवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा

निष्कलंक आत्माको अपने ही द्वारा अपने में देखकर उसमें रसलीन होना
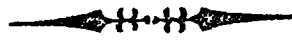
निष्कलँक आत्मा को अपने ही द्वारा अपने में देख करके और उसमें रत होता है वही सम्पूर्ण जगत को स्पष्ट रूप से देखता है। जिसको योगीगण भी कठिनता से देखते हैं ऐसे परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ वही मेरी रक्षा कर सकता है।

जैन शास्त्र में गुण गुणी का भेद नहीं माना गया है अन्य मतावलँबी भेद मानते हैं आत्मा के भीतर केवल दर्शन और केवल ज्ञानादि गुण हैं इनसे आत्मा जुदा नहीं हो सकता है, ये आत्मा के अमिक गुण हैं, आत्मा अपने भीतर रहकर अपने ही को देखता है दूसरा कोई नहीं, और ऐसी ही विचार धारा को स्तुति कहते हैं

जो अभीष्ट प्रति बोधन तुझको ।
तो आत्मन् हो निज ज्ञानी ॥
नेत्रवान अन्धे को खेता ।
नहिं अन्धा यह जग जानी ॥२॥
आतम बोध से सून्य हृदय को ।
नहिं प्रति बोधन का अधिकार ॥
तरण कला से रहित पुरुष का ।
यथा तरणशिक्षण निःसार ॥१॥

सारांश यह है कि प्रति बोधन उन्हीं को करना चाहिये जो उस मार्ग पर चलने वाले हों जिनकी बुद्धि पर द्रव्य के संसर्ग से मलीन हैं। उनका उपदेश कल्याण कारी नहीं हो सकता है जो सुमार्ग पर चलने वाले हैं उन्हीं के उपदेश का प्रभाव पड़ता है मुख्य रूप से केवल भगवान ही उपदेश कर्ता हो सकते हैं, तथा केवली भगवान के द्वारा कुपदिशित मार्ग का ही जो उपदेश देते हों वह ठीक हो सकता है। तैरने की शिक्षा देने वाला तैराक होना चाहिये। अन्यथा दोनों का नाश सम्भव है अच्छी तरह से आत्मा के स्वरूप को जानने वाले का उपदेश ही योग्य उपदेश कहा जा सकता है।

प्रश्न—उपदेश किसको देना चाहिये ?

उत्तर—प्रथम अपनी आत्मा को उपदेश देना चाहिए, हे उच्च बुद्धि के धारक आत्मन् तू दूसरे को उपदेश देना चाहता है तो अपनी

आत्मा को शोधन करके उसमें यदि तुझे कुछ स्वाद मिले तो उसी स्वाद का वर्णन दूसरे के लिये करना चाहिये।

अन्धे के हाथ में यदि लालटेन भी दे दी जावे और उससे कहा जावे कि अगाड़ी कुंवा है उससे बचकर जाना परन्तु नेत्र उसके न होने कारण लालटेन से उसका लाभ नहीं हो सकता हाँ यदि कोई नेत्रवान अन्धे को साथ ले जावे तो जोखिम से बचकर निकल सकता है, पहिले स्वयम् नेत्रवान ज्ञाता बनो तो दूसरे को ज्ञाता बना सकते हो जिसने आत्म स्वरूप को जान लिया है उसकी प्रवृत्ति वाह्य रूपादि में लिप्त ही हो सकती है और जो वाह्य रूपादि में लिप्त है वह आत्म ज्ञानी नहीं हो सकता है।

अनेक जन्मों में अनेक प्रकार की स्वर्ण रत्न, हाथी घोड़ा, इत्यादि की परीक्षायें की परन्तु गुण, गुणी, धर्म, धर्मी, ज्ञान, ज्ञानी की परीक्षा कभी नहीं की यदि अपने आत्मा की दर्शन, ज्ञान, चारित्र गुण की परीक्षा करले तो समझना चाहिये कि तुमने परीक्षा कर लिया अन्यथा खुद डूबैगा और दूसरे को भी डुबा देगा।

जो जीव मिथ्यात्व से विमूढ़ हैं जिनवचन जिन शास्त्र में जिनकी किंचित् भी श्रद्धा नहीं है। मोह निंद्रा में सोये हुये हैं खुर्राटे ले रहे हैं, खुर्राटे की नींद सुनकर बाहर से चोर आकर ताला तोड़कर सम्पूर्ण कमाया हुवा द्रव्य लेकर चोरी कर ले जाते हैं अतएव श्री गुरु कहते हैं, कि मोह रूपी निंद्रा से जागो और अपनी आत्म निधि की रक्षा करो जिनकी मोह निंद्रा जल्दी खुलने वाली हैं उनको श्रीगुरु का उपदेश कल्याण कारी हो सकता है। इसीलिये श्रीगुरु उच्च स्वर से उपदेश करते हैं कदाचित् किसी जीव का कल्याण हो जावे।

जो जीव आत्मस्वरूप का जानकार है वही जानकार कहा जा सकता है परस्पर में एक व्योपार के व्योपारी अपने व्योपार की चर्चा कर के आनन्द मानते हैं उसी तरह आत्म स्वरूप के जानकार परस्पर में बात चीत करके आत्मानुभव प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञानी को ज्ञानी ही सहायता कर सकता है, जो उपदेश के योग्य हो उसी को उपदेश देना कार्य कारी हो सकता है। जो मोह की चिर निंद्रा में सोये हुये हैं उनको उपदेश देना व्यर्थ है जो पुरुष निर्वाण वादी हैं, अर्थात् मोक्ष का मानने वाला है मोक्ष पदार्थ है, ऐसा दृढ़ श्रद्धानी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है परन्तु नास्तिक वादी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं ऐसे अज्ञानी पुरुषों को उपदेश देना व्यर्थ है। एककायस्थ कहताथा ब्रह्मा के मुख से अग्नि निकलती है इस पर उसने सोचा जो ब्राह्मण है उसके मुख से भी अग्नि निकलती होगी। एक दिन एक कुवां पर एक ब्राह्मण मिल गया वह सो रहा था उस समय कायस्थ को तम्बाकू पीने की चाह हुई। इधर उधर से कंडा इकट्ठा करके ब्राह्मण जो सोया हुवा था उसके मुंह पर रख दिया कि अग्नि निकलकर कंडे को सुलगा देगी और पास में बैठकर इंतिजार करने लगा। उसने सोचा बाहर रखने से काम नहीं बनेगा। मुख के भीतर भर दिया इस पर वह जाग उठा और क्रोध करके दो चार चपत कायस्थ को जड़ दिया उसने कहा मैंने सुन रखा था कि ब्रह्मा के मुख से अग्नि निकलती है आप ब्राह्मण हैं आप

के मुख से अग्नि निकलती होगी। तो ऐसी बुद्धि वाले को क्या कहा जाय जिसकी बुद्धि विपरीत है वह दूसरे को क्या उपदेश दे सकते हैं।

जो स्वर्ण की परीक्षा करने वाले हैं वही स्वर्ण की परीक्षा कर सकते हैं। दूसरा नहीं कर सकता है—आत्मज्ञानी साधु ही मोक्षमार्ग का प्रवचन कर सकते हैं अनात्मज्ञानी मोक्षमार्ग का वर्णन नहीं कर सकता है।

आत्मा का अस्तित्त्व आत्मज्ञानी ही बतला सकता नास्तिक नहीं कर सकता है वह तो कहता है कि वाह्य में जो वस्तुयें दिखलाई देती हैं, खाना, पीना, मौज, शौक करना श्रेयस्कर है मरने के बाद कौन देखा क्या होता है स्वर्ग नर्क सब यहीं पर है खाना पीना मौज में रहना यहीं ठीक है जो प्रत्यक्ष नहीं देखने में आता है उसके लिये बेकार कोशिश करना है जिसको कभी देखा सुना नहीं उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना बेकार है किसी अच्छे स्थान में चलकर सिनेमा नाटक इत्यादि देखना श्रेयकर हैं, पंच भूतों से निर्मित यह शरीर नष्ट हो जाता है उस समय कुछ नहीं रह जाता है, अतएव जब तक जियो खाओ पियो मौजकरो, परन्तु ज्ञानी महानुभाव कहते हैं कि आत्मा दर्शन, ज्ञान मई है यदि तुम्हें इसका ज्ञान करना है जानना है। तो किसी आत्मज्ञानी के पास जाओ और पूछो तो वही तुमको आत्म-स्वरूप का ज्ञान करावेगा इसी से कल्याण हो सकता है।

कटहल वृक्ष के ऊपर भी लगता है और पृथ्वी के भीतर भी फलता है जिसको कुछ ज्ञान है पृथ्वी इत्यादि का कुछ फटना देखकर पहिचान लेते हैं कि इसके भीतर कटहल का फल है और उसे खोद कर निकाल लेते हैं। इसी तरह से आत्मा इस शरीर के भीतर है। परन्तु सभी को इस का ज्ञान नहीं है जो जानने वाला ज्ञानी है वही जानता है और दूसरे को इसका भेद बतलाकर जान कारी करा सकता है। जैसे हँस पक्षी ही दूध और पानी अलग २ कर सकता है कौवा विचारा क्या कर सकता है।

आत्मा का ज्ञान दर्शन गुण कभी नष्ट नहीं हो सकता है, शरीर ही नष्ट होता है। आत्मा की पर्यायें अनेक हैं जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, इत्यादि परन्तु वास्तव में आत्मा इन पर्यायों से पृथक हैं जैसे सोने का कुंडल बन जाने पर कुंडल संज्ञा हो जाता है कुंडल टूटने पर फिर सोना रह जाता है किसी भी पर्याय में रहे परन्तु सोना सदैव विद्यमान रहता है। आत्म अनादि काल से चार गति रूपी चक्र में बैठा हुआ घूमता रहता है और मनुष्य पर्याय में मनुष्य देव पर्याय में देव नरक में नारकी इत्यादि मानकर अपने को भूल जाता है पर्याय बुद्धी बन जाता है। अनादिकाल से परसंयोग रहने से पर्याय बुद्धी हो रहा है, सोने में जितना दाग है उसे दूर करने पर शुद्ध सोना बन सकता है, कोई ब्राह्मण वेश्या के घर में बैठने पर अशुद्ध माना जाता है परन्तु वही ब्राह्मण स्नानादि कर लेने पर शुद्ध हो जाता है, इसी तरह से आत्मा पर संयोग में पड़ा रहने पर अशुद्ध हो रहा है विचार धारा स्नान कर लेने पर शुद्ध हो सकता है। आत्मा कभी पर वस्तु में नहीं मिल सकता है वह सदैव प्रत्येक अवस्था में देह से भिन्न ही रहता है जब आत्मा शरीर से निकल जाता है जिसे मृत्यु कहते हैं तब केवल शरीर ही संसार

में पड़ा रह जाता है यदि शरीर आत्मा होता तो शरीर आत्मा के साथ चला जाता परन्तु ऐसा देखने सुनने में नहीं आता है और न कभी आवेगा, आत्मा का सदैव विचार करने पर आत्मा का ज्ञान प्रत्यक्ष में हो जाता है तब उस आत्मा को जो सुख प्राप्त होता है वह इन्द्रिय गोचर नहीं है और न इन्द्रियों के द्वारा बतलाया ही जा सकता है जैसे मिश्री खाने वाला केवल यही कह सकता है कि मिश्री मीठी है परन्तु कोई पूछे कि कैसी मीठी है तो इसका यही उत्तर हो सकता है कि खाकर के देखो तो समझमें आवे अतएव आत्मा का ध्यान अध्ययन अपने भीतर ही करना चाहिये वाह्य आडम्बर से कुछ नहीं प्राप्त होसकता है। वाह्यमें तो जितना है वह पर द्रव्य है पर द्रव्यके विचार से अपना क्या लाभ हो सकता है लाभ तो अपनी चीज के विचारने से हो सकता है और उसके गुणों का अध्ययन करने से हो सकता है। संसार में बहुत से भेषधारी पाखण्डी पंचाग्नि इत्यादि तपस्या द्वारा आत्मा को प्राप्त करना चाहते हैं परंतु आत्मा हिंसादि दोषों को दूर करने से प्राप्त होता है न कि हिंसादि करने से यदि हिंसा ही में धर्म माना जावेगा तो अहिंसा की क्या आवश्यकता रह जायगी। अतएव अपने विचारों को सद्विचारों द्वारा शनैः शनैः शुद्ध करते जाने से आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो जावेगी और जिस समय आत्मज्ञान अर्थात् सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जावेगा उस समय यह वाह्य संसार फीका, नीरस, बेकार दिखाई देने लगेगा। इसलिये सद्गुरु का बारम्बार यही उपदेश होता है कि किसी तरह से दुनियां के झँझटों को छोड़कर किसी एकांत स्थान में बैठकर आत्मा के स्वरूप का चितवन करो तो कुछ ही समय में आत्म स्वरूप की प्राप्ति हो जावेगी यदि आत्म स्वरूप की प्राप्ति होगई तो मिथ्याज्ञान, सम्यक्ज्ञान हो जावेगा जैसे मदिरा पान करने वाला मदिरा पी कर अपनी माता को भी माता कहता है परन्तु उसका ज्ञान समीचीन ज्ञान नहीं कहा जा सकता है। जब मदिरा का नशा उतर जाय तो उसका ज्ञान ठीक माना जा सकता है। इसी तरह से जब तक संसारिक मदिरा का नशा जीव पर विद्यमान है ज्ञान समीचीन ज्ञान नहीं कहा जा सकता है जब वह संसारिक वासनाओं को छोड़ दें तो सम्यक्ज्ञान प्राप्त कर सकेगा और यही कल्याणकारी है इसे ही जिस तरह बने प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये।

श्रीमती धर्मपत्नी ला० श्रीमन्दरदास जी जैन मेरठ निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख १५-८-५२ दिन शनिवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में यह समझाया कि स्त्रियां घर को स्वर्ग कैसे बनाती हैं:—
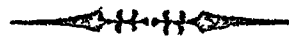
पुरुष और स्त्रियों की भलाई के लिए एक कथा कहता हूँ उसे शांत चित होकर सुनों किसी संयुक्त परिवार में दो स्त्री २ पुरुष पाँच लड़के और दो लड़कियां थी लड़कों का विवाह तो हो चुका था जिसमें चार के बाल बच्चे थे। लड़कियाँ दोनों कुवांरी थी उसमें सबसे छोटे लड़के का विवाह हुये अभी थोड़े ही दिन हुये थे उसकी स्त्री अभी मइके से नहीं आई थी इस तरह सब मिलकर परिवार में सात स्त्रियाँ थी। अगर वे चाहती तो घर का काम काज सभी अच्छी तरीके से कर सकती थीं परन्तु उनकी आपस में पटती नहीं थी प्रति दिन आपस में तू तू मैं-मैं हुआ करती थी घर में अशांति का साम्राज्य था इसी समय छोटे लड़के की भी स्त्री आ गई वह समझदार पढ़ी लिखी तथा कुलीन घराने की थी वह घर में आते ही इस कलह कारणी वातावरण को देखकर बहुत घबड़ाई एक दिन अपनी जेठानी सास वगैरह को आपस में लड़ते देखकर मन में रोने लगी तथा भगवान् से प्रार्थना करने लगी हे भगवन् इस राक्षसी घर से अब मेरी रक्षा करो हे प्रभू क्या यही सब देखने के लिये आपने मुझे ऐसे घर में भेजा है। यहाँ तो मैं एक दिन भी नहीं रह सकती हे भगवन न जाने पूर्व भव में मैंने कौन रस दुष्ट कर्म किया था जो ऐसे घर में आना पड़ा इस प्रकार रोते रोते सो गई तब उसको मालूम हुवा कि कोई कुछ कह रहा है बेटी घबड़ाओ मत इस घर का सुधार करने के लिये ही तुझको यहाँ भेजा है तेरी यहाँ आवश्यकता थी इस प्रकार सान्त्वना पूर्ण वचन को सुनकर उसके मन में शाँति हुई उसने अपने मन में अपना कर्त्तव्य निश्चय किया और सोचने लगी कि इस घर में कलह क्यों होती है। यह सब सोचकर उसने उन सभी स्त्रियों की बारी लगा दी सास ऊपर का काम करती थी बहुयें रोटी बनाती थीं और बाकी कामों के लिये भी बारी लगा दी उसी के अनुसार सब काम करने लगीं परन्तु अगर किसी रोज कोई बीमार पड़ जाती तो

उसका काम कौन करे यह सोचकर सभी बहाना करने लगती अगर किसी रोज बाहर की कोई चीज आ जाय तो सभी जुटकर झगड़ा करने लगतीं और आपस में गाली गलौज की भी नौबत आ जाती इन सब बातों को सोचकर छोटी बहू को बड़ा दुःख हुआ तब उसने अपने स्वप्न को याद कर अपनी जिठानी के पास गई उस दिन जेठानी की रोटी बनाने की बारी थी तब उनसे कहा कि मेरे पास कोई काम नहीं है इस लिये अपनी बारी मुझको दे दो मैं आपका बड़ा एहसान मानूँगी तब जेठानी आना कानी करने लगी और बोली बहू अभी तुम्हारी उमर खेलने खाने की है अभी कुछ दिन तो अरामकर लो आखिर उमर भर तो चूल्हा फूँकना ही है। तब छोटी बहू ने कहा कि मै आपके पैर पड़ती आप मुझे निराश न कीजिये अभी से अगर मैं आराम तलब हो जाऊँगी तो आगे मुझे परेशानी उठानी पड़ेगी मैं किसी काम की न रहूँगी। मुझसे कुछ अपराध हो गया है इसी से मुझे आप अधिकार से वँचित कर रही हैं यह कह कर वह रोने लगी तब जेठानी ने कहा बहू क्यों रोती हो! यह कहकर उसने अपनी बारी छोटी बहू को दे दी इसी प्रकार कहकर धीरे धीरे सभी जिठानियों की बारी उसने ले ली और रसोई बनाने लगी पहले सभी को खिला देती तत्पश्चात् आप भोजन करती अनेक प्रकार के पकवान साग वगैरह बनाकर खिलाती अगर कोई अतिथि आ जाय तो बड़े प्रेम से उसको खिलाती इतना कहकर महाराज ने कहा कि मुझे एक दृष्टांत याद आ गया एक दफे एक ब्रह्मचारी आया वह सबके यहाँ बारी से खाना खा चुका इसके बाद एक घर बाकी रह गया तब सब लोगों ने उसी के ब्रह्मचारी को भेज दिया सेठ भी घर पर बैठे थे ब्रह्मचारी को आया देखकर सेठ जी ने आव भगत की और पूछा आज आप यहाँ कैसे आ गये तब ब्रह्मचारी ने कहा कि मैंने सोचा है कि आज आप के यहाँ खाना खायें और सफर के लिये कुछ किराया मिल जाये तब सेठ ने कहा कि आपने नहाया है या नहीं तब ब्रह्मचारी ने कहा कि आप ही के यहां नहा लेंगे तब सेठ ने कहा कि यहां पानी भी तो नहीं है आप बाहर से नहा आइये तब तक यहां खाना तैयार हो जाय ब्रह्मचारी को उधर भेजकर सेठ सेठानी के पास पहुँचकर कहने लगा कि आज एक ब्रह्मचारी आया है जो यहां खाना खाना चाहता है तुम जाकर ऊपर कमरे में बैठो खाना मत बनाना इतने में ब्रह्मचारी आ गया तब सेठ ने कहा कि आज सेठानी की तबियत खराब है मेरे यहाँ खाना नहीं बनेगा आप दूसरा घर तलाश कर लीजिये तब ब्रह्मचारी ने कहा कि मैं आज आप के यहां ही खाना खाऊँगा यह मैंने निश्चय कर लिया है तब सेठ ने कहा कि खाना बनेगा ही नहीं आप भूखे रहिये वह ब्रह्मचारी भूखा ही वहां बैठा रहा और सेठ सेठानी भी भूखे रहे इस तरह से शाम हो गई तब ब्रह्मचारी बाहर जाने का बहाना करके घर के अन्दर छिप रहा तब सेठ ने ब्रह्मचारी को चला गया जानकर सेठानी के पास पहुँचा और बोला कि तुम चुपके से खाना बना लो और पीढ़ा थाली वगैरह चुपके से रसोई में रख देना मैं पीढ़ा रख आऊँगा तब तुम चुपके से अकेले में खाना परोस देना यह सब ब्रह्मचारी सुन रहा था जब सेठानी

खाना बना चुकी तब सेठ के कहे मुताबिक उस ने पीढ़ा थाली वगैरह रखदी और इन्तजाम करने लगी चुपके से ब्रह्मचारी महराज उस पर जा विराजे तब सेठानी ने खाना परोस दिया और ब्रह्मचारी महराज खा पीकर उठकर अलग जा छिपे तब सेठ आया और पीढ़े पर बैठ गया तब सेठानी ने कहा कि अभी आप खा गये और फिर आप आ गये तब सेठ ने कहा कि मैंने अभी कहां खाया कौन खा गया आपस में झगड़ा करने लगा तब ब्रह्मचारी ने कहा कि मैंने खाया है मुझे दक्षिणा दो यह देखकर सेठ ने चुपचाप दक्षिणा देकर विदा किया यही हाल आज सभी का हो रहा है परंतु वह छोटी बहू इस मेल की नहीं थी वह सभी के साथ में मेल रखकर गृह कार्य चलाने लगी।

एक दिन सास ने कहा कि बहू तुम सभी का काम क्यों करती हो, तब बहू ने कहा कि मेरा यही कर्त्तव्य है इस बात को सुनकर सास बहू की तारीफ करने लगी और मन में कहने लगी कि छोटी बहू मुझको लक्ष्मी सी मिली है। एक दिन ससुर सभी बहुओं के प्रति वर्ष भर के लिये बारह २ साड़ी लाये और सभी को देदीं इसके बाद छोटी बहू को देने लगे तब उसने कहा कि मेरे पास कपड़े बहुत हैं अभी मुझ को आवश्यकता नहीं परन्तु ससुर के आग्रह करने पर उसने ले ली और सभी जेठानियों को दो दो साड़ी अपने हिस्से की देआई इस प्रकार झगड़ा शांत करके आराम से रहने लगी एक दिन जेठानी से उसने कहा कि सायंकाल को रसोई भी मुझको बनाने दीजिये और आज्ञा लेकर बनाने लगी इस प्रकार सभी कार्य छोटी बहू करने लगी एक दिन सास ने बहू से पूछा बहू घर का सभी काम तुम्हीं क्यों करती हो मुझे ऐसा करने से पुण्य प्राप्त होती है तथा स्त्रियां स्वर्ग मोक्ष सुख पाती हैं। यह सुनकर सभी स्त्रियों ने अपने मनमें कहा कि सभी पुण्य इस को क्यों लेनेदें यह सोचकर सभी स्त्रियां छीन २ कर काम करने लगी तब छोटी बहू ने सोचा कि इन लोगों ने मुझसे सारा काम छीन लिया अब कोई दूसरा काम सोचना चाहिये यह सोचकर उसने पति से कहा कि बाजार से गेहूं लादो मैं तो आटा खुद अपने हाथ से पीसूँगी गेहूँ ला दो क्योंकि बाजार से जो आटा आता है वह घुना तथा माटी मिला और कंकड़ पीसा हुआ आता है उसमें ताकत नहीं रहती है तब फिर क्या था १ बोरा गेहूं आगया छोटी बहू सुबह उठकर आठ दश सेर गेहूँ पीस कर रख देती थी यह देखकर सास फिर उसके पास आई कहा कि बहू यह क्या दूसरा आत्मकल्याण करने का उपाय सोच निकाला तब बहू ने कहा अपने हाथ का पीसा आटा शुद्ध होता है और शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है जब सास ने उसके वचन सुने तो सास बहू से पहिले उठकर आटा पीसने लगी यह देख सब बहूयें होड़ लगाकर सुबह उठतीं और आटा पीसने लगीं यह देख बहू ने दूसरा उपाय निकाला और सुबह उठकर सारा घर बहारती और गोबर पाथती यह देख सास ने कहा बहू यह नौकर का काम तुम क्यों करती हो तब बहू ने कहा कि यह सब काम की रहस्य बताने से सारा काम में से हाथ बटा लेती यह नहीं बताऊँगी तो सास ने कहा अब तुम्हारे काम में मैं बाधा नहीं

डालूँगी तब उसने कहा कि रोटी करने से साल भर में आत्म कल्याण आटा पीसने से छः माहमें शुद्ध होता है वहां अपने हाथ बहार पानी भरने से ४ माह में आत्मकल्याण का फल मिलेगा। तब सास वगैरह सब उसके काम में हाथ बँटाने लगी तब वह अपने हाथ बरतन मांजने लगी तब सास ने पूछा बहू तुम यह काम अपने हाथ क्यों करती हो इस में ५) माह सिर्फ बचेंगे और कपड़ मैले होगे और जेवर घिस जावेंगे तो १०) का नुकशान होगा तो उसने कहा यह ठीक किंतु आत्म कल्याण २ ही माह में हो जावेगा। तो सब मिलकर यह भी काम उससे छीनकर सब अपने २ बारून मांजने लगी अब देखिये की जहां पर इतना कलह मचा था वहां इतनी शांति स्थापित हो गई कि वह घर स्वर्ग बन गया यह देख सब पड़ोसी जो कि घर का काम छोड़कर इनका झगड़ा देखने आती थीं वह सोचने लगी अब इनके में कितनी शांति स्थापित हो गई वह सब आ, आ, कर इनसे शिक्षा ग्रहण करने लगीं पुरुष भी सब काम अपने २ करनेमें खूबही उत्साह प्रगट किया। कहाभी है-:
साध्वी शीलवती दया वसुमती दाक्षिण्य लज्जावती तंवी पाप परांमुखी स्तिनमती मुग्धाप्रिया लापिनी देव सद्गुरु बंधु सज्जन रता तस्य स्ति भार्या गृहे तस्या र्थागम काममोक्ष फलदाः कुर्वंति पुण्याप्रिया

जिस घर में स्त्री पतिव्रता, शीलवती, दया, रूप धन वाली, शुभ गुण युक्त लज्जा वाली, नाजुक पाप से दूर रहने वाली प्रसन्न मुख वाली देखने में सुन्दर प्रिय बोलने वाली, देव शास्त्र गुरुओं में तथा सज्जन पुरुषों में प्रीति रखने वाली होती है। उस पुरुष के धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष पुण्य पर प्रीत रखने वाली है। सचमुच में वह लक्ष्मी का ही घर या सरस्वती का ही घर है, जो तीनों पुरुषार्थ को प्राप्त करने में समर्थ है वही स्त्री का घर है।

जहां पहिले उनमें काम से जी चुराने का झगड़ा होता था। वहां अब वे सब के सब एक दूसरे का काम छीन कर करने लगे। जहां पहली लड़ाई नरकों—में ले जाने वाली थी, वहां यह दूसरी लड़ाई कल्याण करने वाली थी कहना ही होगा कि यह सब परिवर्तन छोटी बहू के सद्भाव, सद्विचार और सद्चेष्टाओं का सत्फल था जिस प्रकार एक मछली सारे तालाब को निर्मल कर देती है उसी प्रकार एक ही महान् एवं पवित्र आत्मा घर भर ही नहीं, मुहल्ले, गांव और नगर भर का सुधार कर देती है, संग की ऐसी ही महिमा है, सभी माता बहिनों को को इस आख्यायिका से शिक्षा लेकर आत्मा के कल्याण के लिये निष्काम भाव से दूसरे की सेवा का व्रत ले लेना चाहिये ऐसी सेवा बहुत ही शीघ्र मुक्ति का कारण बन जाता है। अतएव सभी कल्याण चाहने वाली स्त्रियों को अपने सम्बधियों की सेवा तन मन धन लगाकर अपनी स्त्री पर्याय को सार्थक करना चाहिये, देव शास्त्र तथा गुरू की भक्ति तथा उपासना भी यथोचित करनी चाहिये और अपनी संतान को धार्मिक शिक्षा उच्चकोटि की विद्या देकर सुयोग्य बनाना चाहिये, सदैव धर्मके अनुकूल चलती हुई जीवन की कठिनाइयों को धीरता के साथ पार करना चाहिये, यही महार्षियों का कथन है।

किशुनचन्द जी जैन लहरपुर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख १६-८-५२ दिन रविवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि जीव इस संसार में किस भांति भटकता है:—
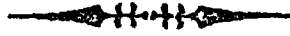
(१) एक गाय तुरन्त के जन्मे हुए गाय के बच्चे को देखा, वह दूध की आशा में गाय का थन ढूँढ़ता है, गाय के गले में, पेट में, इधरउधर सभी तरफ मुंह मारता है, परन्तु थन को नहीं पकड़ सकता! दुहने वाला ग्वाला बछड़े को पकड़ कर थनों में लगा देता है फिर तो बछड़ा आसानी से थन छोड़ता नहीं! ठीक यही दशा जीव की है आनन्द एवं सुख की खानि से इस जीव का उद्गम हुआ है, अँग्रेजी में एक कवि ने कहा कि:—

Trarctting clouds of glory do we come from god who is our home.

यह जीव उसी अपने सुख की खोज में हमेशा प्रयत्न करता है, परन्तु उसी बछड़े की भाँति इस जीव के निशाने ठीक नहीं बैठते, इसे सद्गुरु रूपी ग्वाले की आवश्यकता है जो इसे जबरदस्ती भक्तिरूपी गौ के प्रेमरूपी थनों में लगा दे तब वहाँ से सुखरूपी दूध मिलने लगता है बस फिर सुख से यह जीव कृतार्थ हो जाता है उसे इच्छित सुख की प्राप्ति हो जाती है। फिर उसे वह कभी नहीं छोड़ता है।

(२) यह बात सभी को मालूम है कि मछली जल में रहती है जल में ही उसका जीवन है। परन्तु शायद किसी किसी को ही मालूम है कि जल में रहते हुए भी मछली प्यासी रहती है, साधारण तौर से वह पानी नहीं पी पाती, जब उसे पानी पीना होता है तो वह उलट जाती है, उलटी होने पर वह जल पी पाती है। यह जीव भी सच्चिदानन्द धन परमात्मा का अमृतमयी जल अपने पास ही है और हमेशा उसी में रहते हैं फिर भी यह जीव हमेशा सदा आनंद रूपी जल के लिये प्यासा और दुःखी रहता है। परन्तु इसे अपने को पांचों इंद्री क्षणिक योग सामग्री से उलटना पड़ेगा तभी सच्चिदानंद परमात्मरूपी हमेशा संसाररूपी तृष्णा को मिटाने वाला आनँदमय रूपी जल मिलेगा और इससे दुःख दूर हो जायगा और आनँद की प्राप्ति हमेशा होगी!

(३) जैसे नारियल के अन्दर मीठा पानी होता है उसे पीने के लिये नारियल की जटा

नारियल का खोपड़ा और नारियल के अन्दर की गरी इन तीनों को फेंकना पड़ता है इन तीनों की अवहेलना करनी पड़ती है लक्ष केवल, जल का रहता है ठीक इसी प्रकार से अपना लक्ष्य आत्मदर्शन, आत्म प्राप्ति होनेपर, जटा, खोपड़ा और गरी की तरह इस शरीर तथा अन्य वाह्य सामग्री पूर्ण फेंक देने से उसकी प्राप्ति तुरन्त ही हो जाती है।

कोई शिष्य पूछता है कि हे गुरुदेव, मैं आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये खूब कोशिश करता हूं परन्तु मन के आगे मेरी कुछ नहीं चलती गुरु कहते हैं, खूब कोशिश करता हूँ यह मानना गलत है कोशिश थोड़ी करते हो और उसको मान वहुत लेते हो !

प्रश्न—इसको सुधारने के लिये कोशिश करूँगा किन्तु शरीर में और सांसारिक विषयों में आ न रहने तथा मन चँचल रहने से मैं उसे प्राप्त नहीं कर सकता हूँ इसलिये मेरे को यह वहुत कठिन प्रतीत होता है !

उत्तर—गुरुदेव ने कहा, कठिन मानते हो इस-लिये कठिन प्रतीत होता है वास्तव में यह कठिन नहीं है।

प्रश्न—हे गुरुदेव कठिन कैसे नहीं मालूम, होता मुझे तो ऐसा प्रत्यक्ष मालूम होता है।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि ठीक मालूम हो तो होता रहे किन्तु तुझको तो हमारी वात का और ही ध्यान देना चाहिये।

प्रश्न—गुरुदेव आज से मैं आपके वचन पर भरोसा रखने की कोशिश करूँगा जिससे वह मुझको कठिन न मालूम पड़े किन्तु सुना है, कि भगवान के नाम का कुछ थोड़ा भी जप तथा ध्यान करने से सर्व पापों का नाश होता है शास्त्र और आप भी ऐसा ही कहते हैं फिर भी मेरी प्रति ऐसा होने का क्या कारण है और फिरभी मेरे प्रति मलिन क्यों होती है क्योंकि थोड़ा वहुत पूजन भजन तो मैं करता ही हूँ।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा भजन पूजन से सब पापों का नाश होता है यह सत्य है किन्तु इसमें कोई विश्वास करे तब न ! तुम्हारा भी तो इसमें पूर्ण विश्वास नहीं है। क्योंकि तुम मान रहे हो कि पापों का नाश नहीं हुआ !

प्रश्न—हे गुरुदेव ! विश्वास होने का कारण क्या है !

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि नास्तिक लोगों की संगति और संचित पाप और दुर्गुण यही कारण है तथा राग, द्वेष, काम, क्रोध, इत्तादि दुर्गुण हैं।

प्रश्न—हे गुरुदेव इसका नाश कैसे होगा।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि इसके नाश के लिये चोरी, जारकर्म, झूठ,हिंसा, कुशील,परिग्रह आदि पाप हैं इसके अलावा क्रोध, मान, माया लोभ अहँकार का दुर्गुण है इसके त्यागने का प्रयत्न करने से सच्चे सुख की प्राप्ति होगी।

प्रश्न—सुना है कि वैराग्य होने से ही राग-द्वेषादि दोषों का नाश हो जाता है और भजन ध्यान का साधन भी अच्छा होता है !

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि ठीक है वैराग्य से भजन ध्यान का साधन वैठता है किन्तु अन्तःकरण शुद्ध हुए बिना दृढ़ वैराग्य भी नहीं होता है यदि कहो कि शरीर और सांसारिक भोगों में दुःख और द्वेष वुद्धि रखने से भी वैराग्य होता है सो ठीक है। परन्तु यह वृत्ति भी

उपयुक्त साधन से ही होती है, ध्यान सेवा तथा सत्संग आदि करने के लिये प्राण पर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये !

प्रश्न—गुरुदेव यह कहो कि मुझे प्रत्यक्ष भगवान का दर्शन कब होगा।

उत्तर—गुरुदेवने कहा कि इसके लिये तुम चिंता क्यों करते हो जब वह ठीक समझेंगे तब उसी समय दर्शन होगा। वैद्य जब ठीक समझता है तब आपही उपयुक्त समझकर दवाई देता है रोगी को तो वैद्य पर ही निर्भर रहना चाहिये।

प्रश्न—गुरुदेव आपका कथन ठीक है किन्तु जब रोगी को भूख लगती है तब मुझे अन्न कब मिलेगा ऐसा कहता ही है जो अन्न के वास्ते आतुर रहता है वह हमेशा बार २ पूछता ही रहता है।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि रोगी की भूख झूठी है या सच्ची है यह वैद्य देखता है भूख देखकर भी यदि वैद्य रोगी को अन्न नहीं देता है तो न देने पर भी रोगी का हित है।

प्रश्न—किंतु भगवान के दर्शन होने से क्या हित है, यह मन नहीं समझता, मुझे तो दर्शन देने में ही हित रक्खा है रोटी से हमें नुकसान भी हो सकता है किन्तु आपके दर्शन से तो हमें परम लाभ ही होता है इससे आपका मिलना रोटी मिलने के सदृश नहीं है।

उत्तर—गुरु ने कहा, वैद्य को जब जिस चीज को देने से सुधार होना प्रतीत होता है उसी को वह उचित समय पर रोगी को देता है इससे तो रोगी को वैद्य पर ही निर्भर रहना चाहिये। वैद्य सच्ची भूख समझकर रोटी देता है और उससे नुकसान भी नहीं होता यद्यपि भगवान का दर्शन प्रत्यक्ष होना परम लाभ दायक है किन्तु सच्ची भूख के बिना और पूर्ण श्रद्धाके बिना भगवान केदर्शन नहींहो सकतेहैं।

प्रश्न—गुरुदेव श्रद्धा और प्रेम की तो मुझमें बहुत कमी है और उनकी पूर्ति होनी भी मुझे बहुत कठिन प्रतीत होती है अतएव मेरे लिये तो साक्षात् भगवान का दर्शन नहीं तो कष्ट मय अवश्य है।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा, ऐसा मानना भी तुम्हारी बड़ी भूल है, ऐसा मानने से भगवान की प्राप्ति में विलम्ब होता है।

प्रश्न—गुरुदेव नहीं मानूँ तो क्या करूँ, कैसे नहीं मानूँ, पूर्ण श्रद्धा और प्रेम के बिना दर्शन तो होही नहीं सकते यह मुझमें कमी है।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि क्या कमी की पूर्ति नहीं हो सकती !

प्रश्न—गुरुदेव हो सकती है किन्तु जिस तरह होती आई है यदि उसी तरह होती रही तो इस जन्म में उसकी पूर्ति कभी भी सम्भव नहीं !

उत्तर—गुरुदेव ने कहा, ऐसा सोचकर तुम स्वयं अपने मार्ग में रुकावट क्यों डालते हो क्या सौ वर्ष का कार्य एक मिनट में नहीं हो सकता, जरूर होता है !

प्रश्न—हाँ गुरुदेव आपकी कृपा से कुछ ठीक हो सकता है !

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि यह हिसाब फिर क्यों लगाया कि इस जन्म में संभव नहीं।

प्रश्न—गुरुदेव यह मेरी मूर्खता है ऐसी कृपा कीजिये कि भगवान के मार्ग पर मेरा सच्ची रुचि

व श्रद्धा हो जाय।

उत्तर · गुरुदेव ने कहा कि भगवान के प्रति पूर्ण श्रद्धा व रुचि होने में मैं क्या बाधा डाल रहा हूं।

प्रश्न—गुरुदेव इसमें बाधा डालने की बात ही क्या है आप तो मदद ही करते हैं किन्तु श्रद्धा और प्रेम की पूर्ति में बिलम्ब हो रहा है। इसलिये आपसे प्रार्थना की।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि ठीक है किन्तु पूर्ण प्रेम और श्रद्धा की जो कमी है उसकी पूर्ति करने के लिये भगवान के मार्ग का आश्रय लेकर खूब प्रयत्न करना चाहिये।

प्रश्न—गुरुदेव मैंने सुना है कि रोने से भी उसकी पूर्ति होती है क्या यह ठीक है।

उत्तर—वह रोना दूसरा है।

प्रश्न—कौन सा और कैसा है वह रोना?

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि वह रोना हृदय से होता है जैसे कि कोई अति दुखी आदमी दुख की निवृत्ति के लिये रोता है।

प्रश्न—मैं चाहता ऐसा ही हूं किन्तु सम्पूर्ण समय ऐसा रोना नहीं आता ऐसा तो बहुत मुश्किल है।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि इस से तो यह निश्चित् होता है कि बुद्धि के विचार द्वारा तुम रोना चाहते हो परन्तु तुम्हारा मन नहीं चाहता है।

प्रश्न—गुरुदेव यदि मन ही चाहने लगे तो आपसे प्रार्थना क्यों करूँ मन नहीं चाहता है इसलिये ही तो आपकी सहायता चाहता हूँ।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि मेरी आज्ञा का पालन करने से ही पूर्ण सहायता मिलेगी। यह विश्वास रक्खो कि इसमें तत्पर रहने से कठिन से कठिन काम भी सरलता पूर्वक हो सकते हैं।

प्रश्न—अब गुरुदेव आप जैसा कहते हैं वैसा ही करूँगा किन्तु होगा सब आप की ही कृपा से मैं तो निमित्त मात्र हूँ इसलिये आपकी आज्ञा मानकर अब विशेष रूप से प्रयत्न करूँगा मेरे निमित्त बनाकर जो कर लेना हो वह कर लीजिये।

उत्तर—ऐसा मान लेने से तुम्हारे में कहीं पागल पना न आ जावे।

प्रश्न—गुरुदेव आपसे मदद मांगना भी पागलपना है।

उत्तर—जितनी श्रद्धा और प्रेम से मेरी आज्ञा का पालन हो सके उतनी श्रद्धा और प्रेम तो तुम में है ही।

प्रश्न—फिर आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन न होने का क्या कारण है।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि संचित पाप एवँ रागद्वेष, काम क्रोध आदि बाधा डालने में हेतु हैं।

प्रश्न—इसका नाश कैसे हो।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि यह तो पहले ही बता चुके हैं कि भजन, नृत्य, सेवा, सत्सङ्ग आदि साधनों से होगा।

प्रश्न—कोई २ कहते हैं कि प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन ज्ञान चक्षु से होता है। परन्तु कर्म चक्षु से नहीं हो सकता सो ये क्या बात है।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि ठीक है उनकी ज्ञान दृष्टि से भीतर का दर्श हो सकता है और बाहर का भी दर्शन हो सकता है।

केशचन्द जी जैन टिकैननगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख १७-८-५३ दिन सोमवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में सप्त व्यसनों की समाचनों करते हुये कहा कि:—
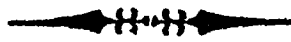
जुवा खेलना, मांस भक्षण करना, शराब पीना वेश्या गमन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्री सेवन करना ये सातों महा पाप व्यसन कहलाते हैं। इसलिये कल्याण चाहने वाले संसारी प्राणियों को इन सातों व्यसनों का त्याग कर देना चाहिये।

जिस क्रिया में खेलने के पासें डालकर धन की हार जीत होतीहै सब जुआ कहलाता है। अर्थात् हार जीत की शर्त लगाकर ताश खेलना, चौपड़ खेलना, शतरंज, खेलना, नक्की मूठ खेलना इत्यादि सभी जुआ कहलाता है। यह जुआ खेलना संसार भर में पाप माना है, यह जुआ महा अशुभ और महान आपत्ति को करने वाला है और इहलोक और परलोक का विगाड़ करने वाला है इसलिये कल्याण के प्रेमियों या धर्म प्रेमियों को इसको अवश्य त्याग कर देना चाहिये, जो जो लोग इस जुआ में लीन हुये हैं वह सभी इह, तथा परलोक से नष्ट हुये हैं, राजा युधिष्टर को इस जुआ खेलने के ही कारण महान् आपत्ति उठानी पड़ी। जुआ खेलने वाले को अनेक दुःख भोगना पड़ता है। इसके अनेक उदाहरण शास्त्रों में हैं, और आज कल भी जो जुआ में रत रहते हैं, वे बहुत ही दुःख भोगते हैं। इस जुआ खेलने का फल प्रति दिन देखा जाता है और सुना जाता है; इस जुआ खेलने वाले को भी एक व्यसन ही नहीं समझना चाहिये इस जुआ में सातों व्यसन जो चोरी आदि हैं, वे भी गर्भित हैं, जुआ सभी पापों का स्वामी है! इसमें किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं है, यह जुआ आत्मकल्याण में बाधा करने वालाहै इससे धर्म कर्म कुछ नहीं होता है अपने हित को चाहने वाले को इसका विचार भी त्याग कर देना चाहिये, अपने व्यापार के सिवाय कोई भी पुरुष परस्पर एक दूसरे की ईर्षा से एक दूसरे को जीतना चहता है, तो वह कार्य भी जुआ में ही आता है, व्यापारी लोग जो एक दूसरे से बढ़ चढ़कर व्यापार करना चाहते हैं, व करते हैं वह तो अतीचार नहीं है।

परन्तु व्यापार को छोड़कर और किसी भी कामों में हार जीत की इच्छा रखकर परस्पर की ईर्षा से उस काम को करना जुआ खेलने का अतीचार है।

जैसे मैं इस स्थान से दौड़ना प्रारम्भ करता हूँ तुम भी मेरे साथ दौड़ लगावो दोनों में अगर मैं आगे निकल जाऊँगा तो तुझसे अपनी इच्छा पूरी करूँगा। इस प्रकार आपस में बाजी लगाकर खेलना सभी जुआ के अतीचार है इसलिये गृहस्थ को जहाँ तक हो त्याग कर देना चाहिये, इससे अपनी आत्मा का कल्याण होगा,

दूसरे मांस भक्षण के दोष को बतलाते हुये, गुरुदेव ने कहा कि मांस भक्षण में प्रवृति होना मांस भक्षण कहलाता है मांस भक्षण में रत होना सबसे बड़ा व्यसन माना है, कोई यहां गुरुदेव से प्रश्न करता है कि! जब कि मांस भक्षण की प्रवृत्ति त्याज्य है, त्याग करने योग्य है। फिर भला आसक्ति की तो कथा ही क्या है

उत्तर—यदि कोई मांस भक्षण का त्याग करे तो प्रथम उसे सामान्य रीति से त्याग करना चाहिये और बाद में विशेष रीति से त्याग करना चाहिये शराब पीने की क्रिया करना शराब की प्रवृत्ति कहलाती है और उसमें अत्यन्त आसक्त होना व्यसन कहलाता है जब उसकी प्रवृत्ति का ही त्याग कराया जाता है तो उसमें आसक्ति का त्याग तो कर ही देना चाहिये अधिक क्या कहा जाय शराब की गंध भी पाप करने वाली है। शराब का नाम स्मरण से भी सन्मार्ग का नाश होता है भला पीने से तो धर्म की रक्षा कभी नहीं हो सकती है इसी प्रकार परस्त्री का हाल है वेश्या सेवन भी महा पाप है।

जो स्त्री केवल धन के लिये पुरुष का सेवन करती है उसे वेश्या कहते हैं ऐसी वेश्या संसार में प्रसिद्ध है उन वेश्याओं को दारिका, दासी वेश्या, व नगर नायिकादि नामों से पुकारते हैं। इसलिये जो पुरुष अपने आत्मा के कल्याण का प्रयत्न करना चाहते हैं और मद्य, मांसादि समस्त दोषों का त्यागकर देना चाहते हैं उनको वेश्या सेवन भी अवश्य त्याग कर देना चाहिये, वेश्या सेवन से न तो मद्य, मांस का दोष दूर हो सकता है और न आत्म कल्याण हो सकता है। इसलिये इन दोनों की इच्छा रखने वालों को वेश्या सेवन का अवश्य त्याग कर देना चाहिये वेश्या सेवन से अनेक दोष उत्पन्न होते हैं इसका सेवन नरक ले जाने वाला है इहलोक और परलोक दोनों दुःखदायी होते हैं यह पापिनी वेश्या, मांस, खाती है मद्य पीती है। और झूठ बोलती है। केवल धन के लिये प्रेम करती है दूसरे के धन और प्रतिष्ठा का नाश करती है। कुटिल मन से नीच लोगों की लार भी चाटती रहती है इसलिये कहना चाहिये कि वेश्या के समान इहलोक परलोक में कोई नरक नहीं है, अर्थात् वेश्या ही घोर नरक है वेश्या धोबी की शिला के समान है जिस प्रकार धोबी की शिला पर ऊँच नीच, घृणित दूषित वस्त्र धोये जाते हैं यह भी उसी तरह ऊँच नीच घृणित मनुष्यों के मल को ग्रहण करती है, अतएव महा अशुद्ध है।

शिकार खेलना भी महा पाप है।

शिकार खेलना हिंसा में आनन्द मानना रौद्र ध्यान है ऐसे रौद्र ध्यान से प्राणियों को नरकायु का बन्ध होता है ऐसा जैन शास्त्रों में

कहा है, इस प्रकार हिंसा का भाव रखना, शिकार खेलने का अभ्यास करना तथा और भी ऐसी २ क्रियायों का योगाड़ मिलाना शिकार खेलने में अतभू त होता है यदि ऐसी क्रियावों का त्याग न किया जावेगा तो उनसे आसाता वेदनीय कर्म का ही बन्ध होगा। अतएव अपना कल्याण चाहने वालों को और अपने व्रतों की रक्षा करने वालों को—शिकार कभी नहीं खेलना चाहिये इसका त्याग कर देना चाहिये, जैन शास्त्र में यह भी कहा है कि दूषित अन्य प्रयोजन के लिये केवल तमाशा देखने के लिये भी नहीं जाना चाहिये, जिस स्थान में चोर डाकू, हत्यारे अपराधियों को प्राण दन्ड दिया जाता हो और भयानक स्थानों में जहां युद्ध करने की युद्ध भूमि हो अथवा जहां गाना बजाना नाटकादि क्रिया होती हों धीर वीर व्रती पुरुषों को ऐसे स्थानों में कभी नहीं जाना चाहिये, जैन शास्त्रमें यह भी कहा है कि गृहस्थ को प्राणी मात्र पर दया भाव रखने वाले को जल में जलकीड़ादि भी नहीं करना चाहिये पृथ्वी कायक जल कायक वायु कायक, अग्नि कायक त्रस कायक जीवों का घात होता है। अथवा बिना प्रयोजन पृथ्वी खोदना, ढेले पत्थरों को इधर उधर फेंकना मनो विनोद के लिये कूदना फांदना हिंसा का उपदेश देनादि बिना प्रयोजन के कार्य कभी नहीं करना चाहिये यह सभी बातें हिंसा गर्भित है।

चोरी का त्याग करना भी इस जीव के लिये कल्याण कारी है। दूसरे का धन हरन करने वालों को जन्म जन्मांतरों में अनेक दुःख मिलते हैं जैसे शिवभूति ब्राह्मण ने चोरी करने से ही अनेक दुःख पाये थे, चोरी करने वालों के दुःख की कथा केवल सुनी नहीं जाती है किन्तु प्रत्यक्ष में दिखाई पड़ती है आजकल चोरी करने वालों की संख्या भी कम नहीं है। चोरी, बेईमानी में अधिक मन लगता है, अतएव चोरी करने के साधनों का और चोर लोगों की संगति का और चुराये हुये माल का त्याग अवश्य कर देना चाहिये।

परस्त्री सेवन महा दुःखदायी है, इससे तो मनुष्य जन्म बिगड़ ही जाता है, इसके सेवन करने वाले को इस जन्म में अनेक प्रकार के भयानक कष्ट झेलने पड़ते हैं। जगह २ निरादर होता है पंचायत द्वारा दंडनीय होता है, कभी२ तो परघर में पकड़े जाने पर अच्छी खासी मरम्मत कर दी जाती है। जिससे प्राणांत भी हो जाता है परभव में नरक का पात्र होना पड़ता है। किसी स्त्री के साथ एकांत में भी नहीं बैठना उठना चाहिये इससे अधर्म होने की सम्भावना बनी रहती है इसकी एक कथा "तत्वानुशान में परस्त्री के साथ एकाँत" नामक शीर्षक में कही गई है। वह इस प्रकार है। एक ब्राह्मण संसार को असार जानकर मोक्ष मार्ग को प्राप्त की इच्छा से बन में बसे हुये ब्रह्मदेव सन्यासी बाबा ने मुख से शिवोहम" पदधारण करके, गुरु बचनों को खटूराग माना परधन को हाथ लगाया और उत्तरोत्तर धर्म से भ्रष्ट हो गया और हाव-भाव संयुक्त सुन्दर स्त्री के मधुर बचनों से लुभाकर दीवान खाने में दाखिल हुआ और एक सुन्दर आसन पर बैठा, क्षण भर में उसे ब्राह्मण के आने कारण जानकर स्त्री ने कहा हे ब्रह्मदेव! आप कुछ भी चिंता न करें मैं

आपकी सेवा से भाग्यवती बनूँगी, मेरा आदमी आवेगा तो उससे फूल, फल मगवादूंगी उसे लेकर चले जाइयेगा, परन्तु ब्राह्मण की इच्छा तो गठरी उठा ले जाने की थी किन्तु उस स्त्री के रूप लावण्य पर मुग्ध हो गया था विचार करता है, एकांत में अकेली स्त्री के पास वैठना ठीक नहीं ऐसी गुरु आज्ञा है, परन्तु उस स्त्री के हाथ भाव देखकर यह विचार धारा पलट गई वहाँ से उठ न सका; उलटे उस स्त्री के नूपुर के झंकार, इत्यादि से मन में विषय वासना बढ़ गई विचारने लगा संसार में जो भोने योग्य पदार्थ हैं उन्हें भोगने में कोई हर्ज नहीं है।

क्या थोड़ी देर वैठने से धर्म भ्रष्ट हो जाऊँगा कभी नहीं यह सब ढकोसला है, स्त्री मधुर मुस्कान के साथ पंखा हिला रही है ब्राह्मण भाई उसके मुख चन्द्र को देख रहा है। क्षण भर उसकी साड़ी का अँचल उठने से शरीर के अँगों पर ब्राह्मण की दृष्टि पड़ती है स्त्री बनावटी लज्जा दर्शाती है नेत्रों से महान बाण चलाती है, ब्राह्मण मोह वश अपना मान भूलता जाता है इन्द्रियों के आधीन होता जाता है गुरु और शास्त्र के बचनों को भूल जाता है। और एक दम खड़े होकर स्त्री के हाथ को पकड़कर कहता है कि इस हिंडोले पर बैठ जाओ, स्त्री ने कहा यह क्या आप तो पूर्ण ज्ञानी हैं आपने परस्त्री का हाथ कैसे छू लिया, परस्त्री, परधनको ज्ञानी सन्यासी कभी नहीं छूते हैं मैं तो सर्वजन की धिक्कार मात्र वेश्या हूँ क्षुद्र जातिकी हूँ, और रजस्वाला हूँ, इस समय छूना तो नरक में पड़ने की निशानी है आप स्नान करके शुद्ध हो जाइये जो मोह हो गया है। मन से कुबुद्धि निकालकर धर्म का यथार्थ पालन करो, इससे उसकी विषय वासना कम नहीं पड़ी जैसी की तैसी रही, जैसे पवन के सपाटे में आग की सई उड़ जाती है वैसे ब्राह्मण भाई के सद्विचार उसके मोहवश रफू चक्कर हो गये थे। उस स्त्री के धर्म रूपी बचनों का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ जैसे गर्म लोहे पर जल की बूँद पड़ते ही नष्ट हो जाती है ऐसी ही दशा उस ब्राह्मण की थी उसने कहा कि मैं आपका बिना किराये का दास हूं मेरा अनादर न करो, मेरे प्राण चले जांयगे तो तुमको ब्राह्मण का पाप लगेगा। अतएव मेरे प्राणों की रक्षा करो वेश्या ने ब्राह्मण के बचनों को स्वीकार करके उसके साथ रति क्रीड़ा में मगन हो गई। और फिर कहने लगी जबतक मद्य का सेवन न हो कोई मजा नहीं है। इसलिये आप मद्य ले आइये-ब्राह्मण मद्य लेने गया, दूकानदार ने कहा कि जितने सुवर्ण से पात्र भर जाय उतना देदे और मद्य लेजा-ब्राह्मण ने विचार किया चोरी का धन सब यहीं देदूं तब तो बड़ा अनर्थ होगा परन्तु मोहबश उसने दे दिया और मद्य लेकर वेश्या के पास चला आया वेश्या बोली मांस के बिना कोई मजा नहीं अतएव मांस भी ले आइये ब्राह्मण भाई कुछ सकुचाता हुआ मांस लाने को गया और चोरी किये हुये धन से मांस ले आया पाप से बटोरा हुआ द्रव्य भी खतम हो गया। वेश्या ने कहा थोड़ा आप प्राशन करके परसादी मुझे भी दीजिये ब्राह्मण बोला पहिले तुम पियो फिर मैं पियूँगा परन्तु वेश्या ने कहा कि यह ठीक नहीं फिर जिस मुखसे भगवान का गुणानुवाद करता था उस मुख से मांस, मद्य का सेवन किया। और परस्त्री का सेवन करके नर्क गामी बन गया। अतएव उत्तम मनुष्यों को उचित है, कि परस्त्री का सेवन का सर्वथा त्याग करके सुखी बनें।

धर्मदास शिखरचन्द जी जैन सर्राफ टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख १८-८-५२ दिन मङ्गलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में विषय भोगों के फल को बतलाते हुए कहा कि:—
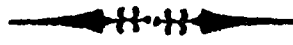
मूदैरनादि घन संघटन प्ररूढ़ो।
भिन्नोऽप्यभिन्न इति कर्म मलोऽस्यधायि॥
भिन्नो न चेत्कथ मिवामल केवलार्चि।
रस्याम्युदेति हतकार्मण संचयस्य॥

विषयादि कार्यों के सेवन करने में वृद्धि को प्राप्त कर्म मल का अनादि से सम्बन्ध हो रहा है। परन्तु हे जीवात्मा तू यह समझ कि तेरा आत्मा जड़ से भिन्न है और जड़ पदार्थ आत्मा से सर्वथा भिन्न है दोनों अलग २ हैं एक में मिला हुआ नहीं है परन्तु मूढ़ात्मा दोनों को एक मानता है और एक मानकर मोह जाल में फंसा हुआ है जैसे बन्दर घड़े के भीतर चने को मुट्ठी में बांध लेता है मुट्ठी निकलती नहीं है तब विचारता है किसी ने मुझे पकड़ लिया है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं इसी तरह मूढ़ात्मा अपने अज्ञान के कारण जड़ पदार्थों को अपना समझकर मोह में फँस गया है इस अवस्था को छोड़कर जागो और देखो जिसको तुमने अभिन्न मान लिया है वह भिन्न है इसको अच्छी तरह से समझलो-मूढ़ात्मा उसे अभिन्न मानते हैं। उसकी दृष्टि में आत्मा और कर्म एक ही मालूम देता है पित्तज्वर वाले को जैसे दूध कड़ुवा मालूम देता है। उसी तरह से तेरे ऊपर मोह रूपी पित्तज्वर चढ़ा है जिससे तू समस्त पदार्थों को अपना मान रहा है तुझे कहां तक समझाया जाय यदि कर्म भिन्न नहीं होता तो जिस समय यह समस्त कर्मों को नष्टकर देता है उस समय केवल ज्ञान की विभूति चमकती हुई। दृष्टि गत न होगी—हे आत्मन् तू विचार करके देख! यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा शुद्ध निष्कलँक है परन्तु कर्मों के द्वारा गाढ़ आच्छादित होने के कारण इसको केवल ज्ञानादि स्वरूप का विकाश नहीं होता है किन्तु जिस समय आदि के द्वारा कर्म मल नष्ट होता है। आत्मा का स्वरूप प्रगट हो जाता है और सम्पूर्ण जगत को देखने जानने में कोई कष्ट नहीं होता-जैसे इङ्गलैंड में जो बात चीत की जाती है उसे सुदूर स्थान में रेडियो द्वारा हम

बैठे २ ज्ञान लेते हैं उसी तरह जब इस आत्मा के कर्म मल नष्ट हो जाते हैं तो यह सम्पूर्ण पदार्थों को एक समय में जान लेता है और देख लेता है और इसमें उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। यदि जीवात्मा और कर्ममल को सर्वथा अभिन्न मान लिया जायगा तो कभी भी जीवात्मा से कर्म मल भिन्न नहीं हो सकता है। इसके केवल ज्ञानादि गुण भी प्रगट नहीं होंगे। और सदा कर्म मल से लिप्त रहने के कारण यह निराकुलतामय सुख का अनुभव कर सकेगा इसलिये मानना पड़ेगा कि कर्म मल और आत्मा एक नहीं हो सकते, क्षीर नीर से समान दोनों जुदे २ हैं।

देही यथा निगदितो नियमात्तथेत्ति।
पक्षोन मूढ़ गभकैः प्रतिवाधितोऽयं॥
त्रेधाप्रमाण मिहसाधक स्मोस्तयस्मात्।
प्रत्यक्ष मात्म बचनं चतथानु भान॥

जैसा हमने पहिले संसारी आत्मा का स्वरूप प्रति पादन किया है। वैसा ही वह पक्ष हमारा किसी भी प्रतिवादी की युक्तियों से वाधित नहीं हो सकता है। क्योंकि उसको सिद्ध करने के लिये प्रत्यक्ष, आगम, और अनुमान हमारे पास मौजूद हैं अतएव उसे कोई वादी खंडित नहीं कर सकता। आत्मा नित्य है अविनाशी है गुणों का भंडार है और ज्ञानादि स्वरूप है यह सर्व प्रत्यक्ष केवल ज्ञान से सिद्ध है आगम प्रमाण भी इसी बात को प्रतिपादन करता है और अनुमान से भी यही सिद्ध होता है यह तीनों प्रमाण हमारे पास मौजूद हैं, इसलिये आत्मा का नित्यत्व और उपयोगमयत्व जो स्वरूप हमने बतलाया है वह अवाधित हैं, जैन शास्त्रों में वर्णन है कि जीव अनादि काल अनादि और द्रव्य अनादि है यह तीनों अनादि निधन हैं इनका कोई कर्ता हर्ता नहीं है। उमा स्वामी ने कहा है कि गुण पर्याय व द्रव्यंता द्रव्य में परिवर्तन हमेशा पाया जाता है जीवात्मा में कर्म संयोग रहने के कारण उसको कर्ता हर्ता कहा जाता है आत्मा द्रव्य में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हमेशा पाया जाता है, काल द्रव्य में भी पाया जाता है अतएव अपने ही उपार्जित कर्मों के कारण इसे कर्ता कहा गया है परन्तु है वह अनादि निधन न तो इसका कोई कर्ता है और न कोई हर्ता है—

प्रत्यक्ष मक्ष जनितं न जनस्य साक्षा।
लक्ष्वी करो तिनमलक्ष्य मनीद्रियत्वात॥
स्पर्शाद्यशेष विषय व्यतिरिक्त रूपं।
संविद्रते विसदृशकथमिंद्रियाणि॥

यह नित्वत्वादि आत्मा का स्वरूप है अतीन्द्रिय है इन्द्रियां इसे प्रत्यक्ष नहीं कर सकती हैं इसलिये इन्द्रियों द्वारा यह नहीं जाना जा सकता जिस द्रव्य में स्पर्श रस गंधादि गुण हों उसे ही इन्द्रियां जान सकती हैं। अन्य को नहीं और यह आत्मा स्पर्श रस गन्धादि से सर्वथा भिन्न है अर्थात् इन्द्रियां वाह्य पदार्थों को भली प्रकार जान सकतीं हैं और उसका अनुभव कर सकतीं हैं और अनुभव करती रहती हैं और करेंगी परन्तु अतीन्द्रिय आत्मा का अन्नत ज्ञान अनंत दर्शन अनंत सुख नित्य अमृतमय अनुभव एक नित्य आत्मा ही कर सकता है इन्द्रियां नहीं अनुभव कर सकतीं हैं, स्पर्शादिके समान आत्मा नहीं हैं उससे सर्वथा विलक्षण है फिर विचारी इन्द्रियाँ जीवात्मा को जान ही कैसे सकतीं हैं?

स्पर्श को स्पर्शन इन्द्रिय, रस को रसना इन्द्रिय गन्ध को घ्राण इन्द्रिय रूप को चक्षु और शब्दको श्रोत इन्द्रिय विषय कर सकती है यह बात प्रसिद्ध है परन्तु इनमें एक भी ऐसी इन्द्रिय नहीं है जो दूसरी इन्द्रिय के विषय को ग्रहणकर सके इसलिये जब इनमें साधारण सी बात अपनी सजातीय इन्द्रिय के विषय को ग्रहण की शक्ति नहीं है तो आत्मा के स्वरूप को तो विषय कर ही नहीं सकती क्योंकि यह आत्मा स्पर्शादि से सर्वथा विलक्षण है अरूपीहै यहां नकोई स्पर्शादि के समान भी नहीं है इसलिये इन्द्रियों के द्वारा आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता है।

यत्केवलं विमलम स्खलितं प्रकाशं।
प्रत्यमक्षणिक मक्ष गणान पेक्षं ॥
आनन्द कंद लित मुक्ति लतैकमूलं।
तेनात्मत्तत्व मिह सर्व विदोवदँति ॥

जो समस्त पदार्थों के जानकर सर्वज्ञ हैं वे अतिशय निर्मल जिसका प्रति बोध ही नहीं हो सकता ऐसे अनुपम प्रकाश के धारक एक मात्र आत्मा की सहायता से अविनाशी पदार्थ को जानने में इन्द्रियों की सहायता न चाहने वाले आनन्द दायक मुक्ति रूपी लता के मूल कारण अपने केवल ज्ञान से इस आत्मा के स्वरूप को स्पष्ट तया जानते हैं जिन्होंने संसाररूपी विषारि को निर्विष करके उसके ऊपर जिन्होंने शयन किया है और मोक्षलक्ष्मी जिनकी चरण सेवा में रत रहती है ऐसा जिन या विष्नु अथामुक्तात्मा सिद्धात्मा इन्हीं को कहा जाता है क्योंकि भगवद्गीता, शंकर भाष्य में भी आत्मा, और मुक्ति के बारे में कहा है। गरुड़ गरु का अर्थ गरल उड़ का अर्थ उड़ाना जिन्होंने संसाररूपी विषती को अपनी गरुड़ शक्ति से निर्विष करके हमेशा सहिष्णुता को धारण किया और मोक्ष लक्ष्मी को वश करके सहस्रफणामंडित नाग को निर्विष करके उनके ऊपर शयन करने वाले और मोक्ष लक्ष्मी के साथ आनन्द क्रीड़ा करने वाले को विष्णु कहा गया है ऐसे विष्नु भगवान के बारे में प्रत्यक्ष और अनुमान से किसी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती है इसलिये अनादि निधन और नित्य है यह प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से बाधित नहीं है।

पहिले कहा गया है कि आत्मा का ज्ञान प्रत्यक्ष आगम और अनुमान प्रमाण से होता है। सो सकल प्रत्यक्ष ज्ञान केवल ज्ञानी है यह अतिशय निर्मल है और अनुपम प्रकाशका धारक है अविनाशी है इन्द्रियों की सहायता से रहित है, आनन्दमय सुख का परम कारण है। अन्य कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं है इसलिये जो केवल ज्ञानी है वह आत्मा के स्वरूप को स्पष्ट रूप से जानता है और उसे ही साक्षात्कार पूर्ण रूप से होता है अन्य को नहीं।

आत्मा जिनैरनुभव प्रतिपन्न पूर्वो।
भव्येषु दिव्य वच सा प्रतिपादितश्च ॥
तत्वोयलंभन विधाव कृतप्रलभं।
तथ्यं सुपथ्यमिति जैन वचः प्रमाण ॥

भगवान जिनेन्द्र देव ने प्रथम अपने केवल ज्ञान से आत्मा को जाना पश्चात् अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा कल्याणोच्छु जीवों को उसका वास्तविक स्वरूप बतलाया यहां कोई गुरुदेव से प्रश्न करता है कि हे गुरुदेव जिनेंद्र के वचनों पर आपकी गाढ़ श्रद्धा क्यों है?

गुरुदेव ने कहा कि भगवान जिनेन्द्र देव के

बचन वस्तु स्वरूप के प्रतिपादन में कभी बंचना नहीं करते हैं जिनेन्द्र देव का लक्षण है कि—

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकाल विषयंसालोक मालोकित साक्षाधेनयथा स्वयं करतले रेखा त्रयं सांगुलि रागद्वेष भयामयांतक जरा लोलत्व लोभादयो नालंयत्पदं लंघनायस महादेवों भयबंद्यते ॥१॥

अर्थात् भूत भविष्यत, वर्तमान काल सम्बंधी चराचर लोक और अलोक सम्बन्धी सम्पूर्ण वस्तुओं को अपनी हथेली की तीनों रेखाओं सहित प्रत्यक्ष देखने जानने वाले हैं। तथा रागद्वेष, भय जन्म जरा मरण रहित सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों की लोलुपता रहित, संसार बन्धन को नष्ट करके अखँड अविनाशी सुख को प्राप्त किया है प्रत्यक्ष आगम और अनुमान प्राण से जिनके बचन बाधित नहीं हो सकते हैं, और जिनके मन को कोई उलँघन करने वाला नहीं है और किसी भी वादी के द्वारा अलँद्ध हैं ऐसे देवों के देव महादेव को मैं नमस्कार करता हूँ। ऐसे भगवान ज्ञान दर्शन, चारित्ररूपी त्रिशूल धारण करने वाले को मैं नमस्कार करता हूँ।

इनके बचन जैसा वस्तु का स्वभाव है गुण है वैसा ही पूर्वापर विरोध रहित सुतत्व और सुहित सहित वर्णन करने वाले हैं इसलिये भगवान जिनेन्द्र प्रमाण हैं उनके बचन भी प्रमाण है क्योंकि निर्दोष हैं इसलिये जिनेन्द्रदेव के बचनों पर हमारी गाढ़ श्रद्धा है।

भगवान जिनेन्द्र वीतराग थे, जो वीतरागी होता है वही वस्तु का यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन कर सकता है दूसरे जीवों को वह मिथ्या जाल में फँसाने वाला नहीं होता है। फँसाना नहीं चाहता है उसके बचन पूर्वापर विरोध रहित निश्चय रहते हैं। वीतराग भगवान ने अपने अखण्ड ज्ञान से आत्मा के हित कर स्वरूप को भले प्रकार जान करके अपने दिव्य बचनों से मनुष्यों के समक्ष प्रतिपादन किया है। इसलिये उनके बचन सर्वथा प्रमाणिक हैं, उनके द्वारा कहा हुआ आगम प्रमाण हैं उससे जो आत्मा के स्वरूप ज्ञान होता है वह सत्य होता है।

धर्मपत्नी बाबू मायाप्रकाश जी जैन सर्राफ दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख १६-८-५२ दिन बुधवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में भेषधारी साधुओं की समालोचना करते हुए कहा कि:—
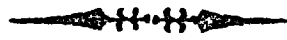
मुंडैर्दंड धरै-शिखंडिभिरभिस्कूर्जे जटामंडलैः ।
काषायंवर चर्म कंवल धरै र्नाग्न्यादि भिमुर्द्रितः ॥
आपाखँडिपरैंपरा सुभवना शैलूषनादयोपमे ।
वेषैरात्म विडंवनंकृत महो नात्म प्रबोधकृनः ॥१॥

हे आत्मन् जैसे नाटक के भीतर कभी नट स्त्रियों का रूप धारण करता है कभी राजा व रंक का अथवा सिर घुटाकर साधु का दंडी का सन्यासी का धारण किया सिर पर जटा भी रखाई चर्म कम्बल भी धारण किया वहुत बार दिगम्बर साधु भी हुआ ऐसे अनेक वेष धारण किया और अनेक क्रियाकाँड किया अपने आत्मा का खूब विडंबनाकी, ऐसे अनेक पाखँडी पंडे मिले अनेक पशुओं की धर्म के नाम पर हिंसा की, कई बार दाढ़ी, जटा, बढ़ाया, इस तरह अनेक प्रकार से अपने आत्मा की विडंबना की हाय २ तेरे समान मूर्ख कौन होगा । तूने कभी अपनी आत्मा को जानने की ओर ध्यान नहीं दिया । संसार में जो लोग दंडी, सन्यासी, नग्नादि मुद्रा के धारक होते हैं वे आत्मज्ञान व आत्मकल्याण के वास्ते होते हैं परन्तु वास्तविक आत्मज्ञान का स्वरूप न समझने के कारण उनका वेष ढोंगी समझा जाता हैं परिणाम यह निकलता है कि वह आत्मज्ञान के लिये प्रयत्न नहीं करते हैं और व्यर्थ में सन्यासादि वेष धारण करके अपनी आत्मा के निराकुलतामय सुख से वंचित रहते हैं । यह कितने खेद की बात है, हे आत्मन् तूने जो ये अनेक प्रकार के भेष धारण किये और शिखा इत्यादि रखा आत्मा के स्वरूप को न जानकर दूसरे को रिझाने के लिये रखा । धर्मके नाम अनेक पँड़े अपने मनमाने धर्म को मानकर अनेक प्रकार के अधर्म को फैला दिया जिसे स्वर्ग माना उसे ही मोक्ष माना वास्तविक आत्मा के स्वरूप को न जानकर अनेक प्रकार के हिंसामयी धर्म का प्रचार किया हे आत्मन् तू देख यदि तेरे को अपना कल्याण करना है तो हिंसा से बचने का प्रयत्न कर हिंसा में पांचों पाप गर्भित हैं अधर्म से कभी धर्म नहीं हो सकता है । इसलिये हिंसामयी धर्म के

कारण किसी पाप से बच नहीं सकता है, श्री मद्भगवत गीता में कई जगह कहा है, धर्म के नाम पर हिंसा, चोरी, कुशील, मदिरा, मांस, क्रोध, मान, माया लोभ, राग द्वेष अहँकार इत्यादि अनेक अधर्म के कारणों को हेय न मानेगा। तबतक सच्चे आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी। काम क्रोध की निंदा की है चोरी, बरजोरी, हत्या, मांस सेवन का निषेध है, उदाहरण के लिये कुछ वर्णन देता हूँ।

यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुष योषिदमिगच्छति तावमुत्रकशया ताडयन्तस्ति ग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुष मालिङ्ग यन्ति स्त्रियंच पुरुष रुपया सूर्म्या।

इसलोक में यदि कोई पुरुष परस्त्री से अथवा कोई स्त्री परपुरुष से व्यभिचार करती है तो यमदूत उन्हें "तप्तसूर्मि" नामक नरक में, लेजा कर कोड़ों से पीटते हुये पुरुष को तपाये हुये लोहे की स्त्री मूर्ति से और स्त्री को तपाई हुई पुरुष मूर्ति से आलिङ्गन कराते हैं।

वलिराजा ने कहा है:—

नह्यसन्यात्परोऽधर्मः।

असत्य से बढ़कर कोई अधर्म नहीं है।

यस्त्विह वै स्तेयेन वलाद् ना हिरण्य रत्नादीनि ब्राह्मणस्य बाप हरत्यन्यस्य बानापदि पुरुषस्तम मुत्र राजनयम पुरुषा अयसम्यै रग्निपिंडैः सन्दशैस्त्वचि निषकुर्षन्ति।

यहां जो व्यक्ति चोरी या बरजोरी से ब्राह्मण के या आपत्तिकाल के बिना ही किसी दूसरे पुरुष के सुवर्ण, रत्नादि पदार्थों का हरण करता है उसे मरने पर यम "सन्देश" नामक नरक में ले जाकर तपाये हुये लोहे के गोलों से दागते हैं और सन्डासी से उसकी खाल नोचते हैं, कपिल देव ने भी कहा है—

अथैरापादि तैगु र्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान।
पुष्णाति येषांपोषेण शेषभुग यात्यधऽस्वयम्॥

मनुष्य जहां तहां से भयङ्कर हिंसादिके द्वारा धन बटोरकर स्त्री पुत्रादि के पालन पोषण में लगा रहता है और शेष बचे हुये भाग को खा कर पाप का फल भोगने के लिये स्वयम् नरक में जाता है।

ये स्त्विह वै दाम्भिका दम्भयथेषु पशून विशसन्ति नान मुष्मिल्लोके वैशसे नरके पतितान निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति

जो पांखण्ड पूर्वक यज्ञों में पशुओं का बध करते हैं वे निश्चय ही दाम्भिक हैं, उन पतितों को परलोक में "वैशस" नरक में डालकर वहां के अधिकारी बहुत पीड़ा देकर काटते हैं, देवर्षि नारद जी ने मरे पशुओं को आकाश में दिखला कर राजा प्राचीन वर्हिस कहा है—

भो भोः प्रजापतेराजन् पशून पश्य त्वयाध्वरे
संज्ञापिता ज्ञीवसङ्घननिर्घृणेन सहस्रशः॥
एतेत्वा सम्प्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वै शसंनव।
सम्परेतमयः कूटैश्छिन्दन्त्यथित सन्वयः १

प्रजा पालक नरेश! देखो देखो तुमने यज्ञ में निर्दयता के साथ जिन हजारों पशुओं की बलि दी है उन्हें आकाशमें देखो यह सब तुम्हारे ही द्वारा दी हुई पीड़ाओं को याद करते हुये तुम से बदला लेने के लिये तुम्हारी बाट देख रहे हैं

जब तुम मरकर परलोकमें जाओगे तब वे अत्यन्त क्रोध में भर कर तुम्हें अपने लोहे कैसे सींगों से छेद डालेंगे। सभी दोषों को भागवत में त्याज्य और महान् अशुभ फलदायक बतलाया गया है, इसलिये हे आत्मन् ! अपने सच्चे ज्ञान का ज्ञानी न होने के कारण तूने अनेक पाप कर डाले हैं। कहा भी है—

दीप्तोत्तप्तनपः परीषहजयो योगैर्नियोगोद्यमैः
सद्भिस्तुप्रतिमाभिरप्यन शनैर्मासोपयासादिभिः
कायक्लेशभरैः प्रयाति कृशतां कयोन कर्मोच्चय
स्तेकर्मक्षयहेत वस्तवतदास्वस्थोयदास्थास्यमि

हे आत्मन् ! यदि तू आत्म स्वरूप में लीन नहीं होगा, तो तू चाहे जैसे प्रचण्ड संताप देने तप कर, उग्र से उग्र अनेक परीषह और उपसर्ग को जीत भले प्रकार मन योग भी धारण कर मुनि मुद्रा उपवास, चन्द्रायण व्रत मसोपवास भी कर परन्तु इन काय क्लेशों से तेरा शरीर ही कृश होगा तेरे कर्मों का ढेर जरा भी नहीं घटेगा, हां तू तपादि आचरण करता हुआ अपने सच्चे धर्म में लीन रहेगा तो तेरे ये किये हुये तपादि कर्मों का नाश करने वाले हो जायंगे और आत्मा में लीनता के कारण तेरे कर्म सम्पूर्ण नष्ट हो जावेंगे। अर्थात् कर्मों के नाश करने में मुख्य कारण तो आत्म स्वरूपमें लीन होना है। तपादि तो वाह्य गौण कारण है क्योंकि यदि आत्म स्वरूप में लीनता न हो और तपादि आचरण किया जावे तो कर्म रत्ती भर भी कम नहीं होगा जैसे सर्प की कांचुली ऊपर से छूट जाय तो सर्प के भीतर का विष कभी दूर नहीं हो सकता है वैसे ही केवल तप से आत्म स्वरूप के जाने विना कर्मों की निर्जरा का कारण नहीं है प्रत्युत व्यर्थ ही है। उलटा शरीर ही तेरा कृश होता चला जाता है। इसलिये हे आत्मन् ! तुझे चाहिये कि आत्म लीनता के साथ तपादि का आचरण करे तो तेरा कल्याण हो जावेगा। आज कल प्रायः देखा जाता है कि बहुत से लोग घर से दुःखी होकर बैरागी हो जाते हैं और अनेक प्रकार की विडम्बना भी करते हैं। अनेक राग-द्वेष की उत्पत्ति के कारण दुनियां में फिर भी झँझट में फँसे रहते हैं शांति का निशान भी उनके अन्दर नहीं पाया जाता है रागद्वेष करता ही रहता है इसलिये सच्चे आत्मीक सुख को प्राप्त करने का मौका उन्हें नहीं मिलता है कोई ग्रीष्म ऋतुमें तप किया कोई पर्वत की चोटी पर चढ़ कर तपस्या किया कोई गङ्गा किनारे कोई यमुना किनारे कोई संगम पर कोई मथुरा में उग्रतर तप किया किन्तु उनको कभी शांति प्राप्ति नहीं हुई फिर भी निजात्म की पहिचान के विना सभी नय काय क्लेश निष्फल चला गया। हे आत्मन् ! तू आत्म ज्ञानसे रहित अपने को प्रबल पण्डित मानने वाले मनुष्यों के साथ उचाल शब्दों से युद्ध करता है वाद-विवाद करता है ऐसा जान पड़ता है तू महा मूर्ख है और महा भयङ्कर गरुड़ रूपी ग्रहसे दबा हुआ है। अहङ्कार रूपी महा बन से पीड़ित है कषाय रूपी दुश्मन तेरे भीतर बैठा है मान रूपी शस्त्र तेरे पास रखा है मोह रूपी उन्माद से मत्त होकर मसान रूपी मदिरा से विवेक शून्य हो रहा है अपने को तू पंडित समझता है ? भावार्थ यह है कि हे आत्मन् यदि तुझे सच्चा आत्मा का ज्ञान है जो तू सरल बन और प्रेम रखने वाले मनुष्य को उपदेश दे उन्हें सच्चा ज्ञान करा पचण्ड वादियों के साथ विवाद मत कर उसमें कल्याण नहीं है

क्योंकि वे महा जड़ और मूर्ख है अपने को पण्डित मानने वाले हैं। इसलिये तेर सत्य उपदेश का भी प्रभाव उनके ऊपर कभी नहीं पड़ेगा अतएव ऐसे जड़वादियों को कभी उपदेश मत कर यदि तू ऐसा जान कर उनके साथ विवाद कर तो महामानी तूर्ख अहँकारी महा मोही और अपने को अद्वितीय पण्डित मानने वाला है। हे आत्मन् ; यदि तू आत्म प्रबोध करना चाहता है। तो अपने आत्म रूप को जानना चाहते हैं तो तू किसी के साथ वाद विवाद मतकर और और न तुझे वाद विवाद करने की आवश्यकता है। न वितंडा-वाद और न कू कथा की आवश्यकता है। भवों को घुमाकर और अँगुली चला कर भी चर्चा करने से कुछ लाभ नहीं है। यह सब वाह्य हैं। अभ्यतर के नहीं है यह बात अच्छी तरह समझलो तर्क मनकर इनके करने से तू पशु के समान समझा जायगा इसमें तेरा कल्याण नहीं है। अनन्त काल बीत गया। और बीत जायगा परन्तु वाह्य चर्चा ही तूने सदैव की नयी झोपड़ी, पुरानी झोपड़ी प्राप्त करने के लिये अनेकबार विडम्बना किया रागद्वेष किया, एक के बाद एक झोपड़ी ही मिली आत्म ज्ञान प्राप्त नहीं किया, तू तो अपनी दृष्टि को अन्तरङ्ग में लगा अपने अन्तरङ्ग नर्क का आश्रय कर जिससे तुझे आत्मस्वरूप का ज्ञान हो और उसको समझले, जिसमें प्रमाण के द्वारा साधन दूषण बनाया जाय वह दूषण शास्त्र विरुद्ध न हो व जिसमें प्रतिज्ञा हेतु आदिका अवलँवन और प्रतिपक्ष का ग्रहण हो वह वाद है। बार २ तर्क करना अपनी आत्मा के लिये कल्याण कारी नहीं है अपनी भीतरी शक्ति को जानने का प्रयत्नकर तब तुझको आत्म प्रबोध प्राप्त होगा। हे आत्मन् तेरे पास ऐसी अद्भुत शक्ति है किन्तु उसका प्रयोग करके तूने कभी नहीं देखा।

बनारसी दास रतनलाल जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख २०–८–५३ दिन गुरुवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराजजी ने अपने उपदेशमें परमानंद की प्राप्ति के लिये साधन की आवश्यकता को बतलाते हुए कहा किः—

संसार में सभी लोग सुख की खोज में हैं दुख को कोई नहीं चाहता, चींटी से लेकर पंचेन्द्रिय पशु तक सभी अपने को सुखी रहने के लिये प्रयत्न करते हैं रात्रि दिन इसी की चेष्टा में लगे रहते हैं परन्तु इतना करने पर भी असली सुख की छाया तो दूर रही नकल सुख भी प्राप्त नहीं हुआ, क्या कारण है कि सुख का प्रयत्न करने परभी सुख क्यों नहीं मिलता? तो गुरुदेव ने उत्तर में कहा कि हमारे सुख की प्राप्ती में तीन बड़े बाधक शत्रु हैं इसलिये हम उसके समीप भी नहीं पहुँच पाते हैं, वे मल, विक्षेप, आवर्ण हैं जब तक इनका नाश नहीं होगा। संसार में सुख की प्राप्ति असम्भव है इनमें आवर्ण का नाश तो सहज ही हो सकता है। जिधर हमारी दृष्टि चली गई है उसे जरा सा हटा लेने पर उधर से फेर लेने पर आवर्ण हट सकता है, भगवान सदैव यही कहते हैं कि हे संसारी जीवों। जो हमारी पूजा अर्चा करते हो मेरे उपदिष्ट मार्ग की ओर देखो उधर ही मन लगाओं मेरी भक्ति की चर्चा करते हुये। मेरे तरफ देखते हुये मेरी अभावना में मेरी कथा में निरन्तर ही रमण करते हैं उनके लिये सच्चे सुख की प्राप्ति में देर नहीं है, जब तक मन मलीन है वाह्य वस्तुओं में फँसा रहता है तब तक प्रेम से मेरी सच्ची भक्ति, पूजा में रुचि नहीं होगी जबतक प्रेम पूर्वक भक्त मेरी पूजा में अर्चना में लीन नहीं होता तब तक सुख उसे कैसे मिल सकता है, पाप के कारण मलीन विचार मन में उठा करते हैं क्योंकि मन में मलीनता भरी हुई है एकांत में बैठकर भी मलीनता के कारण भगवद्भक्ति में मन न लगकर इधर उधर वाह्य पदार्थों में मन दौड़ा करता है। क्योंकि अनादि काल से मन कुभावनाओं में रहने के कारण संस्कारित हो रहा है। ये जो इन्द्रिय तथा मन से होने वाले भोगों को विषयी पुरुष सुख का रूप मानते हैं परन्तु अन्त में दुख रूप ही है और अनित्य है इसलिये बुद्धि मानव विवेकी पुरुष इनमें कभी नहीं तल्लीन होता है।

अतएव बुद्धिमान पुरुष को विचार करना चाहिये जब इनमें मूर्ख पुरुष ही रमण करते हैं तो मैं बुद्धिमान होते हुये इसमें क्यों फँसूँ विषय में जो रमता है वह मूर्ख है उसका जीवन पापमय होता है उसका धन और समय व्यर्थ जाता है, कहा भी है कि मनुष्यों थोड़ा विचार करो।

मरोगे मरिजाओगे कोई न लेगा नाम।
उजड़जाय बसाओगे छाँड़ि वसंता गाम॥
आजकल की पाँच दिन जँगल होगा वास।
ऊपर २ हल चलैंगे ढोर चरैंगे घास॥१॥
आज कहै मैं कालभजूँ काल कहै फिरकाल।
आजकाल के करत ही सौसर जासीचाल॥
काल भजतां आजभज आजभजंता अब।
छिन में परलय होयगी फेर भजैगा कब॥२॥

अतएव आलस्य और प्रमाद को त्याग करके जिस प्रकार से भी हो, उठने बैठने चलने फिरने सभी कर्म करते हुये भगवान के मार्गपर भगवान की अराधना में दृढ़ता के साथ तत्पर रहना चाहिये उपासना में कभी आलस्य नहीं करना चाहिये। मां बच्चे को भुलाने के लिये उनके सामने नाना प्रकार के खिलौना डाल देती है। कुछ खाने के लिये पदार्थ हाथ में देती हैं जो बच्चे उन पदार्थों में रमकर मां के लिये रोना छोड़ देते हैं। मां भी उन्हें छोड़कर अपना दूसरा काम करने लगती हैं।

परन्तु जो बच्चा किसी भी भुलावे में न भूल कर मां, मां, को पुकारा करता है उसे मां अवश्य ही अपनी गोद में लेने के लिये वाध्य होती है, ऐसे जिद्दी बच्चे के पास घर के सारे कामों को छोड़कर मां को उस बच्चे के पास आना पड़ता है और दुलार करना पड़ता है, माता जानती है अच्छी तरह से कि यह बच्चा मेरे सिवाय दूसरे विषयों में नहीं रमता है। इसी प्रकार भगवान भी भक्त की परीक्षा के लिये उसको अनेक प्रकार का प्रलोभन देकर उसे भुलाना चाहते हैं, परीक्षा में जो भूल जाता है वह परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता है परन्तु जो भाग्यवान, भक्त सँसार के समस्त क्षणिक पदार्थों को लात मार देता है, और प्रेम में मग्न होकर सच्चे मन से सच्चिदानंद मय, अमृतमयी, माता से मिलने के लिये रोया करता है, ऐसे भक्त के लिये भगवान को सम्पूर्ण काम छोड़कर आना पड़ता है कबीरदास ने अपनी वाणी में कहा है कि:—

केशव २ कूकिये न कूकिये असार।
रातदिवस के कूकते कभी तो सुनै पुकार॥
रामनाम रटते रहे जब लगघट में प्राण।
कबहुँतो दीनदयाल के भनक पड़ेगी कान॥

इसलिये समस्त विषयों से मन को हटाकर भगवान के पावन नाम को सदा स्मरण करते रहना चाहिये जो परमात्मा का योग्य मार्ग और उनके स्मरण में अथवा ध्यान में मग्न रहता है। उसको भगवान भव बन्धन से शीघ्र ही मुक्त कर देते हैं, एक जैनाचार्य ने कहा है कि!

आबाल्या जिनदेव देवभवतः श्रीपादयो सेवया।
सेवासक्तविनेय कल्पलतया कालोद्ययावद्गतः॥
त्वांतस्याः फलमर्थये तदधुना प्राण प्रयाणक्षणे।
तवन्नम प्रतिवद्धवर्णपठने कंठोस्त्व कुंठोमम॥ ॥

जैनाचार्य कहते हैं कि हे जिनेन्द्र देव। मैं जन्म लेकर किसी गति में भी जाऊँ मरण समय तक आपके चरणों की भक्ति मुझे मिलती रहे कल्पांत काल भी बीत जावे तो आपकी भक्ति आपकी सेवा मेरे हृदय में रहे और आपका

नाम ही पुकारने का अवसर मुझे प्राप्त होता रहे और जहाँ २ मेरा मरणांत समय हो आपका नाम जपते २ कंठगत, प्राण होने पर भी आपकी भक्ति से अलग न हों और आपकी भावना मेरे कंठ तक भरी रहे।

तव पादौ मम हृदये; मम हृदयं तव पाद दृयेलीनं।
निष्ठतु जिनेन्द्र तो वधा वन्निवोणस प्राप्तिः॥

आपका चरण मेरे हृदय में रहे और मेरा हृदय आपके चरणों में रहें, हे जिनेन्द्र देव जब तक मोक्ष की प्राप्ति मुझे न हो आप मेरे हृदय में तिष्ठें, भगवान की भक्ति में छोटे बड़ों का विचार कुछ नहीं है। एक छोटे से छोटे पशु से लेकर मनुष्य तक भगवान की भक्ति कर सकता है और भगवान बन सकता है भगवानको जिस भावना से भजता है वैसा ही फल उसे मिलता हैं यदि कोई रोकर व्याकुल होता है तो भगवान भी उसे व्याकुलता के साथ कृपा करते हैं सच्चे भावों से विचार किया जाय तो हम सांसारिक क्षणिक सुखों के लिये रोते हैं परन्तु सच्चे सुखके लिये नहीं रोते हैं। इसलिये सच्चे सुख का मार्ग हमको नहीं मिल पाता है।

जो मनुष्य अपने आप अपने दुःख का कारण बनता है वही मूर्ख है इसलिये चित्त की वृत्तियों को विषयों से बराबर हटाते रहना चाहिये संसार के जितने भोग हैं उनमें दुःख और दर्शन करे, भोग ही दुःख और दोष का कारण है और उससे विरक्तता ही सुख का कारण है।

यद्यपि मोह के कारण विषय भोग अमृत के समान सुखकारी लगते हैं परन्तु परिणाम में विष के समान घातक हैं प्राण हरने वाले हैं। लोक परलोक बिगाड़ने वाले हैं विषयों का भोक्ता संसार में बार २ जन्म लेता और मरता हैं नाना प्रकार के दुःखों में घुलता रहता है। असलमें यह सुख नित्य न होने के कारण सर्वथा असत्य है विषयों की यह अनित्यता और असत्यता प्रति समय देखते हुये भी इनसे विरक्ति नहीं होती है यही हमारी मूर्खता है इस मूर्खता को विचार से हटाना चाहियें, विचार से विवेक उत्पन्न होगा और विवेक से ही वैराग्य का सूर्योदय होगा, इस वैराग्य से ही विषयरूपी संसार के वृक्ष को गन्ने के काटने के समान सुगम और सरल होगा विषयों की ओर प्रवृत्तियों का कदापि न जाना उनसे परान्मुख हो जाना उनका चिंतवन न होना ही यही उनका काटना है कहा भी है कि !

ध्यायतो विषयान पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात सञ्जायते कामःकामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधा द्भवतिसमोहः समोहात स्मृतिविभ्रम।
स्मृतिभ्र शाद बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात प्रणश्यति॥

विषयों को चिंतवन करने वाले पुरुषों को विषयों में आसक्ति हो जाती है योग दर्शन में कहा है कि

परिणामताप सँस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः

संसार के समस्त विषय जन्म सुख परिणाम ताप, संस्कार से मिले हुये के कारण दुःखों से मिले हुये के हेतु तथा सात्विक, तामस, राजस, गुणों के परस्पर विरोधी होने के कारण विवेकी पुरुषों के लिये दुःखमयी है, विषयों की आसक्ति से कामना उत्पन्न होता है कामना से क्रोध उत्पन्न होता है क्रोध उत्पन्न होने से अत्यन्त मूढ़

भाव उत्पन्न होता है मूढ़भाव से दिमाग में भ्रम होता है और भ्रम हो जाने से बुद्धि की ज्ञान-शक्ति का नाश हो जाता है ज्ञानशक्ति का नाश होने से पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है सांसारिक वासनाओं की आसक्ति को लेकर विषयों का चितवन करना ही गिरने का कारण है इसलिये सबसे पहिले साधन सीखना चाहिये

१—सवेरे उठकर भगवान का पूजन प्रेम पूर्वक करना चाहिये भगवान की जाप धीरे २ प्रेम पूर्वक मन की प्रवृत्ति को रोककर एकाग्रमन से करना चाहिए।

२—सभी धर्मात्मा भाइयों के साथ प्रेम पूर्वक पूजा अर्चा करने के बाद शास्त्रों को बांच कर स्वयम् समझना चाहिये। और दूसरों को समझाना चाहिये शास्त्र का मनन पठन पाठन खूब करना चाहिये। पाठ करते समय अर्थ पर ध्यान रखे जो अर्थ समझ में आवेन उसे नोटकर ले और बहु ज्ञानी के मिलने पर उनसे पूछ ले यदा तदा अर्थ अपने मन से न करे।

३—अपने घर पर रहते हुये भी हर एक को एकांत सेवन करना चाहिये, एकाँत में भगवान का ध्यान करे पहिले विचार करे कि आत्म कल्याण किस तरह से होगा यदि कोई विचार न सूझे तो भगवान से प्रार्थना करे कि हे भगवान शरीर रूपी दोषसे मलिन स्वभाव वाला और धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ पूछता हूं कि जो साधन निश्चय ही कल्याण कारक हो वह मेरे लिये ही कहिये क्योंकि मैं आपका शिव हूं आराधक हूँ, मैं आपकी शरण में हूं मुझे शिक्षा दीजिये इस तरह भगवानसे विनती करता हुआ अश्रु निकल रहे हों गद्गद् कण्ठ से कहेः—

४—सेवा का अभ्यास डालना चाहिये हम लोगों में सेवा का अभ्यास बहुत कम है अपने घर पर आये हुये अतिथि का सत्कार खूबकरना चाहिये और जो कोई धर्मात्मा पुरुष आ जाय उनसे धर्म चर्चा करना चाहिये। धर्म सम्बन्धी बातों की खूब खोज करे यदि कोई सत्सङ्ग करक आया हो अथवा कोई सत्सङ्गति पत्र मिला हो तो आपस में मिलकर चर्चा करना चाहिए और कोई कल्याण की बात हो तो रुचि पूर्वक ग्रहण कर लेना चाहिए।

५—जो साधन बतलाया गया हो उसे कठिन न समझे सदा ऐसा साहस रखे कि दुर्गुण और दुराचार आ ही कैसे सकता है।

६—डाक्टरी औषधि कभी न लेवे, डाक्टरी दवायों से बहुत अधिक हानि होती है बाजार की मिठाई पूड़ी, दही, रावड़ी, चाय आदि नहीं खाना चाहिये भांगादि मदक द्रव्यों को भी त्याग करना देना चाहिये।

७—वास्तविक बात यह है कि सत्सङ्ग में जितनी बातें बतलाई जावें यदि उनको धारण करले और उनका नियम सा करले तो अवश्य ही सुधार हो जायगा।

इस तरह से अपने व्योहार को ठीक तौरपर साधन करेंगे तो सुख की प्राप्त हो जावेगी यही मूल सुख का कारण है।

शिखरचन्द मैकूलाल जी टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख २१-८-५३ दिन शुक्रवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराजजी ने अपने उपदेशमें आत्मस्वरूप के चिंतवन का फल बतलाते हुए कहा कि:—
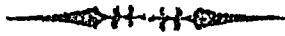
न क्लेशो न धन व्ययो न गमनं देशांतरे प्रार्थना ।
केषांचिन्न वलक्षयो न भयं पीड़ा परस्यापिन ॥
सावद्यं न रोग जन्म पतनं नैवान्यसेवानहि ।
चिद्रूपस्मरणे फलं बहुतरं तन्नाद्रियंते बुधाः ॥

इस परम पावन चिद्रूप आत्म स्वरूप का चिंतवन करने से न किसी प्रकार क्लेश होता है और न धन व्यय करना पड़ता है देशांतर में गमन नहीं करना पड़ता दूसरे से प्रार्थना नहीं करना पड़ती है किसी प्रकार की पीड़ा, विलक्षण रोग, जन्म, मृत्यु सेवा इत्यादि भी नहीं करना पड़ती फिर हे बुद्धिमानो तुम चिद्रूप आत्मस्वरूप का स्मरण चिंतवन क्यों नहीं करते हो यह बात हमारी समझ में नहीं आता संसार में बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जिनकी प्राप्त में क्लेश भोगना पड़ता है और धन व्यय करना पड़ता है देश देशांतर में गमन करना पड़ता है, बल नष्ट करना पड़ता है भय उठाना पड़ता है पीड़ा सहन करना पड़ता है शक्ति का क्षय करना पड़ता है, नाना प्रकार के पाप धन के लिये करना पड़ता है दूसरे पुरुषों की सेवा करना पड़ता है। इत्यादि निकृष्टजनों की सेवा करना पड़ती है। परन्तु शुद्ध चिद्रूप अखण्ड अविनाशी परमात्मा के स्मरण में उपर्युक्त किसी प्रकार का दुःख नहीं भोगना पड़ता है। इसलिये आत्म सुख के अभिलाषी संसारी प्राणी! यदि तुम सुख चाहते हो तो चिद्रूप परमात्मस्वरूप का स्मरण करो, संसार में भोग भूमि का सुख देव लोक का सुख विद्याधरों का सुख, नाग लोक का सुख दुर्लभ है परन्तु शुद्ध आत्मा की प्राप्त का उपाय अति सरल है, क्योंकि चिद्रूप के स्मरण में भय, और आकुलता साथ २ नष्ट होते चले जाते हैं। और भोग भूमि इत्यादि के साधन में बहुत समय लगता है, स्वर्ग सुख और संसार सुख के लिये बहुत प्रयत्न करते हैं और रात्रि दिवस आकुलता में डूबे रहते हैं। तो भी स्वर्ग सुख, नाग लोक सुख, अनेक संसारी सामग्री प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है परन्तु शुद्धात्मा की प्राप्त करना इतना सरल है कि वाह्य पदार्थों से चित्त

हटाकर शुद्धात्मा की प्राप्ति का उपाय किया जाय तो बहुत जल्दी ही यह सुख प्राप्त हो सकता है और आत्म स्वरूप की प्राप्ति होने के बाद संसार बन्धन से छुटकारा मिल जायगा। इसलिये विद्वानों को चाहिये कि यदि वे सरलता से सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो शुद्ध चिद्रूप का ध्यान निरन्तर करें जैसे दरिद्री मनुष्य राजा के पास जा करके बहुत सरल और दीनता के साथ याचना करता है और अनेक प्रकार की खुशामद करता है, इससे राजा का मन द्रवित होता है और राजा उसकी दरिद्रता दूर कर देता है, इसी प्रकार यदि तुम सुख के लिये अनेक प्रकार के दुःख देने वाले सांसारिक आदमियों से याचना करोगे तो उससे दुःख की निवृत्ति नहीं होगी, इसलिये अपने पास ही चित्स्वरूप परमात्मराजा के पास निष्कपट भाव से उनकी आराधना पूजा, ध्यान करोगे तो जन्म जरा मृत्यु के दुखों को मिटाकर सदैव के लिये परमात्मस्वरूप सच्चे सुख की प्राप्ति करा देगा।

परमात्मा परंब्रह्म चिदात्मा सर्वदृक् शिवः।
नामानीमान्य हो शुद्ध चिद्रूपस्यैवे केवल ॥१॥

परमात्मा, परब्रह्म, चिदात्मा, सर्वदृष्टा, शिव, शंकर समस्त नाम उस शुद्ध चिद्रूप आत्म रूप के ही हैं, और बुद्ध, हरिहर, महेश, नारायण, पुरुषोत्तम, देवाधि देव, ब्रह्मा विष्णु, महेश, इत्यादि अनेक नाम हैं। परमात्मा सदैव शुद्ध हैं संसारी नहीं हैं और न संसार में आकर कर्म बंध करते हैं। कहा है—

बुद्धवीरया हरिहर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो। भक्ति भाव से प्रेरित होकर चित्त उसी में लीन रहो॥

शुद्ध स्वरूप चिद्रूप परमात्मा को जिन्होंने कर्मों को जीत कर प्राप्त कर लिया है उन्हीं को बुद्ध, वीर, हरिहर, ब्रह्मा इत्यादि नामों से पुकारा जाता है और यह कर्म मल से रहित हो गया है इसलिये निष्कलंक है और चिदात्मा, चिदानंद, आनन्द स्वरूप हो गया है इसलिये परमानन्द स्वरूप है ज्ञानदर्शन चेतना का पिंडस्वरूप है! इसलिये चिदात्मा है समस्त पदार्थों का देखने वाला है इसलिए सर्वदृक अर्थात् सर्वदृष्टा है। कल्याणस्वरूप है, इसलिए शिव है,

भूदेव ने कहा कि:—

मथ्येश्रुताब्धेः परमात्मनाम रत्न व्रजं धीव्यमयाग्रहीत
सर्वोत्तमत्वादि दमेवशुद्ध चिद्रूपनामानि महार्घ्यरत्नं

जैन शास्त्र एक अपार सागर है उसमें परमात्मा के ना ; रूप अनेक रत्न भरे पड़े हैं उसमें खूब परीक्षा करके शुद्ध चिद्रूप नाम का रत्न मैंने ग्रहण किया है और उसी चिद्रूप रत्न की प्राप्ति तुमको भी हो इसलिए उसका ज्ञान करा देना चाहता हूँ भगवद्गीता में कहा है कि:—

विष्णु भगवान ने समुद्र का मथन किया, जिसमें अमृत की प्राप्ति की। वास्तविक रूप में देखा जाय तो संसार रूपी समुद्र को मंथन करके उन्होंने अपने शुद्ध चिद्रूप को प्राप्त किया था। इसलिए जैन शास्त्र समुद्र को मंथन करके चिद्रूप रत्न की प्राप्त कर लेने से सुख की प्राप्त सुलभ होगी जिस प्रकार रत्नाकर (समुद्र में) अनेक रत्न रहते हैं किंतु उसमें से किसी एक सार उत्तम श्रेष्टरत्न को ग्रहण किया जाता है। उसी प्रकार जैन शास्त्रों में शुद्ध चिद्रूप, परमात्मा परब्रह्म इत्यादि अगणित नाम उल्लिखित है। उनमें से मैंने शुद्ध चिद्रूप परब्रह्म को उत्तम और

परमप्रिय मानकर मैंने ग्रहण किया है और इसी का ध्यान अध्ययन करना उत्तम समझा है।

संसार में सिवाय शुद्ध चिद्रूप के न और कोई मेरा है और न अन्य कोई पदार्थ मेरा है। इससे भिन्न अन्य पदार्थों का चिंतवन करना व्यर्थ है, अन्य पदार्थ की चिन्ता से मेरे स्वरूप का नाश होता है उससे मुझे कोई लाभ नहीं है स्मरण मात्र से दुःख उठाना पड़ता है मैं शुद्ध चिद्रूप हूँ और जितने पदार्थ हैं सब जड़ हैं जड़ और चेतन से बहुत अन्तर है जड़ कभी चेतन नहीं हो सकता और चेतना कभी जड़ नहीं हो सकता इसलिये मुझे तो जड़ का चिंतवन मनन नहीं करना चाहिये इसका ध्यान चिद्रूप से भिन्न कर देता है, अनादि काल से इन जड़ पदार्थों का संसर्ग करके मैंने देवगति में नरक गति में, पशु योनि में मनुष्यों में अनेक प्रकार के दुःख उठाये, परन्तु जब मैंने केवल शुद्ध चिद्रूप का ध्यान अन्य पर पदार्थों को छोड़कर किया तो मुझे शांति मिली जिस समय कर्म का परदा आत्मा पर से उठ जाता है उस समय वह समस्त पदार्थों को जान देख लेता है इस बात का मुझे अनुभव हो गया। अनादि काल से यह आत्मा संसार में परिभ्रमण कर रहा है और कर्मों से आवृत्त होने के कारण इसे स्वल्प ज्ञान होता है, परन्तु जिस समय कर्मों का आवरण हट जाता है हस्त की रेखा के समान सम्पूर्ण पदार्थों को जान लेता है यह अनुभव सिद्ध है। इस प्रकार अनादि काल से यह संसारी जीव परवस्तु से प्रेम करके अनेक प्रकार के कष्ट जन्म जरा, मृत्यु को प्राप्त करके दुःखी हो रहा है। जब इस दुःख से अत्यन्त दुःखी होकर अपनी ओर लौटता है तब इसे भान होता है कि मेरी निधि मेरे पास ही है मैं व्यर्थ ही पर पदार्थों की ओर दौड़ लगाता दुःखी हो रहा था। अब मुझे मेरी आत्म की सुख निधि मिल गई जिसमें परमानन्द विराजमान हैं असली सुख की पहिचान जबतक इस जीव को नहीं होती है तबतक यह जीव संसार चक्र में घूमता रहता है, इसपर एक उदाहरण है इसे यदि ध्यान से सुनें तो असली चीज संसार में क्या है और नकली वस्तु कौन सी है सहज ही ज्ञान हो जायगा।

किसी एक नगर में एक सेठ ने नकली रत्न को असली समझकर अपनी तिजोरी में बन्द करके रखा था, वृद्धावस्था संन्निकट आने पर अपने पुत्रों से कहा कि जब तुम्हें कुछ आवश्यकता पड़े तो तिजोरी में जो रत्न हैं उन्हें निकाल लेना सेठ जी परलोक वासी होगये उनके कहे अनुसार तिजोरी खोलकर रत्न निकाले और किसी जौहरी के पास बाजार में बेचने को लेगये तब जौहरी ने रत्नों को हाथ में रखकर देखा तो मालूम हुआ कि रत्न नकली हैं जौहरी को यह भी ध्यान आया यदि सामान्य कीमत में इन रत्नों को मैं ले लूँगा तो मेरा अपवाद हो जायगा कि छोटे बालक से जौहरी ने अल्प मूल्य में बहुमूल्य रत्न ले लिया इसलिये विचार करके कहा कि तुम थोड़े दिन के लिये मेरे यहां नौकरी कर लो तो तुमको रत्न परीक्षा करना सिखाऊँगा। बालक ने हाँ कर लिया और दूकान में नौकरी कर लिया जौहरी ने कहा अपने रत्नों को इस तिजोरी में बन्द करके इसकी चाबी अपने पास रख लो सेठ पुत्र ने ऐसा ही किया। कई साल नौकरी करने के बाद सेठ पुत्र रत्न परीक्षा में

निपुण होगया। कोई पुरुष रत्न लेकर आता उसे देखकर तत्काल बता देता कि यह नकली है अथवा असली है तब जौहरी ने कहा कि अपने रत्नों को जो तुमने तिजोरी में बन्द कर रखा है खोल कर देखो कैसे हैं, तिजोरी खोलकर सेठ पुत्र ने देखा कि रत्न नकली हैं और उन्हें फेंक दिया जौहरी ने पूछा क्यों फेंक दिया सेठ पुत्र ने कहा कि हमारे पिता को असली रत्नों का ज्ञान न था इसलिये उन्होंने तिजोरी में बन्द कर रखा था मैं भी मूर्ख होगया था आपके संसर्ग से असली नकली की पहचान मालूम हो गई जौहरी ने उत्तर में कहा कि यदि तुम जिस समय लाये थे उसी समय नकली बताकर फेंक देता तो मेरे ऊपर ऊपर लांछन लग जाता अब इतने दिनों में तुम्हें उसकी पहिचान करना बता दिया। इसी तरह सँसारी जीव वाह्य पदार्थों को अपना मानकर उसमें मोही दुखी हो रहे हैं। गुरुदेव कहते हैं! कि हे संसारी जीवो तुमको अपना इष्ट पदार्थ प्राप्त करना है तो श्रीगुरु जौहरी के पास आकर परीक्षा करना सीखो तो तुमको मालूम हो जायगा कि यह वाह्य पदार्थ नकली रत्न हैं अपने पास ही असली रत्न मौजूद है उसे प्राप्त करके सुखी हो जाओगे। श्री गुरु कहते हैं कि हे जीवों सुनोः—

प्रोद्यन्मोहाद् यथा लक्ष्मां, का मिन्यां रमते चहत्
तथा यदि स्वचिद्रूपे किंन मुक्तिः समीपगा ॥

मोह के उदय से मदनमत्त जीव का मन जिस प्रकार सम्पति और स्त्रियों में रमण करता है उसी प्रकार यदि वही मन उससे उपेक्षा करके शुद्ध चिद्रूप अखण्ड अविनाशी आत्म स्वरूप की ओर झुक जावे और उससे प्रेम करे, तो देखते देखते उस जीव को मुक्ति प्राप्त करने में क्या देरी है?

मन चाहता तो यह है कि मुझे सुख मिले परन्तु सुख प्राप्तिका उपाय कुछ नहीं करता है। उलटा महा बलवान मोहनीय कर्म के वश में फँसकर कभी धन उपार्जन करता है कभी स्त्रियों के साथ रमण करता है, कभी नाचता है, कभी रोता है, कभी हँसता है परन्तु यदि मोह को छोड़कर अपने भीतर विराजमान शुद्ध चिद्रूप ध्यान, मनन करे तो इसे अपनी निधि प्राप्त हो जावे जिससे चिरकाल तक फ़िर कभी दुःख की प्राप्ति न हो बहुत जल्दी ही उसे मोक्ष सुख मिल जावे जो आलसी मनुष्य सुख दुःख और उनके कारणों को जान करके भी प्रमाद के वशीभूत होकर शुद्ध चिद्रूप आत्म स्वरूप के चिंतवन को छोड़कर अन्य कार्य करने लगता है। अमृत को मूढ़ मनुष्य त्यागकर विषपान करते हैं। उसी तरह आत्मस्वरूप अमृत को छोड़कर अन्य विषय विषरूप सेवन करके सुखी दुःखी अपने को अनुभव करते रहते हैं, इन्द्रियों के विषय सेवन करने में चित्त व्याकुल बना रहता है और शुद्ध चिद्रूप का ध्यान करने में किसी प्रकार की आकुलता नहीं रहती है इसलिये शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति से मनुष्यों का बड़ा कल्याण होता है, रागद्वेषादि के कारण जीवों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं, शुद्ध चिद्रूप का ध्यान करने से यह दुःख तत्काल नष्ट हो जाते हैं। बिना रागद्वेष के दूर हुये शुद्ध चिद्रूप का ध्यान नहीं हो सकता है। निराकुलता रूप ही आनंद है और इस आनन्द की प्राप्ति शुद्ध चिद्रूप के ध्यान से हो सकता है, शुद्ध चिद्रूप आनंदमय है और आनंद शुद्ध चिद्रूप से जुदा नहीं हैं।

शिखरचन्द मैकूलाल जी टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख २२-८-५३ दिन शनिवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराजजी ने अपने उपदेशमें प्राणी मात्र को श्रीजिनेन्द्रदेव की पूजा और स्तुति करने की प्रेरणा करते हुए कहा कि:-

जिनेशस्य स्नानात् स्तुतिय जन जपान्मंदिरार्चा विधाना—
चतुर्धा दानाद्धाध्ययनखजयतो ध्यानतः संयमाच्च ।
व्रताच्छीलात्तीर्था दिक गमनविधेः क्षांति मुख्य प्रधर्मात् ॥
क्रमाच्चिद्रूप्राप्तिर्भवनिजगति ये वांछकास्तस्यनेषां ॥ २ ॥
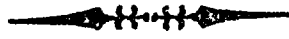
जो मनुष्य शुद्ध चिद्रूप आत्म स्वरूप की प्राप्ति करना चाहते हैं उनको प्रातःकाल नित्य जिनेन्द्र देव का अभिषेक, पूजन, स्तुति करना चाहिये, इससे पुण्य संचय होना और कर्मों की निर्जरा होती है, भगवान की पूजन करना मंदिर निर्माणसे आहार औषधि, शास्त्र और अभयदान देने से शास्त्र स्वाध्याय, तथा चर्चा करने से ध्यान से संयम से तीर्थ क्षेत्रों की बंदना करने से अपरिमित पुण्य संचय होता है उत्तम क्षमादि दश धर्मों का पालन करने से आत्मस्वरूप शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति का कारण है। इसके साधन के लिये सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिये, वास्तव में श्रद्धा पूर्वक एकान्त में बैठने पर शुद्ध चिद्रूप का ध्यान करने से शुद्ध चिद्रूप को प्राप्ति होता है परन्तु भगवान का अभिषेक, पूजन, स्तवनादि करने से शुद्ध चिद्रूप की ओर दृष्टि जाती है अतएव यह सभी साधनों का प्रयोग नित्य प्रति करते रहना चाहिये, यह आवश्यक है, देव, शास्त्र, गुरु, तीर्थ, मुनि तथा इनकी प्रतिमा शुद्ध चिद्रूप के ध्यान का कारण है बिना इनकी पूजा अर्चा, अराधना के शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति दुःसाध्य है इसलिये शुद्ध चिद्रूप के अभिलाषी विद्वानों, देव,शास्त्र, गुरु, तीर्थादि का पूजन अभिषेक करो इससे ही शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति होगी, शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति में यदि कोई अनिष्ट पदार्थ ध्यान का कारण बन जावे तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिये परंतु इष्ट वस्तु भी यदि शुद्ध चिद्रूप के ध्यान में बाधाकारक हो तो उसे छोड़ देना चाहिये, अकबर बादशाह नमाज पढ़ता था। एक बार

स्त्री रोज भाग जाया करती थी, एक दीवार थी जिसको उलङ्घन करके उस पार जाना था किंतु यहाँ बादशाह नमाज पढ़ता था, उस स्त्री को ध्यान न रहा कि कौन है, बादशाह के ऊपर पैर रखकर दीवाल लाँघ कर चली गई, वापस आने पर बादशाह ने कहा कि कैसी मूर्ख स्त्री है कि बिना देखे नमाज पढ़ने पर मेरे ऊपर पैर रखकर चली गई, स्त्री ने कहा कि यदि नमाज पढ़ने के समय आपका ध्यान ईश्वर में होता मुझे न देख सकते लेकिन ऐसा नहीं था। मैं जिस यार के ध्यान में जा रही थी मुझे मालूम भी नहीं पड़ा कि यहाँ कौन है, और मैं आपके ऊपर पैर रख कर चली गई, इससे यह निष्कर्ष निकलता है। बिना एकाग्र हुये चिद्रूप परमात्म स्वरूप का ध्यान असम्भव है, इसलिये इसकी सहायता के लिये भगवान की अभिषेक, पूजन, ध्यान, दान इत्यादि साधन है पदार्थ दो प्रकार के हैं जो मन और इन्द्रियों को इष्ट हैं वह इष्ट पदार्थ हैं। और जो इसके विपरीत हैं वह अनिष्ट पदार्थ हैं, जो साधन इष्टरूप हैं, वह तो ठीक ही है। अनिष्ट पदार्थ भी यदि शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति में सहायक मालूम पड़े तो उसे भी लेना चाहिये जिस प्रकार वज्र पर्वत को चूर २ कर देता है। उसी प्रकार जो शुद्ध चिद्रूप का ध्यान करने वाला है उससे कर्म रूपी पर्वत चूर २ हो जाते हैं. ध्यान ना उसी का नाम है जिसमें दूसरा वस्तु का चिंतवन हो जिस ध्यान में पर पदार्थ का चिंतवन हो जावे वह आर्तध्यान है ध्यान में किञ्चित भी चिन्ता नहींकरना चाहिये, शुद्धात्मा का ध्यान उसी समय हो सकता है जब हृदय में दूसरी बात की चिन्ता न हो यदि शुद्ध चिद्रूप का ध्यान करते समय किसी प्रकार की चिन्ता उपस्थित होती है तो दूध में जैसे नमक थोड़ा भी पड़जाने पर दूध फट जाता है वैसे ही वह ध्यान व्यर्थ हो जाता है यह शुद्ध चिद्रूप का ध्यान सूर्य से भी अधिक प्रकाश मान है, करोड़ों सूर्य, और करोड़ों चन्द्रमा के प्रकाश से भी अधिक प्रकाशमान शुद्ध चिद्रूप का ध्यान है, इस पर स्त्री पुत्रादि विकल्पों का आवरण पड़ जाता है तो फिर ध्यान बन्द हो जाता है, स्त्री पुत्रादि की चिन्ता मनुष्य को कांटे के समान चुभती रहती है, तब ध्यान कैसे हो सकता है। जैसे नाटक में पात्र कभी स्त्री कभी पुरुष, कभी रोनेवाला, कभी हँसने वाला, नाचने वाला, बन जाता है उसी तरह यह जीव संसार में अनेक भेषों को धारण करके अपने स्वाभाविक ज्ञान ध्यान को भूल जाता है। चिंता चिता के समान है इससे यह भव और परभव दोनों नष्ट हो जाते हैं जबतक चिंता से निवृत्ति न हो जावेगी तब तक शुद्ध चिद्रूप का ध्यान नहीं हो सकता जैसे बांझ को पुत्र और गधे के सींग नहीं होते उसी प्रकार अभव्य को शुद्ध चिद्रूप का ध्यान कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि भेद विज्ञान के बिनाशुद्ध चिद्रूप का ध्यान अशक्य है अभव्य (जिस जीव की रुचि आत्म स्वरूप की ओर कभी नहीं होती है) उसको कभी परमात्मा पद की प्राप्ति नहीं सकती है इस जीव को स्वर्ग, मोक्ष का श्रद्धान नहीं होता है। जैसे पितज्वर वाले को मीठा दूध कडुवा मालूम होता है उसी प्रकार धर्म की वार्ता उसे विपरीत मालूम देती है, कड़ुवी मालूम देती है उसे ग्रहण करने की इच्छा ही नहीं होती है, कोरडू मूँग के समान

वह कभी सीज नहीं सकती है, जिसको अजीर्ण विकार है खाया पिया नहीं पचता है अन्न की रुचि भी नहीं होती है। वैसे ही दूर भव्य को भी शुद्ध चिद्रूप के ध्यान की रुचि नहीं उत्पन्न होती है, जैसे स्त्री के बिना पुरुष को पुत्र नहीं उत्पन्न हो सकता है उसी प्रकार बिना भेद विज्ञान के शुद्ध चिद्रूप का ध्यान नहीं हो सकता है। मेरा आत्मा शुद्ध चिद्रूपमय है और सम्पूर्ण पदार्थ जड़ है इसी का नाम भेद विज्ञान है, शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति में भेद विज्ञान प्रधान कारण है जो मनुष्य ज्ञानी है संसार की वास्तविक स्थिति का जान कार है वह मनुष्य, स्त्री, तिर्यंच, देवों की स्थिति, नृत्य, गायन, शोकादि क्रोधादि, भय बुढ़ापा रोना, सोना, बुढ़ापा, आकृति स्तुति, नमस्कार, चमतकार को आत्मा नहीं मानता है। इसे इन्द्रजाल के समान समझता है; जो मनुष्य अज्ञानी है वह रात्रि दिन परपदार्थों के संयोग की वांछा करता है प्राप्ति में आनन्द मानता है। प्राप्ति में होने पर दुःख मानता है। इष्ट में हर्ष अनिष्ट में दुःख मानता है कभी गाने में हर्ष मानता है, कभी देवांगनाओं के रूप को अच्छा समझता है और इसमें हर्ष विषाद मानकर अपने को सुखी दुखी अनुभव करता है परन्तु ज्ञानी पुरुष नाटक के पात्र समान इसे क्षणिक समझता है और उसमें हर्ष विषाद नहीं करता है समझता है कि सांसारिक पदार्थों का स्वभाव ही ऐसा है, अतएव उससे अपने को सुखी दुःखी नहीं अनुभव करता है। जिस मनुष्य के हृदय में सिंहासन में विराजमान चक्रवर्ती और इन्द्र के ऊपर दया है, शोभा में रति की तुलना करने वाली इन्द्राणी है, इत्यादि पदार्थों के देखने पर जिनके मन में अरुचि और घृणा उत्पन्न हो जाती है वह उत्तम मनुष्य तत्व ज्ञानियों में उत्तम गिना जाता है, जिसके घर में किसी प्रकार की इंद्रिय भोगोपभोग सम्बन्धी सामग्री की कमी नहीं है पुत्र स्त्री अनुकूल चलने वाली है अनेक नौकर, चाकर अङ्गरक्षक भी हैं परंतु इन पदार्थों को देखकर जिनके हृदय में किंचित भी हर्ष नहीं होता है वरना दुःख ही होता है वह भेदविज्ञानी पुरुष इन सभी पदार्थों से घृणा करता है इसमें कभी रुचिवान नहीं होता है, ज्ञानी पुरुष यह जानता है कि जो आज चक्रवर्ती है कल अशुभ कर्मों का उदय आने पर चक्रवर्तित्व नष्ट होकर कुगति चला जायगा, महान अनिष्ट और घृणा कारक समझता है इन्द्रिय विषय भोगों को कभी भी पसन्द नहीं करता है कहा भी है कि:-

रम्यंवल्कलपर्ण मंदिर करीरं काजिकं रामठं।
लोहँ ग्रावनिषाद कुश्रुत् मटेद पावन्न यात्यंवरं॥
सौधं कल्पतरुँ सुधांच तुहिनं स्वर्णं मर्णिपंचमं।
जैनीवाचमहो तंथेद्रियभवं सौख्यं निजात्मोद्भवं॥

जब तक मनुष्य को उत्तमोत्तम महल, वस्त्र कल्पवृक्ष, सोना, जिनेन्द्र भगवान की बानी आत्मिक सुख की प्राप्ति नहीं होती है, तब तक वक्कल पत्ते का सामान्य घर कांजी हींग लोह पत्थर निषाद स्वर, को अपना हितकारी समझता है, परन्तु उत्तम वस्त्रादि के प्राप्ति होने पर बलकल पत्त आदि से घृणा उत्पन्न हो जाती हैं।

भावार्थ यह है कि जबतक नीच पदार्थों की प्राप्ति होती है उसी को उत्तम समझता है, जिस समय उत्तम पदार्थों को प्राप्त कर लेता है, नीच पदार्थों को भूल जाता है, आत्मा मलीन जब तक है उसी में अपने को संतुष्ट समझता

है परन्तु जिस समय उसे शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति हो जाती है मलीनता को दूर फेंक देता है उसे अनिष्ट समझने लगता है फिर कभी उसकी ओर देखता भी नहीं है संसार में अनेक लोग राजाओं की प्रसंशा करके अपने समय को व्यतीत करते हैं कोई लोग विषय सुख, धन, कला की इच्छा में अपने समय को गुजारते हैं बहुत से सन्तान की उपाय की चिंता में रहते हैं कोई पशु पालन दूसरों की सेवा में रहते हैं, कोई शयन, क्रीड़ा औषधादि में मगन रहते हैं इस तरह अपनी सम्पूर्ण आयु इनमें व्यतीत कर डालते हैं, परन्तु आत्म कल्याण में धर्म के साधन में, आत्मोद्धार के कार्यों में लगने वाले बहुत ही विरले हैं, संसारी मनुष्य अनेक प्रकार के हैं कोई २ राजा कथा करते हैं कोई रात्रि दिन विषयादि सुखों की प्राप्ति कैसे हो, इस तरह अनेकों की यह कामना रहती है कि पुत्र के ने प्राप्त हो उसी की प्राप्ति का उपाय करते हैं कोई २ पशुओं की चिन्ता में लगे रहते हैं, अनेक दूसरों की सेवा करना ही उत्तम समझते हैं। बहुत से सोने में औषधि सेवन में आनंद मानते हैं। सदा आकुलता में व्याकुल रहते हैं। अमुक मनुष्य हमने प्रसन्न रहे, और अपने भरण पोषण में लगे रहते हैं परन्तु शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति में कभी किंचित समय भी नहीं लगाते हैं और न इसकी चिंता करते हैं। कितने खेद की बात है फिर गुरुदेव ने कहा, कि मैंने कई बार रत्न, औषधि, स्त्री, वस्त्र सोना चाँदी आदि धातु, पाषाण आदि पदार्थों को प्राप्त किया, जल के जीव पशु पक्षी इत्यादि पदार्थों की मैंने परीक्षा किया, उत्तम भले प्रकार अमूल्य वस्तुओं को अपनी बुद्धि से जान लिया और पहिचान लिया परन्तु जो शुद्ध चिद्रूप नित्य है अविनाशी है। आज तक पहिले कभी नहीं जाना, और न उसके जानने का प्रयत्न किया उत्तमोत्तम अनेक पदार्थों के जानने में शरीर जीर्ण हो गया, इंद्रियां शिथिल हो गई परन्तु प्राप्ति कुछ नहीं हुई।

जीर्णाएव मनोरथाः स्वहृदये यातजरौवन।
हस्ताङ्ग षुगुणाश्चवन्ध्य फलनायाता जुगणैर्विना॥
किंयुक्तं सहसाऽभ्युपैति बलवान्कालः कृतान्मोऽक्षमी
ह्याज्ञातस्मरशासनांघ्रियुगल मुक्तवाऽस्तिनान्यगतिः

हमारी इच्छा में हमारे हृदय में ही जीर्ण हो गई, जवानी भी चली गई, हमारे अच्छे २ गुण भी कदरदानों के न होने से बेकार हो गये, सर्व शक्तिमान् सर्व नाशक काल (मृत्यु) शीघ्र २ हमारे पास आ रही है इसलिये हमारी समझ में कामारिशिव के चरणों के सिवा और जगह हमारी रक्षा नहीं हैं मनुष्य दुखित होकर कहता है। हमारी मन की मन में ही रह गई, हमारे अरमान न निकले और जवानी कूच कर गई। अब उसके आने की भी उम्मीद नहीं क्योंकि जवानी किसी की भी लौटकर आती नहीं सुनी मनुष्य की तृष्णा कभी नहीं बुझती, एक पर एक इच्छा उठा ही करती है इच्छायें पूरी नहीं होती है और मौत आजाती है। जवानी में जिन्होंने एकांत में ईश्वर भजन किया है वही सच्चा भक्त है बूढ़ा आदमी यदि एकांत वासपर गर्व करे तो झूठा है क्योंकि वह जहाँ पड़ा है वहां से सरक ही नहीं सकता है। जो लोग सारी आयु साँसारिक जालों में फँसे रहते हैं उन्हें कभी आत्मस्वरूप के चिंतवन का समय नहीं मिलता है न भगवत् भजन करने की इच्छा अतएव समस्त सांसारिक वासनाओं को परित्याग करके एकांतमें बैठकर शुद्धचिद्रूप का ध्यान मनन करो तो आत्मोपलब्ध हो जावेगी इसीसे कल्याण होगा। और विनास्वात्मोपलब्धि के त्रिकाल में भी कल्याण नही हो सकता है। ८

छोटेलाल कैलाशचन्द जी टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

ही व्यतीत हो एक क्षण भी व्यर्थ न जावे, फिर पाप और प्रमाद में बिताना तो अत्यन्त मूर्खता है, असल बात यह है कि समय की उपयोगिता को हम लोगों ने अभी तक समझा नहीं है कहा भी है:—

न ध्यान पदमीश्वरस्य विधिवत्संसार विच्छित्तये स्वर्गद्वार कपाट पाटनपटुधर्तोऽपि नोपार्जित ।।१।।

सार यह है कि हम परलोक साधन के लिये जन्म मरण का फँदा काटने के वास्ते अथवा परमपद की प्राप्ति के लिये शास्त्र में लिखी हुई, विधि से भगवान के चरण कमलों का ध्यान नहीं किया उसकी पूजा उपासना भी नहीं किया सारी उम्र पेट की चिंता में ही बिता दिया, इसमें पूर्व जन्म या इस जन्म के पातकों को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया न जीवोंको अभयकिया न पुण्य किया तो हमारे लिये स्वर्ग का द्वार कैसे खुला रह सकता है भगवान की प्राप्ति कैसे हो सकती है, धर्म के सेवन से ही उत्तम गतियां सुख प्राप्त हो सकता है हमने न तो परमात्मा के चरण कमलों का ध्यान किया और न उत्तम २ सुख भोगों की प्राप्ति का प्रयत्न किया न माया मिली न राम मिला द्विविधा में दोनों गये न इधर के रहे न उधर के रहे। हमने जन्म धारण करके अपनी माता की जवानी नाश किया यदि हम ऐसे निकम्मे पैदा न होते तो उसकी जवानी तो न चली जाती कहा है:—

We did not meditale in appropsiate way upon the essence of God head for the termination once for-all our ener-riecurng births deaths. Niether did we practise seligion which is the surest means for throwiag open the door leadıng Paradise. Nor did we embrace eneu in our dseaues the pair of fut breasts or seductine niples of a women. Having done nothing for the present or the nest wasbd. We are only like an as emeant to hew down the wood of our mothers youth.

भोगान भुक्ता वयमेवभुक्त, ।
स्तपौनतप्त वयमेवतप्तः ।।
कालोनयानों वयमेवयाता, ।
स्तृष्णानजीर्णा वयमेवजीर्णाः ।।१।।

विषयों को हमने नहीं भोगा किंतु विषयों ने ही हमारा भुगतान कर दिया, हमने तप नहीं किया किन्तु तप ने ही हमको तपाडाला काल खतम नहीं हुआ किन्तु हमारा ही खातमा हो चला, तृष्णा का बुढ़ापा नहीं आया किंतु हमारा ही बुढ़ापा आ गया हमने बहुत भोगभोगे परन्तु भोगों का अन्त नहीं आया हमारा ही अन्त आ गया काल या समय का अन्त नहीं आया किन्तु हमारा ही अन्त आ गया जो कार्य हमको करना था वह कर न सके हमारी आयु समाप्त हो गई संसार के जंजालों में फँस कर हमी तप गये, हमारी तृष्णा कम नहीं हुई कहा है कि:—

वलिभिर्मुखमाक्रांत पलितैरंकितं शिरः ।।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णै कातरुणायते ।।१।।

बुढ़ापा आ गया क्योंकि चेहरे का चमड़ा सूख गया है झुर्रियां पड़ गई हैं रङ्ग रूप हवा हो गया हाथ पैर शिथिल हो गये किसी काम के योग्य नहीं रहा परन्तु तृष्णा नहीं मिटी न उसका बल घटा उलटी वह तेज हो रही है महात्मा सुन्दरदास ने कहा है:—

नयनन कीपलहीपलमें, छणआधि घरीघटिकाजुगई है
आमगयो जुग जामगयो, पुनिसांझगई तबरातभई है
आजगई अरु कालगई परसों तरसों कछु औरठई है
"सुंदर"ऐसेही आयुगई तृष्णादिन ही दिन होतनई है

आज सारा संसार तृष्णा के फेर में पड़ा हुआ है अमीर और गरीब सभी इसके बन्धन में बन्धे हैं गरीबों की अपेक्षा धनिकों की तृष्णा अधिक है धनी हमेशा निन्नानवे के फेर में पड़े रहते हैं निन्नानवे होने पर सौ पूरे होने की फिक्र पड़ती है हजार होने पर दस हजार की दस हजार होने पर लाख की लाख होने पर करोड़ की फिक्र लगी रहती है इसी तृष्णा में मनुष्य रोगी और बूढ़ा हो जाता है परन्तु तृष्णा न तो रोगी होती है और न बूढ़ी होती है और भी कहा है कि:—

अँगँगलितँ पलितं मुंडं दंतं विहीनं यातं तुडं।
कर धृतकँपित शोभितदड तदपिनमुंचत्याशाभंडं

अङ्ग शिथिल हो गये बुढ़ापा में सिर के बाल सफेद हो गये मुंह में दांत न रहे हाथ में लकड़ी लिये हुये शरीर कांपता है परन्तु तो भी मनुष्य आशा रूपी पात्र को नहीं छोड़ता है, हम किराये की मोटर पर सवार होकर कहीं जाते हैं रास्ते में कोई सज्जन बातें करने के लिये रोकते हैं। परन्तु उन समय उनसे हम अच्छी तरह बातें नहीं करना चाहते हैं कारण हमारी दृष्टि मोटर चारजिङ्ग पर लगी रहती है यह पैसे की उपयोगिता समझने का नमूना है, प्रत्येक मिनट के दो आने पैसे से अधिक हम समय की उपयोगिता नहीं समझते हमारे लिये उचित यह है कि जैसे मोटर में बैठे हुये हमारा मन पैसे में लगा रहता है। उसी प्रकार संसार का प्रत्येक काम करते हुये अपने असूल्य समय को भगवान के स्मरण पूजन, में प्रत्येक क्षण लगाते रहना चाहिये यही समय का सदुपयोग है; किन्तु खेद की बात है कि हम लोग भगवान जिनेश्वर की भजन की कीमत कौड़ियों के बराबर भी नहीं करते हैं, मान लिया जाय १ पुरुष साल भर में ८१००) कमाता है यह रोजगार छोड़कर यदि भजन करे तो उसका भजन कौड़ियों से सस्ता पड़ता है वार्षिक ८१००) के हिसाब से १ महीने के ६७५) एक दिन के २=॥) और एक घन्टे के ॥≡) होते हैं एक मिनट का एक पैसा होता है एक पैसे की अधिक से अधिक साठ कौड़ी समझी जांय और भगवान का स्मरण एक मिनट में कम से कम १२० बार किया जाय यानी एक सेकंड में दो बार किया जाय तो भी कौड़ियों से सस्ता पड़ता है तब आठ हजार एक सौ कमाने वाले सालाना, भजन की परता कौड़ियों से मंदी पड़ती है फिर हजार पांच सौ सालाना कमाने वालों की तो गिनती ही क्या है, कांचन कामिनी मान बड़ाई की प्रतिष्ठा में फँसकर जो लोग अपने असूल्य समय को बिताते हैं उसके अतिरिक्त में फँसा हुआ तो भी मनुष्य अनेक प्रकार के अनर्थ करके धन कमाता है धन के कमाने और उसकी रक्षा करने में बड़ा परिश्रम और कष्ट होता है उसके खर्च करने में भी कम दुःख नहीं होता है फिर धन को त्याग करते समय तो किसी २ को प्राण वियोग के समान दुःख होता है जैसे निर्धन आदमी धन कमाने की चिंता करता है और ऋणी आदमी ऋण चुकाने की चिंता करता है वैसे ही धनी आदमी धन-कमाने की चिंता करता है वस्तुतः धन

कमाने की लालसा मनुष्य का अधपतन करने वाली है इसी प्रकार स्त्री सङ्ग की इच्छा उससे बढ़कर आत्मा का पतन करती है इसलिये जीव को बार २ गुरुदेव सम्बोधन करते हैं। कि सदा न फूले तोरई सदा न सावन होय। सदा न जीवन थिर रहे सदा न जीवे कोय ॥१॥ सदा तोरई नहीं फूलती सदा सावन नहीं रहता सदा जीवन नहीं रहता न थिर सदा रह सकता है। कहा है:—

रहती है कब बावरी जवानी तमाम उम्र।
मानिंद बू ये गुल इधर आई उधर गई ।१॥

यौवन अवस्था की बहार उम्रभर थोड़ी ही रहती है, यह तो फूल की सुगंध की तरह इधर आई और उधर चली गई, इसी समान लक्ष्मी भी इसी तरह है लक्ष्मी को चंचला भी कहते हैं लक्ष्मी ठीक उस चपला की तरह है जो क्षण में चमकती है और क्षण भर में बादल के भीतर छिप जाती है, अनेकों ने इस धन को मन के विचारों की तरह क्षण स्थायी और वे जड़ कहा है यह सदा किसी के पास नहीं रहता है तीन पीढ़ी से अधिक तो धन एक परिवार में रहते हुये किसी ने नहीं देखा है आज जो धनी है। कल वही निर्धन हो जाता है आज जो हजारों को भोजन देता है वही कल दूसरों के द्वार पर अपने भोजन के लिये भटकता फिरता है, आज जो राजा है कल वही रंक हो जाता है आज जो बिना सवारी के नहीं चल सकता है कल वहीं नंगे पैरों घूमता फिरता है आज जिसकी आज्ञा पालने में हजारों दासी दास खड़े रहते हैं, वही कल दूसरे की आज्ञा पालने के लिये खड़ा होता है, सारांश यह है कि यह धन वैभव न किसी के पास सदा रहता है और न रहेगा परन्तु फिर भी लोग इसे छोड़ना नहीं चाहते हैं इसलिये मनुष्य कामिनी कंचन, मान प्रतिष्ठा की झूठी बढ़ाई में पड़कर अपने अमूल्य समय को भगवत् भजन में न लगाकर व्यर्थ नष्ट कर देना चाहते हैं कहा है।

ऐसे मंहगे मोल का एक स्वास भी जाय ॥
तीन लोक नहीं पटतरे का धूरि उड़ाय ॥

मनुष्य के जीवन का समय बहुत अमूल्य है, एक स्वास के ऊपर सौ सौ रूपया खर्च करने पर भी एक स्वास नहीं बढ़ सकता है, रू० खर्च करने से समय मिल जाता तो राजा महाराजा कभी नहीं मरते, पैसे तो दूर रत्नों के मोल पर भी मनुष्य के जीवन का समय नहीं मिल सकता है इसलिये जो ऐसे अमूल्य समय को खोवेगा। उसे आगे चलकर बहुत पश्चाताप करना पड़ेगा इस संसार में सम्पूर्ण पदार्थ क्षण भंगुर देखते हुये परिवर्तनशील, और नाश को प्राप्त होते हुये हमें चेतावनी दे रहे हैं परन्तु हमको चेत नहीं होता है, घड़ी टिकटिक शब्द करके हमको याद दिलाती है कि समय बीता जा रहा है परन्तु फिर भी हम ध्यान नहीं देते हैं।

निर्मलकुमार पदमचन्द जी जैन सुमेरगंज निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छुपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख २४-८-५३ दिन सोमवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में शरीर रूपी खेती को ज्ञान रूपी जल से सींचने का उपाय बतलाते हुये कहाकि:—
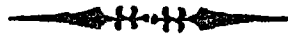
प्रत्येक मनुष्य को जिन्हें सुख चाहिये परमानन्द खेती करने की उन्हें आवश्यकता है, जब तक मनुष्य अपने शरीर रूपी खेत की ठीक तौर से मरम्मत नहीं कर लेता है तब तक जीवन परयन्त अन्न खाने को नहीं मिल सकता है इसलिये प्रत्येक जीव को शरीर रूपी खेत में गुरु रूपी बीजाक्षरों को बोना चाहिये, समय २ पर उपदेश रूपी पानी देना चाहिये, इसमें प्रमाद नहीं करना चाहिये, इस पर एक उदाहरण देने से सबको ठीक विदित हो जायगा।

गुरुदेव ने कहा:—एक बार राजपूताने में अकाल पड़ गया था एक वणिक अपना स्थान छोड़कर अपने मित्र किसान के पास मिलने के लिये बहुत दूर चला गया किसान ने पूछा भइया वणिक इतनी दूर चलकर कैसे आये? उसने कहा मेरे यहां अकाल पड़ा हुआ है लोग दाने दाने को तरस रहे हैं और कितने ही भूख से तड़प कर प्राणों को छोड़ रहे हैं व्याकुल हो कर मैं आपके पास परिवार सहित आगया हूँ राजपूताने के वैश्य ने अपनी बात सच्ची अपने मित्र से बता दी। अपने मित्र के पास अन्न का ढेर देखकर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था, किसान ने कहा कि आप यहां आगये तो बड़ा अच्छा किया अब यहां आनन्द से रहिये, वणिक वैश्य ने कहा कि आपके यहां तो अन्न के ढेर लगे हुये हैं परन्तु हमारे यहां तो अन्न किसी भाग्यशाली ही को मिलता है वहां तो एक एक दाने के लिये कौओं और चील की तरह छीना झपटी हो रही है, वैश्य ने इस प्रकार स्थिति स्पष्ट करदी किसान ने कहा कि यहां तो पुण्योदय से कोई कष्ट अन्न का नहीं है, यहाँ कोई भी आ जाय तो उसके लिये अन्न की कमी नहीं है आपता हमारे मित्र हैं आपके लिये तो सब कुछ आपका ही है यहां आप आ गये बड़ा अच्छा किया किसान बड़ा अनुभवी और चतुर था, मित्र ने कहा कि सभी वस्तुयें हमारी हैं यह है परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि इतनी अन्न राशि आपके पास आई कैसे? वणिकने आश्चर्य

चकित होकर पूछा, किसान मित्र ने कहा कि हमारे यहाँ बराबर खेती होती रहती है उसी का यह फल है किसान मित्र ने वैश्य मित्र का समाधान किया कि आप भी खेती करने लगो तो आपके पास भी अन्न के ढेर लग जायंगे, बड़ी सुन्दर बात है बणिक ने कहा खेती के काम में लग जाऊँगा परन्तु मेरे पास एक सहस्र रुपये हैं इतने रुपयों से क्या खेती का काम किया जा सकता है ? किसान मित्र ने कहा कि एक हजार रुपया कम नहीं है। इतने रुपयों से खेती का काम आप बड़ी सुन्दरता के साथ कर सकते हैं। मेरा पूरा सहयोग आपके लिये रहेगा ही, किसान मित्र ने सहानुभूति पूर्ण शब्दों में कहा वणिक ने कहा कि मुझे तो इसका किंचित भी ज्ञान नहीं है आप जैसा उचित समझें वैसा करें अपनी समस्त पूँजी बणिक ने किसान के हाथ में देकर कहा, तब बणिक ने किसान के कहे अनुसार खेती प्रारम्भ किया, देखिये सब गेहूँ तो मिट्टी में मिलकर नष्ट होगये, एक एक दाना फूट गया अत्यन्त निराश होकर बणिक ने किसान से कहा, किसान ने मित्र की पूँजी से बीज का प्रबन्ध करके हल चलवा दिया था, बीज बो दिये गये थे पर अनुभव हीन बणिक यह सब देखकर चिंतित हो रहा था, दो तीन दिन भी नहीं बीते थे कि वह जाकरखेतमें खोदकर गेहूँ के दाने देखने लगा उसे बहुत से बीज अंकुरित देखे इसपर उसने समझा कि मेरे सारे रुपये मिट्टी में मिल गये, अत्यन्त दुःखी होकर मित्र से उपयुक्त बात कही तब किसानने जाकर देखा, और कहा कि आपके खेत में अंकुर निकलना शुरू हो गया है आप किसी प्रकार की चिंता न करें बीज के लक्षण अच्छे हैं इस प्रकार का आश्वासन दिया, मुझे तो धन और श्रम का होने पर भी मुझे कोई लाभ होता दिखाई नहीं देता इस तौर पर बणिक ने अपनी कथा स्पष्ट कर दिया किसान ने कहा कि प्रारम्भ में ऐसा ही होता है आप निश्चिंत रहिये आपकी खेती बड़ी सुन्दर हो रही है ऐसा बड़े प्रेम से कहा पहिले जो वैश्य चुप था उसका कारण यह था कि उसकी सब पूँजी खतम हो गई थी, कर ही क्या सकता था, जब गेहूं के पौधे कुछ बड़े हो गये तो बणिक ने देखा कि मेरे खेत में केवल घास ही घास दिखाई देती है मेरा सारा रुपया व्यर्थ चला गया मेरी तो बड़ी हानि हुई थोड़े दिनों में फिर किसान से कहा, उसने समझा था कि गेहूँ के पौधे घास है घबड़ाया हुआ किसान के खेत पर गया पर उसे खेती देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई तब मित्र से कहने लगा कि आपका खेत तो आस पास के सभी खेतों से अच्छा है, किसान ने हतोत्साह मित्र का भ्रम निवारण किया आप समझ लें कि आप के पास गेहूं का विशाल ढेर लगने वाला है पर इस बात का ध्यान रखें कि यह पौधे सूख न जावें, कोमल पौधों का जीवन पानी है इसकी व्यवस्था शीघ्र आप कर लें इसके लिये एक कुंआ शीघ्र ही खोद लीजिए साथ ही चारों ओर खेत को कांटों की बाढ़ से बन्द कर दीजिये, नहीं तो चारों ओर से पशु आकर चर जायंगे खेत की रख वाली आप को सावधानी से करनी होगी, बणिक ने कहा कि मैं आपकी प्रत्येक आज्ञा का शब्दशः पालन करूँगा और ऐसा ही किया कुंवा खुदवाकर सिंचाई किया, बीच ही में पुण्योदय से बादलों

ने भी जल वर्षा की पौधे बढ़ने लगे, पौधों के बीच में जो घास है उसे एक एक करके निकाल डालिये। यह घास गेहूँ की वृद्धि में बाधक है एक दिन किसान खेत पर आकर प्रेम भरे शब्दों से वैश्य को आदेश दिया वैश्य ने वैसा ही किया। गेहूँ के दाने तो होगये पर अभी तो सब के सब कच्चे ही हैं, माथा का पसीना पोंछते हुये वणिक ने किसान बन्धु से कहा वह खेत से दौड़कर आया था और जोर से हांफ रहा था, किसान के कहे अनुसार वणिक ने सम्पूर्ण घास निकाल दी इसका परिश्रम भी अतुलनीय था। गेहूं में फल भी लगे थे पर इतने दिनों के बाद भी सबके सब कच्चे ही थे, खेत के ज्ञान से शून्य होने के कारण वह गरीब घबरा गया था, उसने सोचा कि रुपये के साथ पेड़ा चोटी का पसीना भी बेकार चला गया उसने दो तीन फलियां भी किसान के सामने रख दिया जो साथ में लाया था तब किसान ने देखा और कहा कि यह सब गेहूँ के दाने आपके बहुत पुष्ट हैं और यह सब जल्दी ही पक जायँगे अब बहुत विलम्ब नहीं होगा; घबड़ाइये नहीं और किसी प्रकार का विचार न कीजये आपके घर में गेहूँ और भूसा का ढेर लग जायगा, किसान ने कहा पक्षी इत्यादि आकर गेहूँ की बाली खा जाते हैं अतएव पक्षियों से अच्छी तरह रक्षा करना नहीं तो पक्षी सारे खेत का नाश कर डालेंगे। वणिक मित्र ने कहा कि मैं आपका कृतज्ञ हूँ मेरे आनन्द की सीमा नहीं है मेरे घर गेहूं का ढेर लग गया है किसान ने कहा कि यह तो आपके पुण्य और श्रम का फल है, आप पक्षियों के कलरव पर ध्यान न देकर पक्षियों को उड़ाने में तत्पर रहते थे और खूब रक्षा किया था, वणिक नत मस्तक होगया उस की आकृति पर आनँद प्रगट हो रहा था, गुरु देव ने कहा, किसान का और खेती का उदाहरण किस लिये दिया गया है यह आप लोग समझ गये होंगे इसे परमार्थ विषय में इस प्रकार घटाना चाहिये कि सच्चे सुख की प्राप्ति के लिये साधन करने वाले जिज्ञासु व्यक्ति को अकाल पीड़ित वैश्य समझना चाहिये साधक की साँसारिक कष्टों की ज्वाला से उत्पन्न सच्चे सुख की अभिलाषा को अकाल पीड़ित वैश्य की भूख के ज्वाला की अन्न की आवश्यकता समझना चाहिये, महात्मा को राजपूताने में रहने वाले वैश्य का किसान मित्र समझना चाहिये, वैश्य का राजपूताने से जो अपने मित्र के पास जाता है वही साधक का अपने घर से आश्रम में सद्गुरु के पास जाना है, मित्र के पास जाकर वैश्य जो अपने कष्ट की बात कहता है यही जिज्ञासु को अपना दुःख सद्गुरु के पास निवेदन करता है। वैश्य का जो सम्पूर्ण पूँजी किसान मित्र को सौंप देता है यही साधक का अवशेष समय सद्गुरुओं की संगति में लगाता है मित्र के कहे अनुसार जो धनका व्यय करता है, यही सद्गुरु की आज्ञानुसार समय का सदुपयोग करता है। किसान मित्र को जो जमीन और बीज का प्रबंध करवा देता है, इसको सद्गुरुओं का समय का सदुपयोग करने की शिक्षा देना है, खेती के लिये जो अपने सुख का त्याग करता है, वह परमानन्द की प्राप्ति के लिये सांसारिक सुखों का त्याग करता है बीज का जो खेत में बोता है

इसको सद्‌गुरुओं द्वारा प्राप्त बीज मंत्रों का हृदयमें धारण करना है, खेती करने से बीजों में अँकुर फूटने पर वे समझी के कारण निराश और दुःख मिलता है, उसको साधन काल में होने वाली निराशा, और तज्जनित समझना चाहिये, वैश्य का जो भ्रम से पौधों को घास समझता है यही साधन काल में उन्नति होने पर भी साधन में परिश्रम अधिक होने के कारण उसे भ्रम से साधन नहीं समझता है । मन और इन्द्रियों के समय को खेत की बाड़ समझना चाहिये अध्यात्म विषय को सांसारिक स्वार्थी मनुष्यों के समार्क में खर्च न करना ही पशुओं से खेत को बचाता है । भगवान की गुण, स्तुति, दान, पूजा संयम, तप इत्यादि अभाव सहित सत्संग स्वाध्यान को खेत को कुवां खोदकर सीचते रहना चाहिये, अपने आप सत्संग प्राप्त होने और ध्यान का अभ्यास चलने को समय स्वतः वर्षा हो जाना समझना चाहिये, अर्थात् सत्संग करके उपदेश रूपी पानी को ज्ञानरूपी खेत में सींचता है पौधे के बीच की जो घास हटाना है वह भीतर की आत्मा कल्याण (परमानन्द में वाधक) झूँठ, छल, कपट इत्यादि दुर्गुण व दुराचारों को दूर करता है, परमात्मा के ध्यान की जमावट को यहां गेहूँ का फलना तथा स्वार्थी मनुष्यों के द्वारा की जाने वाली सधाक की स्तुति पूजा, कीर्ति, मान बड़ाई इत्यादि करने वाली पक्षियों का कलरव समझना चाहिए, साधन परिपक्व होने के लिये स्तुति कीर्ति करने वालों को खेत से चिड़िया हटाने को समझना चाहिये, एवम् सम्पूर्ण दुःखों का अभाव होकर, परमानन्द स्वरूप की प्राप्ति हो जाने को गेहूँ को पक जाने पर उसका ढेर लग जाना समझना चाहिये कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान की पूजा, अर्चा जो हम साधन करते हैं और गुरू का उपदेश सुनते हैं पर फली भूत क्यों नहीं होता है, अज्ञानी जीव संसारमें इसलिये दुःखी हैं कि वह परमात्मा के स्वरूप को नहीं जानता है जब तक सद्‌गुरु किसान के पास जाकर परमानन्द-खेती का अनुभव ठीक से नहीं करेगा तब तक सुख नहीं मिल सकता है मनुष्य के पास उत्तम शरीर रूपी खेती मौजूद है परन्तु उसका सुधार करना नहीं जानता है इसलिये खेती खराब हो रही है अनादि काल से इसमें ज्ञान रूपी हल न चलने के कारण रागद्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया लोभ, कषाय इत्यादि घास जम गई । परमानन्द रूपी पौधे के वीच में, तब इसको स्थिर चित्त से सद्‌गुरु रूपी किसान परमानन्द रूपी बीजा बोने के लिये दिया है, वोने के बाद तुरन्त ही गेहूँ की इच्छा करता है, परन्तु सद्‌गुरु रूपी किसान कहते हैं कि घबराओ मत उपदेश रूपी पानी से सिंचन करो शरीर रूपी कुंआं खोदकर ज्ञान रूपी पानी से सिंचन करो तब फसल बहुत अच्छी होगी घर में परमानन्द रूपी अन्न का ढेर लग जायगा और तुमको कभी अकाल का सामना नहीं करना पड़ेगा जिन्दगी भर अपने घर में बैठ कर मनमाने सुख का अनुभव करेगा ।

कस्तूरचन्द सुपुत्र ला० नेमिदास जी जैन टिकैतनगर ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख २५-८-५३ दिन मंगलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में शिष्य द्वारा कियेगये प्रश्नोत्तर में जीवके पुण्य पाप का भेद बतलाते हुये कहाकि:—

कोई शिष्य गुरुदेवसे प्रश्न करता है, कि हे भगवन! संसार में यह जीव बराबर भटक रहा है और प्रायः एक जीव दूसरे जीव के द्वारा सताये जाते हैं तो इसका क्या कारण है पाप पुण्य का भेद बतलाइये।

प्रश्न—धनवान कौन पुण्य से होता है और धन कैसे मिलता है?

उत्तर—इस जीव ने पहिले भवमें धन देकर दूसरे जीव का बहुत उपकार किया था और चार प्रकार का दान दिया था तथा दीन दुखी निर्धन जीवों की रक्षा किया था और पर जीवों को सहायता पहुँचाई थी इसलिये उसे धन मिला है।

प्रश्न—पुत्र हीन कौन पाप से होय हैं?

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि पूर्व जन्म में दूसरे के पुत्र को देखकर तुमने सहन नहीं किया था दूसरे के पुत्र हुआ सुन करके मनमें दुष्ट भाव किया था तथा परके पुत्र को अनेक प्रकार के कष्ट दिया था इसलिये इस पापके कारण पुत्रहीन होता है।

प्रश्न—किस पुण्य कर्म से पुत्र की प्राप्ति होती है?

उत्तर—पर जीवों को पर के पुत्र को देखकर मनमें प्रसन्न होय, तथा पर के पुत्र हुआ जानकर मन में खुशी होय, इसी पुण्य से पुत्र की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—हे गुरुदेव कहो तो इस भव में जीव की कीर्ति कैसे होती है?

उत्तर—पूर्वभवमें जिन्होंने तीर्थंकर, चक्रवर्ती इत्यादि महान २ व्यक्तियों की स्तुति किया हो और उनकी कीर्ति से प्रसन्न हुआ हो और माता पिता की सेवा तथा उनकी कीर्ति का प्रचार किया हो दूसरे की कीर्ति को देखकर मन में खुश हुआ हो तो उसको कीर्ति प्राप्त होती है।

प्रश्न—हे गुरुदेव कहो कि संसार में कोई जीव अपने कुटुम्ब परिवार सहित सुख से काल व्यतीत करते हैं इसका क्या कारण है?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा, अन्य कुटुम्ब

वान को पर जन्म में देखकर खुश होना तथा विनय संयुक्त कुटुम्ब को देखकर प्रसन्न हुआ हो तथा अन्य कुटुम्बियों को सुख साता पहुँचाया हो तो इस पुण्य के उदय से कुटुम्ब सहित उसका जीवन सुख मय व्यतीत होकर आनन्द मिलता रहता है

प्रश्न—हे गुरुदेव मनुष्य रोगी किस पाप से होता है ?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा कि पूर्व भव में औषधि दान नहीं दिया था दूसरों को देखकर घृणा की थी पर के शरीर को दुःखी देखकर या रोगी के शरीर को देखकर घृणा किया और खुशी हुआ तथा दूसरे को रोग हो जाने की भावना की इत्यादि पाप के उदय से शरीर में रोग होता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव यह जीव निरोग शरीर वाला किस पुण्य से होता है ?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा जो जीव दीन दुखी जीवों को औषधि दान देता है और उनके शरीर के रोग को दूर करने का प्रयत्न करता है प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिकय भाव रखता है वही जीव इस भव में निरोग शरीर वाला होता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव जी यह जीव क्रूर परिणामी किस पाप के उदय से होता है ?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने बताया कि जो जीव नरकों के निवास से बहुत काल दुख भोग कर निकला हो सो नर्क का आया प्राणी पूरब पाप से महा क्रोधी दुराचारी क्रूर परिणामी होय है तथा पूर्व भव में मनुष्य आयु का बन्ध कर पीछे कुसङ्ग का निमित्त पाय महा क्रूर परिणामी हिंसा करता होय, वे जीव, पूर्वली वासना सहित दुराचारी होय, क्रोधी होय, तथा परभव ताका बुरा होनहार होय इत्यादि कर्म चेष्टा से क्रूर परिणामी होय है।

प्रश्न—हे गुरुदेव, कहिये सज्जनों की संगति किस पुण्य के उदय से होती है ?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा पूर्वभव में भली चेष्टा से सभी जीवों पर दया भावना पर जीवों को साता कारी उपदेश दिया हो प्रत्येक प्राणी को हित का मार्ग, और बड़े पुरुषों की सेवा, पर जीवों को हितोपदेश देने से सज्जनों की सङ्गति प्राप्त होती है।

प्रश्न—हे गुरुदेव यह बताओ कि इस जीव को किस पुण्य के उदय से समता स्वभाव प्राप्त होता है ?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा कि भव्यजीव, मुनि, श्रावक, गृहस्थ की मुद्रा को देखकर बार-बार खुशी होकर, तथा पापी दुष्ट जीवों को देकर क्रोध नहीं किया तथा दूसरे जीवों की कुरीति देखकर उनको दुःख पहुँचाने की चेष्टा न किया हो आपत्ति आने पर दया ही किया हो तथा सँसारी जीवों की बिडम्बना देखकर सँसार से उदास भाव रक्खा हो तथा जगत की माया प्रपँच राग-द्वेषादि दुख को देखकर क्रोध माया आदिक भाव न किया हो, मन्द कषायी रहा हो इत्यादि परिणामों से समता स्वभाव और शांति प्राप्ति होती है।

प्रश्न—हे गुरू कहो कि इस सँसार में जीव किस पुण्य के उदय से धर्मात्मा होता है।

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा कि जो पहिले भव में धर्मात्मा जीवों को धर्म सेवन करता देख

कर सुखी हुआ हो, मैत्री भाव तथा समता भाव रखा हो तथा अनेक जीवों के ऊपर दया भाव रखा हो धर्मात्मा को देखकर हर्षित हुआ हो दया धर्म को पालन करने से तथा अन्य किसी धर्मावलम्बी को देखकर द्वेष न किया हो, दया धर्म के अनेक भेद हैं; कृत-कारित, अनुमोदना, करना, करवाना; करते देखकर अनुमोदना करना इन भेदों को जानकर जीवों पर दया का वर्ताव किया हो इत्यादि कर्म से यह प्राणी धर्मात्मा होता है।

प्रश्न—हो गुरुदेव कहिये तप धर्म का लाभ कौन कर्म से होय है ?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा जिस जीव ने पर भव विषे और धर्मात्मा जीव को तप करते देख हर्ष माना होय तथा तपस्वी जीवन की सेवा चाकरी किया होय तप को उत्कृष्ट सुख दीना जानि, ताके करने की तीव्र अभिलाषा करी होय इत्यादि तप की अनुमोदना के फल से भवांतर में तप धर्म का लाभ मिले है।

प्रश्न—श्री गुरु ने कहा, जो जीव पर कूँ भगवान की पूजा, भक्ति करते देख नृत्य करते देख अनुमोदना करी होय, अपने को प्रभू की पूजा करने की बहुत अभिलाषा करी होय तिस कारण से भगवान की पूजा करने के भाव होय हैं।

प्रश्न—हे गुरो कहिये इस प्राणी को संयम का लाभ कौन पुण्य से होय है ?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा कि जिन जीवों ने अन्य जीवन को नेम आखड़ी करते, तथा दधि दुग्धादि रस का त्याग करते देख तथा ताम्बूल वस्त्रादि परिग्रह नेम करते देख तथा दया भाव सहित प्रवर्तें देख जिनकी प्रसंशा करी तथा अन्य संयमी को देख आपके संयम करने की अभिलाषा भई होय इत्यादिक संयमरूप भावनि तैं संयम का लाभ होय है।

प्रश्न—धर्म अङ्ग का लाभ कैसे होय ?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा कि किसी जीव को सिद्ध क्षेत्र की यात्रा करने का गमन देख, सिद्ध क्षेत्र की बन्दना को संघ जाता देखि तिनकी अनुमोदना करी होय तथा आप सिद्ध क्षेत्र की यात्रा करने की अभिलाषा करी होय तथा सिद्ध क्षेत्र की यात्रा करने वाले की सहायता कर सहायता उपजाया होय इत्यादि पुण्य भावनामें भवांतर विषे सिद्ध क्षेत्र यात्राका लाभ बहुत होय है और पर भव में आचार्यनकूँ धर्मोपदेश देते देख जिनधर्मी पुरुषन का उपदेश सुनि जिनके ज्ञान शांति भावना की प्रसंशा करी होय धर्म के दाता की भक्ति कर आनन्द माना होय इत्यादिक शुभ भावन तैं धर्मोपदेश देने का उत्तम ज्ञान पाय अपना तथा अन्य जीवन का कल्याण करे इत्यादि कर्म से धर्मात्मा धर्म का लाभ उपजावे है।

प्रश्न—हे गुरुदेव इस जीव को भय की चिंता कैसे होती है ?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा कि जीव ने पर जीव को परभव में अनेक प्रकार के भय उत्पन्न किया होय और उनके धन नाश करने के लिये भय दिखाया होय घर लुटाने का भय दिखाया होय तथा मारपीट करने का भय दिखाया होय घर के मनुष्य को पकड़ने का भय दिखाने से तथा चोरी करा लेने का भय दिखाना, रङ्क दुखी जीवों का हास्य करने से इत्यादि कर्मों के करने

से जीव को हमेशा भय से चिंता रहती है।

प्रश्न—हे गुरुदेव यह जीव हमेशा अभय किस पुण्य के उदय से रहता है।

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा कि पर भव में दीन दुखी जीवों को अभयदान देने के कारण अथवा किसी जीव को दुःखी देखकर उनका दुख दूर करनेके कारण अथवा उनको भय रहित करने से त्रस-स्थावर जीवों की दया करने से तथा प्रत्येक जीव को सुख साता आराम पहुँचाने तथा भयभीत जीवों पर दया करने से अभय रहित जीवको देखकर उसका भय निवारण करने अभय जीवों को देखकर खुश होने से अभय दशा प्राप्ति होती है।

प्रश्न—हे गुरुदेव मनुष्य का चित्त उदार किस पुण्य से होता है?

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि सत्पात्र को दान देने से सत्पात्र की सेवा करने से उनका अनुमोदन करने दीन दुखी को करुणा दान देने से तथा दाता को देखकर प्रसन्न होने से तथा धर्म में दान उदारता पूर्वक खर्च करने से मनुष्य का परिणाम उदार होता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव यह जीव किस कर्म के उदय से सूम (लोभी) होता है।

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि दूसरे जीवों को दान देने मना किया होय, औरनि को धन खरचते दुख रूप चित्त किया होय तथा परभव में नाना दुख करि धन संचय किया होय उस धन को न आप खाय और न दूसरे को दान दे, धन जोड़ने की अभिलाषा रक्खे, अत्यन्त तृष्णा के भावनि करि मरण किया होय तथा दानी जीवन की निंदा करी होय इत्यादिक पाप भावन तैं अत्यन्त लोभी सूम होय है।

प्रश्न—हे नाथ यह जीव कौन पुण्य से पण्डित होता है?

उत्तर—गुरुदेव ने कहा कि परभव में जिस जीव ने विद्या दान दिया होय योग्य विद्वान पुरुषों की सेवा सुश्रुषा करी होय धर्म शास्त्र की विनय किया होय, अज्ञानी जीवों की संगति से अरुचि रही होय, दया धर्म के शास्त्रों का पठन, और मनन करने से उनका जर्णोद्धार करने से शास्त्र लिखवाकर वितरण करनेसे ज्ञान का प्रचार करने से शास्त्र का वेष्ठन बन्धनादि लगाने से शास्त्र का बराबर अभ्यास करने से मनुष्य पंडित विद्वान होता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव कहो कि मूर्ख किस पाप के उदय से होता है?

उत्तर—श्री गुरुदेव ने कहा जो पण्डितों का हास्य किया होय शास्त्र की अविनय किया होय शास्त्र पढ़ने में आलस्य किया होय धर्म शास्त्र चुराया होय वेष्ठनादि चुरा लिया हो अथवा उनकी विडम्बना किया हो इत्यादिक पाप भावना करने से मनुष्य मूर्ख होता है।

धर्मरत्न ला० हनोमानप्रसाद जी जैन बाराबंकी निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया।

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख २६–८–५२ दिन बुधवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में समाज के कुछ त्याग करने योग्य बातों के ऊपर कहा कि:—

भली और बुरी दोनों बातें समाज के ऊपर रहती हैं, कभी भली बढ़ती है तो कभी बुरी, परिवर्तन होता ही रहता है यह ठीक नहीं कि पुरानी सभी बातें बुरी होती हैं अथवा नई सभी बातें अच्छी होती हैं, अच्छी बुरी सभी हैं। मनुष्य को साहस के साथ अच्छी बातों को ग्रहण और बुरी बातों को त्याग करना चाहिये। जो मनुष्य मिथ्या आग्रह से किसी बात में अड़ जाता है उसका विकास नहीं होता है यही हाल समाज का है और हमारे जैन समाजमें भी इसी तरह अच्छी बुरी बातें पाई जाती हैं जो अच्छी बातें हैं उनके सम्बन्ध में कुछ कहना नहीं है जो बुरी हैं वह चाहे नई हों या पुरानी उन्हीं पर विचार करना है यहां संक्षेप में कुछ ऐसी ही बुराइयों का विचार किया जाता है। जिसका त्याग अध्यात्मिक और नैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से आवश्यक है।

रहन-सहन, समय, वातावरण, तथा स्थिति के अनुसार रहन-सहन में परिवर्तन होता है। परन्तु ऐसी कोई बात नहीं होना चाहिये जो धर्म तथा समाज के प्रति घातक हो, इस समय हम देखते हैं कि समाज का रहन-सहन पाश्चात्य ढङ्ग का बहुत तेजी के साथ होता चला जा रहा है, रहन-सहन बहुत खर्चीला होने से आर्थिक दृष्टि से बहुत घातक है, हमारी सभ्यता और सदाचार के विरुद्ध होने से आध्यत्मिक तथा नैतिक पतन का हेतु है, देखिये आज कल के रहन सहन पर एक उदाहरण दिया जाता है।

जूता पहिन कर घर में घुसना, खाना टेबुल पर छुरे कांटे से खाना, जूते कई जोड़े रखना, चर्बी मिश्रित साबुन लगाना, मलमूत्र के बाद मिट्टी के बदले साबुन से हाथ धोना, बिलकुल न धोने के समान है, फैसन के पीछे पागल रहना, बहुत अधिक कपड़े रखना, बार-बार पोशाक बदलना इत्यादि बातें आध्यत्मिक और नैतिक, तथा आर्थिक दृष्टि से हानिकर है, पाश्चात्य रहन-सहन में खड़े २ पेशाब करना, जूता पहिने हुये रसोई खाना, धार्मिक पतन का कारण है।

खान-पान की पवित्रता और संयम आर्य जाति के लोगों का प्रधान अङ्ग है आज इस पर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है, रेल में देखिये हर किसी का झूठा सोडावाटर (लेमन) पीना, हर एक का झूठा खाना आम तौर पर चलता है, इसमें अपवित्रता तो है ही, एक दूसरे की बीमारी तथा गन्दे विचारों के परमाणु एक दूसरे में प्रवेश करते हैं, होटल; हलवाई, चाट की दूकान पर खड़े २ खाना, जूते पहिनकर खाना, हर किसी के हाथ से खाना, मद्य, माँस, लहसुन, प्याज से मिश्रित भोजन बाजारू चाय तरह तरह के अपवित्र पानी आयसक्रीम, बरफ इत्यादि के खाने पीने में बहुत ही अपवित्रता आ गई है शोक की बात है कि निरामिष भोजी जाति में भी डाक्टरी दवाइयों के द्वारा होटल तथा पार्टियों के संसर्ग से मद्य, मांस का प्रचार हो रहा है। माँसाहारी की बुद्धि तामसी होती है, मांसाहारी के परिणाम अत्यन्त क्रूर हो जाते हैं, इसी प्रकार आज कल बाजार की मिठाई से भी बड़ा अनर्थ हो रहा है असली घी तो मिलना मुश्किल है ही है बनास्पति घी भी असली नहीं मिलता है उसमें भी मिलावट शुरू हो गई है, खोवा, बेसन, मैदा, चीनी आटा, तेल, मशाला भी शुद्ध नहीं मिलता है, हलवाई लोग तो दो पैसे के लोभ से कम दाम की चीजें बरतते हैं। स्वास्थ्य का ध्यान न दूकानदारों को है और न हलवाइयों को, होता भी कैसे, जब बुरा बतलाने वाले ही बुरी बातों का प्रचार करते हैं तो बुरी बातों से परहेज कैसे कर सकते हैं, आज जो अपने हाथों से अपनी हानि कर रहे हैं यही तो मोह की महिमा है, अन्याय से कमाये हुये पैसों का अपवित्रता मयी वस्तुओं से बना हुआ, अपवित्र हाथों से परोसा हुआ अपवित्र स्थान में रखा हुआ, मद्य, मांस संयुक्त, विशेष खर्चीला अस्वास्थ्य कर युक्त सड़ा हुआ व्यसन रूप अपवित्र और उच्छिष्ट भोजन उत्तम, कुली मनुष्यों के लिये सभी के लिये हानिकारक होता है इस लिये इस पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

वेष-भूषा सदा कम खर्चीला सुरुचि उत्पन्न करने वाला, संयम बनाने वाला होना चाहिये, आज ज्यों २ फैशन बढ़ रहा है त्यों २ खर्च भी बढ़ रहा है, सादा मोटा वस्त्र किसी को भी पसन्द नहीं आता है जो खादी पहनते हैं, उनमें भी एक तरह की बनावट आने लगी है, वस्त्रों में पवित्रता होनी चाहिये, विदेशी और मिलों के वस्त्रों में चर्बी की माँडी लगती है, यह बात सभी जानते हैं कि देश की हाथ की कारीगरी मिलों की प्रतियोगिता से नष्ट होती है और इसमें गरीब मारे जाते हैं जहाँ तक हो सके ऐसे अपवित्र वस्त्रों को त्याग कर देना चाहिये। विदेशी वस्त्रों का व्यापार देश की दरिद्रता का मुख्य कारण है और रेशमी वस्त्र जीवित कीड़ों को मारकर निकाला जाता है वह भी अपवित्र है और हिंसा युक्त है वस्त्रोंमें सबसे उत्तम हाथ से कती और बुनी हुई खादी ही सर्वोत्तम है। परन्तु इसमें फैशन नहीं आनी चाहिये, खादी हमारे संयम पालन और स्वल्प व्यय के लिये है फैशन और फिजूल व्यय के लिये नहीं है यदि यह भी फैशन और खर्चीली हो जायगी तो इस में भी अपवित्रता आ जायगी मिल से बने हुये वस्त्रों की अपेक्षा मिल के बने हुये सूत से हाथ करघों पर बने हुये वस्त्र अच्छे हैं। इसमें परि-

श्रम गरीबों की सहायता करना है और इसमें चर्बी नहीं लगती है, स्त्रियों के गहनों में भी फैशन का जोर है। आज कल असली सोने के सादे गहने प्रायः नहीं बनाये जाते हैं हल्के सोने और मोती के फैशनेबुल गहने बनाये जाते हैं, जिनमें मजदूरी अधिक लगती है मिलावट भी अधिक कर देते हैं। बेचने के समय बहुत कम दाम उठते हैं, पहिले स्त्रियों के गहने ठोस सोने के होते थे और विपत्ति के समय काम आते थे, यहबात तो प्रायः चली गई। इसी प्रकार फैशन होने से कपड़े ऐसे बनते हैं जो पुराने होने पर काम नहीं आते हैं ऐसे फैसनेबुल कपड़ों के बनाने में जो समय और अपार धन व्यय हो जाता है। वह सब व्यर्थ में चला जाता है। नई बहू बेटियों में तो फैसन इतना बढ़ गया है कि खर्च की तङ्गी होने पर भी फैशन बनाने की फिक्र बनी रहती है, साथ ही शरीर की सजावट, में लवेण्डर, क्रीम, पावडर इत्यादि इतने अधिक कीमती बरते जाने लगे हैं, कि एक व्यक्ति के पीछे जितने पैसे लगते हैं उतने ही पैसों में एक गरीब आदमी का काम आसानी से चल सकता है। इनके प्रयोग से अपवित्रता आती है, आदत बिगड़ती है, स्वास्थ्य बिगड़ता है, धर्म की दृष्टि से यह सभी चीजें त्याज्य हैं। सौंदर्यकी भावना में छिपी हुई काम की वासना रहती है जो स्त्री पुरुष आपस में सुन्दर दिखाना चाहते हैं, काम वासना के द्वारा अपना और समाज का बड़ा अपकार करते हैं।

रस्म-रिवाज में सुधार चाहने वाले सभाओं के द्वारा एक बुरी प्रथा मिटती है तो दूसरी और बुरी प्रथा आ जाती है, जब तक हमारा मन नहीं सुधर जाता है तब तक सभाओं के द्वारा कुछ नहीं हो सकता है, खर्च घटाने की सभाओं द्वारा बड़ी पुकार मची है, खर्च कुछ घटा भी परन्तु नये नये रिवाज इतने बढ़ गये कि खर्च पहले की अपेक्षा अधिक होगया है। दहेज की प्रथा बड़ी भयङ्कर है इस बात को सभी मानते हैं। सभाओं में इस प्रथा को बन्द करने के लिये बिल भी पेश होते हैं चारों ओर से पुकार भी होती है परन्तु यह प्रथा ज्यों की त्यों नहीं बड़े बड़े रूप में विद्यमान है इसका विस्तार जरा भी रुका नहीं है। साधारण गृहस्थ के लिये एक कन्या का विवाह करना मृत्यु की पीड़ा के समान है आज कल मोल तोल होता है दहेज का इकरार प्रथम हो जाता है तब सम्बन्ध होता है और पूरा दहेज न मिलने पर सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है। दहेज की प्रथा से माता पिता को अत्यन्त चिंतित देखकर अनेक देवियों ने अपनी हत्या करके समाज के इस बूचड़खाने में अपनी बलि चढ़ा दी है, इतना होने पर भी अभी यह पाप इतना बढ़ता जाता है कि जिसकी हद नहीं है। एक बार यह बात सुनने में आई थी कि राजपूताने में दहेज के भय से कन्याओं को जीते ही मार दिया जाता था। अभी भी बहुत सी समाजों में कन्या का तिरस्कार होता है उसके जीवन का मूल्य कुछ नहीं समझा जाता है बीमारी में उचित इलाज भी नहीं किया जाता है यहां तक कि कन्या का जन्म होते ही माता पिता रोने लगते हैं, दहेज की प्रथा ही इसका एक प्रधान कारण है। इस समय ऐसे धर्म भीरु सज्जनों की आवश्यकता है जो अपने लड़के की शादी में दहेज लेने से

इन्कार कर दें या लड़की वाला जो खुशी से दे वह लेवें, लड़के वालों के स्वार्थ त्याग से ही यह पाप रुकेगा अन्यथा बड़ी भीषण परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा, विवाहादि में शास्त्रीय प्रसंग को रखते हुये जहां तक हो सके कम से कम ऐसी रस्में रहनी चाहिये जिसमें सुरुचि और सदाचारयुक्त हो और कम से कम खर्च पड़े साधारण गृहस्थों के द्वारा आसानी से किये जा सकें, साधारण वस्त्र और अलंकार ऐसे हों जिसमें व्यर्थ व्यय न हुआ हो। सौ रु० की कीमत की चीज जरूरत पड़ने पर ८०) ९०) तो मिल ही जावे दश प्रति से अधिक घाटे की की चीजें देना तो आगामी दुःखों को निमन्त्रण देना है, इसके साथ ही चीजें अधिक न हों और फैसन से रहित हों, विवाहादि में वेश्यायों का नाच, आतिशबाजी, फुलवाड़ी, भाटों का स्वांग, स्त्रियों के गन्दे गाने, सिनेमा, नाटक, जुआ शराब, गन्दे मजाक सर्वाथा बन्द हो जाना चाहिये, जहां तक हो सके गांजा, सिगरेट, भांग शराब, सोडावाटर इत्यादि की मेहमानदारी बन्द होना चाहिये, सादगी और सदाचार का रक्षा हो ऐसा प्रयत्न वरातियों को स्वयम् करना चाहिये विवाहके अवसर पर भगवान का भजन गायन, कीर्तन करने में कोई हर्ज नहीं है इसी प्रथा को चलाना चाहिये यह बड़ी सुन्दर प्रथा है लड़कियों के विवाह भी बड़ी आयु में होने लगे हैं, बाल विवाह से बड़ी हानि हुई है परन्तु लड़कियों को युवती बनाकर ब्याह करना बहुत हानिकारक है, शास्त्रीय नियम के अनुसार विवाह योग्य कन्या की आयु १६ साल मानी गई है। परन्तु रजोदर्शन के पहिले ही विवाह होना चाहिये, युवती विवाह की प्रथा जिस तीव्र गतिसे बढ़ रही है उसे देखते भविष्य बहुत भयानक मालूम देता है। यही हाल हाईस्कूल के लड़के लड़कियों का है रजो दर्शन से पूर्व कन्या का और लड़के का १८ वर्ष की आयु में विवाह कर देना उचित मालूम देता है, अवश्य ही स्त्री पुरुष का संयोग तो रजोदर्श के पश्चात् ही होना चाहिये, नहीं तो धार्मिक हानि के अलावा स्त्रियों में हिस्टीरिया, क्षय, प्रदरादि की भयङ्कर बीमारी होकर उनका जीवन नष्ट प्रायः हो जाता है।

चारित्र संगठन और स्वास्थ्य—असंयम और अमर्यादित खान-पान, गन्दे साहित्य के कारण समाज का बुरी तरह ह्रास हो रहा है, बीड़ी, सिगरेट, पीना दिन भर पान खाते रहना दिन में ५-७ बार चाय पीना, भांग, तम्बाकू, चरस, गांजा का व्यवहार करना उत्तेजित पदार्थों का सेवन करना, विज्ञापनीय बाजीकरण औषधियां खाना, मिर्चा खटाई, मसाला, चाट मिठाई खाना कुरुचि उत्पन्न करने वाली कहानियां और उपन्यास पढ़ना, सिंगार के कवित्त, और कोकशास्त्र के नाम से प्रचलित ग्रन्थों को पढ़ना इन असद् विचारों को त्याग कर धर्म को ग्रहण करो

जैचन्द बाबूलाल जी जैन ने जनता प्रेस, बाराबर्की में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख २७-८-५३ दिन गुरुवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में पुनर्जन्म के बारे में जीव को समझाते हुये कहा कि:—
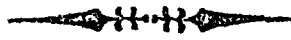
परलोक और पुनर्जन्म के बारे में जैनधर्म में जीव को पुण्य पाप के द्वारा अनेक प्रकार की गति प्राप्त करना है, कभी देव होता है, कभी मनुष्य होता है, कभी तिर्यंच होता है, कभी नारकी होता है इस प्रकार जीव अपने कर्मानुसार अनेक योनियों को धारण कर लेता है। यह जैनियों का मुख्य कर्म सिद्धांत है उसीप्रकार वैदिक धर्म में भी पुनर्जन्म को माना है, पुनर्जन्म को ईसाई और मुसलमान नहीं मानते हैं परन्तु थियासोफी सिद्धांत के तथा प्रेत विद्या के चमत्कारों ने जिसका इधर कुछ वर्षों में पाश्चात्य जगत में काफी प्रचार हुआ है इस ओर लोगों का ध्यान बहुत आकृष्ट हुआ है, अब लाखों आदमी अमेरिका और इङ्गलैंडमें ईसाई होते हुये परलोक में विश्वास करने लगे हैं, हमारे भारतवर्ष का प्रत्येक बच्चा इस सिद्धांत को मानता है और इस पर अमल करता है यही नहीं यह सिद्धांत हमारे जीवन के प्रत्येक अङ्ग के साथ मिल गया है, हमारा कोई धार्मिक ग्रंथ ऐसा नहीं है जिसमें परलोक के परोक्ष रूप से या प्रत्यक्ष रूपसे समर्थन न करता हो, इधर तो कई स्थानों में ऐसी घटनायें प्रकाश में आई हैं, कई अबोध बालक बालिकाओं ने पूर्व जन्म का हाल बतलाया है, आत्मा की उन्नति तथा जगत के धार्मिक भाव सुख शांति प्राप्त के लिये पाप से बचाने के लिये पुनर्जन्म का मानना आवश्यक है, आज संसार में मुख्यतया पाश्चात्य देशों में आत्म हत्या की संख्यायें दिनों दिन बढ़ती जाती हैं, आये दिन लोगों को जीवन से निराश होकर अथवा अस्पताल से दुखित होकर अपमान एवम् अपकीर्ति से बचने के लिये अथवा इच्छा की पूर्ति न होने के कारण दुख से डूब कर फाँसी खाकर; जलकर, विष खाकर, गोली खाकर, प्राण त्याग करने की बातें देखी और सुनी जाती हैं। इसका मूल कारण है आत्मा की अनश्वरता नहीं मानना और परलोक में पूर्ण विश्वास न करना। यदि हमें यह निश्चय होजाय कि हमारा जीवन इस शरीर तक ही सीमित नहीं है इसके

पहिले भी हम थे और अगाड़ी भी हम रहेंगे। इस शरीर का अन्त कर देने से हमारे कष्ट दूर न हो जायंगे बल्कि आत्म हत्या रूप घोर पाप करने से हमारा भविष्य जीवन और कष्ट मय हो जावेगा 'तो हम कभी आत्म हत्या न करें, अत्यन्त खेद है कि पाश्चात्य जड़ वादी सभ्यता के सम्पर्क में आने से आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवयुवकों में यह पाप घर कररहा है और इसकी घटनावें यहाँ भी देखने में आने लगी हैं, आत्म हत्या महा पाप है उसका फल, शूकर, कूकर से भी निंद है। देखिये श्रुतिईशोपनिषद् कहती है

असुर्या नामतेलोका अन्धेनतम सावृताः।
नास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्म हनोजनाः॥

अर्थात् वे असुर सम्बन्धी लोग आत्मा के अदर्शन रूप अज्ञान से आच्छादित है जो कोई भी आत्मा के हनन करने वाले हैं वे मरकर अनन्तर उसी में जाते हैं, संसार में जो पापों की वृद्धि हो रही है, झूठ, कपट, चोरी, हिंसा व्यभिचार अनाचार बढ़ रहे हैं, व्यक्तियों की भांति राष्ट्रों में भी द्वेष और कलह की वृद्धि हो रही है, बलवान निर्बल को सता रहे हैं, अनीति मार्ग को अपना कर नीति मार्ग को छोड़ रहे हैं लेकिन उन्नति भौतिक सुख को ही अपना ध्येय बना लिया है और उसी की प्राप्ति के लिये सब लोग प्रयत्नवान हैं इन्द्रिय लोलुपता बढ़ रही है भक्ष्याभक्ष्य का विचार उठता जा रहा है जीभ के स्वाद और आराम के लिये दूसरों के कष्ट की तनिक भी परवाह नहीं करते हैं, मादक द्रव्य का प्रचार अधिक बढ़ रहा है। घूसखोरी और बेईमानी उन्नति पर है, एक दूसरे के प्रति विश्वास कम हो रहा है इस के कारण मुकद्दमे बाजी बढ़ रही है, अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है। दंभ फैल रहा है इसका कारण है कि वर्तमान शरीर को ही जीवन मान रखा है इसके अगाड़ी जीवन नहीं है, इसलिये वर्तमान जीवन को ही सुखी बनाने के प्रयत्न में लगे हुये हैं, इसीप्रकार चारवाक् ने अपने सिद्धांत में इसी को पुष्ट करने के लिये कहा है किः—

यावज्जीवं सुखंजीवेत्, ऋणं कृत्वाघृतंपिबेत।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

जब तक जीओ सुख से जीवो, कर्ज लेकर भी अच्छे २ पदार्थों का भोग करो मरने के बाद क्या होगा किसने देख रखा है, इसी सर्वनाश मान्यता की ओर आज प्रायः सारा संसार जा रहा है यही कारण है कि वह सुख के बदले अधिक दुखों में फँसता जा रहा है। परलोक और पुनर्जन्म को न मानना ही इन दुखों का अवश्यंभावी फल है। आज हम इसी मान्यता के ऊपर कुछ चर्चा करते हैं। जैसा कि हमने ऊपर कहा है कि परलोक और पुनर्जन्म के सिद्धांत का सम्बन्ध परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से हमारे सभी शास्त्रों में समर्थन किया गया है, जैन सिद्धान्त से लेकर आधुनिक दर्शन वालों ने इस सिद्धांत की एक स्वर से पुष्टि की है। महाभारत, स्मृतियों आदि में इस विषयके इतने प्रमाण भरे पड़े हैं यदि उनको संग्रहीत किया जाय तो एक बहुत बड़ी पुस्तक बन जाय न तो इतना अवकाश ही है और न इसकी आवश्यकता ही प्रतीत होती है, और हिन्दू धर्म की गीतो उपनिषद, मनुस्मृति, योग सूत्रादि चुने हुये ग्रन्थों में बहुत से प्रमाण इसके मिलते हैं कि कंठापनिषद नचिकेत उपाख्यान इस सिद्धांत का

जीता जागता प्रमाण है, उपनिषद् का प्रथम श्लोक ही परलोक के अस्तित्व का समर्थन करता है नचिकेता ने देखा जब उनके पिता बाजश्रवस ऋृत्विजों को बूढी और निकम्मी गाय दान में दे रहे हैं तो उससे न रहा गया वह सोचने लगा कि ऐसी गाय देने वाले को आनन्द रहित लोक की प्राप्ति होती है, पीतानेका जग्घतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रयः आनंदानामने लोकास्तान सगच्छती निता दहत, अतएव पिता के उस काम को रोकने का प्रयत्न किया पर इसमें सफल न हो सका कुपित होकर जब से मृत्यु को सौंप देने की बात कही तो पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर यमलोक में चला गया, इसके बाद यमराज और उसके बीच में जो साम्यवाद हुआ है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है यमराज ने उसे तीन बर देने को कहा उसमें तीसरा वर मांगता हुआ नचिकेता यमराज से प्रश्न करता है कि—येयंप्रेते विचित्किसा मनुष्ये । ऽस्तीत्येके नायम स्तीतिचैके ॥ सतद्दियामनु शष्टस्त्वयाहं । वगणामेष वरस्तृतीयः ॥ १ ॥

अर्थात् मरे हुये मनुष्य के विषय में जो यह आशंका है कि कोई तो कहता है कि आत्मा नहीं रहता है और कोई कहता है कि आत्मा रहता है, इस सम्बन्ध में मैं उपदेश चाहता हूं कि जिससे मैं इस विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकूँ मेरे मांगे हुये वरों में यह तीसरा वर है। यमराज ने इस विषय को टालना चाहा नचिकेता से कहा किम् कोई दूसरा वर मांग ले क्योंकि यह विषय अत्यन्त गूढ़ है और देवताओं को भी इस विषय में शङ्का हो जाया करती है नचिकेता कोई सामान्य जिज्ञासु नहीं था, अतएव विषय की गूढ़ता को सुनकर उसका मन हतोत्साह नहीं हुआ बल्कि उसके सुनने की इच्छा और बलवती होगई उसने कहा कि मैं आज इस विषय को जानना चाहता हूँ क्योंकि इस विषय का उपदेश करने वाला आपके समान और कौन मिलेगा, इस पर यमराजों ने हाथी, घोड़े, सुवर्ण विशाल भूमण्डल, दीर्घायु, इच्छानुकूल भोग, अनुपम रूप, लावण्य मय स्त्रियां तथा और भी बहुत से भोग जो मनुष्य लोक में दुर्लभ हैं उन्हे देना चाहा परन्तु नचिकेता उससे विचलित न हुआ और बोला-श्वो भावा मर्त्यस्य पदन्त कैत—त्सर्वेन्द्रियाणां, जरयन्ति तेजः । अपिसर्वंजीवित मल्पमेव, तवैव वाहास्तधनृत्य गीते ॥ हे यमराज यह भोग फल रहेंगे या नहीं इस प्रकार संदेहयुक्त है अर्थात् अस्थिर है और सम्पूर्ण इन्द्रियों के तेज को जीर्ण कर देती है और सारा जीवन भी स्वल्प है अतः आपके यहां के हाथी, घोड़े, नाच गान सभी आपके ही पास रहें मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है नचिकेता के इस आदर्श निष्काम भाव और दृढ़ निश्चय को देखकर यमराज बहुत ही प्रसन्न हुआ और बोला हे नचिकेता तू प्रिय धन पुत्रादि इष्ट पदार्थों को प्रिय रूप वाली अप्सराओं आदि के लुभाने वाले भोगों को असार समझ लिया। और जिसमें अधिकांश धनिक डूब जाते हैं उस धनी की निंदित गति को तूने स्वीकार नहीं किया। धन्य है तेरी मति को, जो मूर्ख धन के मोह से अन्धे होकर प्रमाद में लगे रहते हैं उन्हें परलोक का साधन नहीं सूझता है वही लोक है परलोक नहीं है ऐसा मानने वाले लोग बार बार मेरे चँगुल में फँसता रहता है, हे प्रियतम

सम्यकज्ञानी के लिये कोरा तर्क करने वालों से भिन्न आचार्य द्वारा कही हुई बुद्धि जिसको तुमने पाया है तर्क द्वारा प्राप्त नहीं होती है। यह मेरी धारणा सच्ची है। हे नचिकेता हमें तेरे समान जिज्ञासु प्राप्त हों। इस प्रकार उपर्युक्त वचनों से इस विषय की महत्ता जानने के लिये कितने ऊँचे अधिकार की आवश्यकता है यह मालूम होता है। इस प्रकार नचिकेता की कठिन परीक्षा लेकर और उसे उसमें उत्तीर्ण पाकर यम राज उसे आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में उपदेश देते हैं।

नजायतेम्रियतेवा विपश्चि न्मार्यकुलश्चिन्नवमूव कश्चित्। अजोनित्य शाश्वतोऽयं पुराणो। न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १ ॥

यह नित्य चिन्मय आत्मा न जन्मता है न मरता है न तो किसी वस्तु से उत्पन्न हुआ है। और न स्वयं ही कुछ बना है, यह जन्म नित्य है पुरातन है शरीर के जाने पर नष्ट नहीं होता है यदि मारने वाले आत्माको मारे जाने का विचार करता है और मारा जाने वाले उसे मरा हुआ समझता है यह तो दोनों ही उसे नहीं जानते है आगे चलकर यमराज उस मनुष्य की गति बतलाते हैं जो बिना आत्मा के जाने हुये मरण करता है वे कहते हैं --

योनिमन्येप्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिन। स्थाणुमन्ये उनुसंयन्तियथा कर्मयथाशुभम् ॥ २॥

अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कितने देह धारी ने शरीर धारण करने के लिये किसी देव मनुष्य पशु पक्षी आदि आदि योनि को प्राप्त होते हैं कितने ही स्थावर अर्थात् एकेन्द्रि जीवों में प्राप्त होते हैं। और भी कहा है—जैसे जीव आत्मा के देह में बालक पना और युवक पना होता है वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है उसमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता है जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र को छोड़कर नया वस्त्र धारण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर नवीन शरीर धारण करता है चौथे अध्याय में भगवान ने अरजुन से कहा है कि—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानितवचार्जुन ॥ तन्यंह वेद सर्वाणि नत्वं वेत्थ परंतप ॥ १ ॥

हे परमतप अर्जुन मेरेऔर तेरे बहुत जन्महोचुके हैं उनसबको तू नहीं जानताहै, परन्तु मैं जानता हूँ, पुनर्जन्म परलोक, आवृत्ति, अनावृत्ति गतागत, गमनागमन आदि शब्द कई जगह आये हैं। योगसूत्र में भी पुनर्जन्म का कथन आया है महर्षि पतंजलि कहते हैं—"क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्मवेदनीयः ॥ अर्थात् क्लेश जिनकी जड़ वे कर्माशय अथवा कर्मों की वासनायें वर्तमान अथवा आगे के जन्मों में भोगे जाते हैं।

श्रीमती द्रोपति देवी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख २८-८-५२ दिन शुक्रवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि विषय सुख की असारता है ।
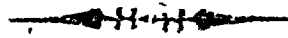
यह बात प्रायः देखने में आती है कि भगवान की भक्ति की आवश्यक्ता को समझ करके भी भगवान के नजदीक जानबूझ करके नहीं आता है इसका क्या कारण है जो भगवान से दूर रहता है इस पर विचार करना चाहिये, मेरे विचार से यह बात है कि श्रद्धा की कमी है। क्योंकि पूर्व सँचित पाप और अज्ञान के कारण लोगविषयों में आसक्त रहते हैं प्रभु की पूर्ण श्रद्धा और उनके तत्व पर विश्वास नहीं रखते। इसलिए प्रायः उनसे दूर रहते हैं। अज्ञान के कारण ही समय समय पर बदलने वाले देशकाल से परि छन्न, अनित्य, विनाशीक और दुख रूप तथा दुःख के हेतु इन विषयों में प्रतीत होती है इसी से वे इन विषयों में आसक्त रहते हैं।

विषयासक्त जीवानां गुणाकोऽप्यवा न जायते, न वैदुष्यं न मानुष्यं न भिजात्यं न सत्य वाक् ।

विषयासक्त जीवों के सभी गुण नष्ट हो जाते हैं, न उनमें विद्वता रहती है न मनुष्यता और न जाति का अभिमान एवम् सत्य वचन बोलना

होय निशल्य अनेक नृपति संग भूषण वसन उतारे
श्रीगुरु चरण धरी जिन मुद्रा पंच महा व्रत धारे,
धनि यह समझ सुबुधि जगोत्तम धनि यहधीरजधारी
ऐसी सम्पत्ति छोड़ बसे बन तिन पद धोक हमारी

इस प्रकार यदि विषयों में ही सुख मिलता तो महान पुरुष इसको छोड़कर जँगल में क्यों चले जाते ? इसलिये देखा जाय तो विषयों में सुख नहीं है, वह अनित्य, और क्षणभंगुर है, रसनेन्द्रिय के विषयों को ही लीजिये, हमें लड्डू बहुत प्रिय हैं परन्तु उनकी प्रियता जैसी भूख के समय जान पड़ती है तृप्ति हो जाने पर फिर वैसी नहीं रहती है यही नहीं पूर्ण तृप्ति होजाने पर तो वह हमें अरुचि कारक हो जाता है उसे खिलाने का आग्रह भी बुरा मालूम होता है इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के विषय स्त्री भोग इत्यादिक भी हैं, विचारना चाहिये कि सुख किस वस्तु में है, विचार पूर्वक देखने से मालूम होता है कि सम्पूर्ण सुख आनन्दघन परमात्म स्वरूप आत्मा में ही हैं, जहां तहां जो सुख की अनुभूति मालूम देती है यह उसके संसर्ग से है, सम्पूर्ण प्रिय पदार्थों में उसी का सुख प्रतिविंबित हो रहा है एक उदाहरण एक मनुष्य समुद्र तट पर खड़ा हुआ है उसके सामने अपार जल निधि उत्ताल तरंगें उछल कूद मचा रही हैं इतने में ही उसकी दृष्टि समुद्र तल में टिम-टिमाती हुई एक मणि के ऊपर पड़ती है, जल किनारे पर भी बहुत गहरा है परन्तु मणि प्राप्ति का प्रलोभन उसे अधीर कर देता है। वह कपड़े उतार कर सागर में डुबकी लगाता है परन्तु बार बार बहुत गहरे पानी में जाने पर भी मणि हाथ नहीं आई वह विफल मनोरथ ही रहताहै, परन्तु मणि की दीप्ति उसे व्याकुल कररही है इसलिये वह बहुत दुःखी होने पर भी बार बार डुबकी लगाने से नहीं हटता है। इस तरह उसे डुबकी लगाते हुये अधिक समय होगया इतने में एक कोई अनुभवी महात्मा घूमते घामते आगये वे देखने लगे कि एक मनुष्य बार बार डुबकी लगा रहा है और हताश चित्त निकल आता है उनकी आकृति से वह बहुत दुखी जान पड़ता है मानो किसी वस्तु को पाने के लिये अत्यन्त व्यग्र है और वह उसे मिल नहीं रही है। महात्मा जी उसके समीप जाकर पूछने लगे कि भाई तुम इतनी अधीरता से क्यों बार बार डुबकी लगा रहे हो किन्तु वह मनुष्य अपना भेद खोलना नहीं चाहता था उसे सन्देह होगया था कि जान लेने पर कहीं बाबा जी मणि निकाल न लेवें। अतः वह मामले को टाल देता है। इतने में महात्मा जी की दृष्टि भी उस मणि पर पड़ जाती है, उसे देखकर वे उसकी व्यग्रता का का कारण समझगये और उससे बोले क्यों भाई तुम इस मणि के लिये डुबकी लगा रहे हो ? भेद खुलते देखकर उसे भी स्वीकार करना पड़ा, बाबा जी ने पूछा तुझे डुबकी लगाते हुये कितना समय होगया, उसने कहा बहुत समय होगया, बाबा जी बोले तुमने कितनी डुबकियां लगायीं होंगी, उस मनुष्य ने कहा कुछ गिनती नहीं है। जब से मैं आया हूँ तब से बराबर डुबकियां लगा रहा हूँ, बाबा जी ने पूछा कुछ हाथ भी लगा ?

उस मनुष्य ने उत्तर दिया कुछ नहीं।

बाबा जी ने फिर कहा कि फिर क्यों डुबकी लगा रहा है।

उत्तर मिला कि डुबकी लगाते लगाते तो किसी समय मिल ही जायगी।

बाबा जी—इस पर तुम सारी आयु भी गोते लगाते रहोगे तो भी मणि नहीं पा सकते हो।

मनुष्य—क्यों बाबा जी?

बाबा जी—तुझे जो मणि दिखाई देती है वह वस्तुतः वहां नहीं है।

मनुष्य—यह आप कैसी बात कह रहे हैं वह तो मुझे प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रही है।

बाबा जी—हँसकर बोले, अच्छा बेटा कुछ देर ठहर जाओ तो अभी सारा भेद ज्ञान हो जायगा।

इस पर वह मनुष्य रुक गया, थोड़ी देर में जब जल ठहर गया, बाबा जी ने कहा कि तुझे जहां मणि दिखाई देती है वहां कुछ और भी दिखाई देता है।

मनुष्य—हां एक वृक्ष और दिखाई देता है।

बाबा जी—तो क्या वह वृक्ष वस्तुतः वहां है? यदि है तो इतनी बार डुबकी लगाने पर उसकी एक डाली भी तेरे हाथ नहीं आई।

मनुष्य—नहीं, डाली, पत्ता आदि तो कुछ हाथ नहीं लगा परन्तु यदि वह वहां नहीं है तो फिर कहां है।

बाबा जी—यदि वहां पर वृक्ष होता तो तुझे जरूर पता लग जाता। वस्तुतः वहाँ कोई वृक्ष नहीं है देखा किनारे का वृक्ष यही जल में प्रतिबिम्बित हो रहा है ऐसा कहकर बाबा जी ने उस वृक्ष की १ टहनी हिलाई उसके हिलने से जलमें प्रतिबिंबित वृक्ष भी हिलने लगा।

मनुष्य—तब उस मनुष्य की समझमें आया और कहने लगा कि बाबा जी आपका कहना ठीक है किन्तु अब इस मणि के मिलने का उपाय बतलाइये।

बाबा जी—यदि तुझे यह मणि प्राप्त करनी है तो इस वृक्ष पर चढ़कर देख, प्रतिबिंबित मणि की संभूति इस वृक्ष पर मिल सकती है।

तब मनुष्य ने उस वृक्ष पर चढ़ कर देखा कि वह मणि उस वृक्ष के ऊपर है वह लाल मणि को पाकर निहाल हो गया और महात्मा जी से कहने लगा।

कहने का प्रयोजन यह है कि संसार समुद्र है और विषय उसमें जल है, विषय सुख ही मणि का परिचय है जीव ही डुबकी लगाने वाला मनुष्य है, बारबार जन्म लेना और मरना डुबकी लगाना है। समुद्र ही महात्मा जी हैं। दृढ़ वैराग्य ही किनारे का वृक्ष है साधन उस पर चढ़ना है और परमात्म स्वरूप की स्थिति ही सच्ची मणि है। इस पर जल में परछाहीं की की भांति विषयों में जो आनन्द प्राप्त होता है वह विज्ञान घन उस परमात्मा का ही रूप है। यदि उसे पाने की इच्छा है तो संसारमें प्रतीति होने वाले वाले विषयों की आपात रमणीयता से आकृष्ट होकर किसी सद्गुरु के बतलाये हुये वैराग्य रूपी वृक्ष पर चढ़ कर देखो तभी तुमको उस विशुद्ध परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है। एक मनुष्य किसी कुटिया में बैठा हुआ है प्रातः काल का समय है उस कुटिया के बाहर वह देखता है कि बाहर मन्द मन्द घाम फैला हुआ है इससे वह निश्चय कर लेता है कि सूर्योदय होगया है, यद्यपि उसके सामने सूर्य नहीं है। परन्तु घाम देखने से सूर्य की सत्ता का निश्चय

कर लेता है प्रकाश तो उसकी कुटिया में भी है परन्तु सूर्य से सीधा न आकर उस घाम से ही प्रति फलित हो रहा है। इस प्रकार सूर्य के न दिखाई देने पर भी उसी के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है। यदि किसी प्रकार उस कुटिया के छप्पर को हटा दिया जाय तो वहां पर बैठे बैठे सूर्य का दर्शन किया जा सकता है। इसी तरह अविद्या कुटी के कारण हमसे छिपा हुआ है उस परमानन्द का प्रकाश जो सात्विक आनन्द है उसी की आभा इन विषयों में पड़ी हुई है और इसी कारण वह विषय सुख रूप जान पड़ते हैं यदि किसी प्रकार उस अविद्या का परदा हटा दिया जाय तो उस परमानन्द आत्मा का साक्षात्कार ले सकता है परन्तु इस विषयानन्द से भी उस परमानन्द धन शुद्ध स्वरूप का चित्स्वरूप निश्चित् हो जाने से कुछ बाधा नहीं रहना चाहिये, जब हम स्पष्ट ही सर्वत्र अल्प सुख का अनुभव करते हैं तो उसके अधिष्ठान भूत पूर्णानन्द परमात्मा की सत्ता निश्चय ही सिद्ध होनी है इनमें तनिक भी संदेह नहीं है परन्तु इस विषयानन्द की अपेक्षा भगवान में कितना आनन्द है इसका परिचय उसी प्रकार नहीं कराया जा सकता है जिस प्रकार खद्योतों के समूह में सूर्य का; मानव बुद्धि उसका आकलन (तुलना) कहने में सर्वथा असमर्थ हैं भगवान की आनन्द की तो बात दूर रही, विषयासक्त पुरुषों के लिये तो शुद्ध सात्विक आनन्द अत्यन्त दुर्लभ हैं आत्मा स्वरूप के दर्शनके लिये एक दृष्टांत पर ध्यान देना चाहिये।

एक दर्पणहै उसमें सूर्य का प्रतिबिंब दिखाई देता है सूर्य के प्रतिबिम्ब युक्त दर्पण का चिलका दीवार पर पड़ रहा है उस चिलके की आभा से दीवार भी प्रकाशित हो रही है वह सूर्य प्रतिबिंबके प्रकाशक का आभास है उसी प्रकार विषयानन्द भी परमानन्द के प्रतिबिंब के प्रकाश का आभास है उसी प्रकार विषयानन्द भी परमानन्द के प्रतिबिंब के प्रकाश की आभामात्र है, विषयानन्द दीवार पर पड़े हुये सामान्य प्रकाश के समान है। दीवार पर पड़ा हुआ चिलका सात्विक आनन्द है, दर्पण प्रतिबिंबत सूर्य सात्विक आनन्द का पुञ्ज है और परमास्वरूप सुख स्वरूप है इस प्रकार हम देखते हैं। विषयानन्द की अपेक्षा परमानन्द असंख्यात कोटि गुना अधिक बताया जाय तो भी उसकी उपमा नहीं बनती है थोड़ा-सा विचार दृष्टि से देखा जाय तो विषयों की असारता, अस्थिरता तुच्छता स्पष्ट प्रतीत होती है।

धर्मपत्नी पुत्तीलाल जी जैन टिकैतनगरवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख २६-८-५३ दिन शनिवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि रक्षा बन्धन पर्व कैसे मनाना चाहिये
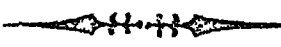
रक्षा बन्धन क्यों किया जाता है और इसका मतलव क्या है !

आज हमारे भारत वर्ष में जो एक दूसरे की रक्षा करने की प्रथा तथा सहायता उठ जाने के कारण हमारी दुर्दशा हो रही है वास्तविक रक्षा बन्धन का पर्व हम लोगों ने न जानकर मनमाने ढङ्ग से खाने पीने और मौज उड़ाने के लिये दस बीस रुपये उस दिन खर्च करके मिष्ठान्न, सेवई इत्यादि बनाकर खाना इसी को धर्म मान रखा है, परन्तु केवल मिष्ठान्न, सेवई, खाना धर्म नहीं है यदि विचार किया जावे तो हमारी समाज में दीन, अनाथ, विधवाओं आदि की ऐसी दुर्दशा हो रही है कि रात दिन वह पुकार करने पर कोई सुनने वाला न मिलने पर मनमाला आचरण यद्दालद्दा उनको करना पड़ता है, कोई भी हो उनके आश्रित रहे तो उनका सर्वस्व हरण कर उन्हें बरतन मांजने पर नियोजित कर देते हैं हम आज मौज से मिठाई खा लो और राखी बन्धवाकर दो रुपये देकर छुट्टी पा लेवें यह सुन्दर बात नहीं है और न इसका कोई तात्पर्य ही धर्म से निकलता है, हमारा कर्तव्य साल में एक बार श्रावण शुक्ल १५ को रक्षा करने की याद दिलाता है कि उपरोक्त भाई बहिनों, की रक्षा जिस तरह भी बने करना चाहिये। केवल भाई बहिनों की नहीं, अनाथ, विधवा दीन, माता, पिता, गुरुजनों तथा रोगियों का सेवा रक्षा निस्पृह भाव से करने का संकल्प करें, निःस्वार्थ भाव से संसार में सेवा रक्षा करना हम भूल गये हैं आपस में न तो कोई प्रेम है और न सङ्गठन है, इसलिये प्रत्येक प्राणी पर रक्षाकी भावना हमें करना योग्य है, माता पिता अथवा साधु सन्यासी का सत्संग, और सह धर्मी भाइयों पर वात्सल्य भावना रखना और धर्मायतनों की रक्षा, साधु, सत्पुरुषों की रक्षा जब तक हम करने के लिए अपना कर्तव्य न समझेंगे तब तक हम अपनी रक्षा न कर सकेंगे माता पिता की रक्षा, साधु सन्यासियों की रक्षा

सत्पुरुषों की रक्षा दीन अनाथों की रक्षा करने का स्मरण दिलाने के लिए यह पर्वराज साल भर में एक बार आता है। आज कल सभी प्राणी सँसार में सुख चाहते हैं और वह भी सदा सर्वदा के लिए दुख कोई भी प्राणी नहीं चाहता है किन्तु ऐसा होना नहीं हैं बल्कि उस की इच्छा के प्रतिकुल ही होता है क्योंकि अपना समय जिस तरह से बिताना चाहिए हम नहीं बिताते हैं। आज कल मान बढ़ाई के फेर में पड़ रक्षा करते हैं वह रक्षा नहीं है। खाये हुये को खिलाना यह भी रक्षा नहीं है। जन्म पर्यंत मेरा नाम लेता रहे इस विचार से दान का रक्षा करना दया भाव करना उनके दुखोंको दूर करने का प्रयत्न करना सच्ची रक्षा है, जिस धर्मात्मा कोई आघात पहुँचा हो उसी समय जाकर उसकी रक्षा करना उसकी स्थिति करण करना धर्म रक्षा है इस प्रसङ्गमें रक्षा बन्धन का कथानक कुछ संक्षेप में दिया जाता है।

कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नाम का नगर था, इसमें महापद्म राजा लक्ष्मीमती रानी सहित आनन्दसे राज्य करता था, इनके पद्मराय और विष्णुकुमार नाम के दो पुत्र थे, एक दिन श्रतसागर आचार्य पांच सौ मुनियों के साथ सङ्घ सहित विहार करते आए, आचार्य श्री का उपदेश सुनकर महापद्म राजा सँसार से विरक्त होगया और कहा कि हितकारी गुरुके न मिलने से इस जीव का कल्याण नहीं हुआ, जीवन ओस बिन्दु के समान अस्थिर है आयु पानी के बुलबुले के समान है, ऐसा सोचकर अपने दोनों पुत्रों और सामन्तों को बुलाकर कहा कि पूर्व पुण्य से राज्य मिला है किन्तु आगाड़ी के लिए भी कुछ कल्याण अपना इससे कर लेना चाहिए सारे पुण्य फलों को यहीं भोग लेना ठीक नहीं है जैसे किसान आगे की फसल के लिए बीज रोक लेता है, वैसे ही सम्पूर्ण अमूल्य जीवन को बिता देना ठीक नहीं है, कुछ तो आगे के लिए सुरक्षित रखना चाहिए, इस तरह समझा बुझाकर पद्मराय को राज दे दिया और स्वयम् दीक्षित होगया। विष्णुकुमार छोटे पुत्र ने कहा कि मेरा विचार भी दीक्षा लेने का है। पिता ने कहा कुछ दिनों के बाद सुख भोग कर दीक्षा लेना, विष्णुकुमार ने कहा जो राज्य सम्पदा में सुख होता तो इसे आप क्यों त्यागते मैं अवश्य दीक्षा लूँगा महाराज के साथ ही विष्णुकुमार भी दीक्षित होगए और उग्रतर तपस्या करने लगे।

उज्जैनी नगरीमें जयवर्मा राजा राज्य करता था। इस राजा के मन्त्री जैन मत के कट्टर शत्रु बलि, बृहस्पति नमुचि और प्रह्लाद वेद शास्त्र पारांगत थे। एकसमय इस नगरमें अकम्पनाचार्य सात सौ शिष्यों सहित पधारे और नगर के बाहर उद्यान में ठहर गए, जब उन्हें इन मन्त्रियों की बात मालूम हुई तो सम्पूर्ण शिष्यों को बुला कर कहा कि मौन व्रत ग्रहण करके ध्यानस्थ हो जाओ, धर्म द्वेषी से विवाद झगड़ा बढ़ने का डर है। इस आज्ञा के पहिले ही श्रुतिकीर्ति मुनि राय पहले ही भिक्षा के लिये चले गये थे, मुनि सङ्घ का समाचार सुनकर सम्पूर्ण जैनी पूजा, वन्दना के लिये चले, राजा भी चलने को तैयार होगए चारों मन्त्रियों ने रोका परन्तु राजा न माना लाचार मन्त्रियों को भी राजा के साथ जाना पड़ा, सङ्घ के सभी मुनि मौन थे, राजा प्रणामादि का कुछ उत्तर न मिलने पर मन्त्रियों

ने कहा कि महाराज यह सब निरे मूर्ख हैं। वापस होने पर रास्ते में श्रुतिकीर्ति मुनि मिले। उनको देखकर मन्त्रियों ने उनसे वाद विवाद किया। मुनिराज ने उनकी कुतर्कों का जोरदार खण्डन किया जिससे उन्हें निरुत्तर हो जाना पड़ा। राजा ने कहा कि मुनिराज का कथन ठीक है। परन्तु मन्त्रियों ने न माना, राजसभा में आकर राजा ने यह बात सभासदों के समक्ष रखी। सभी ने राजा के कथन की पुष्टि की और तय किया कि दूसरे मन्त्री नियुक्त किये जावें। और ईर्षालु, द्वेषी मन्त्री राज चलाने के अयोग्य हैं। दूसरे मन्त्री रक्खे गये यह राज्य से निकाल दिये गये। मन्त्रियों को इससे और भी द्वेष इन मुनिराजों से होगया। अतएव वहां से चलकर चारों मन्त्री हस्तिनापुर पहुँचे और राजा पद्मराय के यहां नौकरी कर ली, राजा पद्मराय को कुम्भपुर का राजा सिंहकीर्ति समय समय पर आकर नगर में उपद्रव किया करता था, इसको बश में करने का कार्य मन्त्रियों को सौंपा गया। मंत्री कुछ सेना लेकर कुम्भपुर जाकर सिंहकीर्ति को पकड़ लिया और लेआया। राजा पद्मराय ने सिंहकीर्ति को देखकर उसके बन्धन खुलवा दिये और कहने लगा भाई हमारा तुम्हारा कोई वैर नहीं है मैं तुम्हें कोई दण्ड नहीं देना चाहता हूँ। तुम सुख से अपने राज्य में रहकर सुख भोगो। पर मेरे नगर में कोई उपद्रव न करो, सिंहकीर्ति ने स्वीकार कर लिया और अपने स्थान को चला गया। इस कार्य सिद्धि के उहलक्ष में राजा पद्मराय ने मन्त्रियों को मन चाहा इनाम देना चाहा मन्त्रियोंने कहा बचन भण्डारमें रहे जिस समय आवश्यका होगीले लेवेंगे, राजाने कहा तथास्तु

कुछ समय के बाद अकम्पनाचार्य अपने सात सौ शिष्यों सहित हस्तिापुर पधारे और उद्यान में ठहर गये, यह मन्त्रियों ने सुनी तो वे विचार करने लगे कि इन मुनिराजों ने हमारा अपमान किया था अतएव इन्हें उसका बदला लेने के लिये राजा से सात दिवस का राज्य मांग लेना चाहिये। सात दिनों का राज्य राजा पद्मराय से मांग लिया और निर्भय होकर नरमेध यज्ञ के बहाने जहां मुनिराज ठहरेथे उसके चारों ओर यज्ञ आरम्भ किया जिसकी दुर्गंधसे मुनियों को अपार कष्ट होने लगा, मुनिराजों ने प्रतिज्ञा की कि जब तक यह उपसर्ग दूर न हो जावेगा अन्न जल का त्याग है। नगरी के सभी लोग अधीर हो गए त्राहि २ करने लगे। दुष्ट राजा बलि सात सौ मुनियों की बलि देने जा रहा है नगर के लोग नाना प्रकार से चिंतित थे, परन्तु असमर्थ थे अतएव नगर वासियों ने भी उपसर्ग दूर होने तक आहार पानी का त्याग कर दिया। दुर्गन्धित धुयें ने मुनिराजों के गलों को बन्द कर दिया श्वांसें रुक गयीं महान कष्ट होने लगा प्राण कण्ठ में आगये, अर्द्ध रात्रि के समय मिथिलापुर के बन में आचार्य के मुख से हा! हा!! इस प्रकार दुःख सूचक शब्द निकल पड़े उनके पास में रहने वाले पुष्पदन्त मुनि थे, सुन कर बोले प्रभो, कहां पर यह कष्ट है आचार्य श्री ने हस्तिनापुर का उपसर्ग वर्णन किया, पुष्पदन्त मुनि बोले इस उपसर्ग के निवारण का उपाय बतलाइए, गुरुदेव ने कहा धरणी भूषण पर्वत पर विष्णुकुमार मुनि तपस्या कर रहे हैं उनको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न होगई है उनके द्वारा यह उपसर्ग दूर हो सकता है, पुष्पदन्त

मुनि आकाश मार्ग से तुरन्त विष्णुकुमार मुनि के पास गया और मुनि उपसर्ग का हाल कहा, विष्णुकुमार मुनि ने विक्रिया ऋद्धि की परीक्षा के लिये अपना हाथ बढ़ाया तो समुद्र तक बढ़ता चलागया, परीक्षा करके विष्णुकुमार मुनि उपसर्ग स्थान पर आगए, प्रथम राजा पद्म के पास जाकर कहा कि आप कुरुवन्श में मुनि उपसर्ग का कलङ्क क्यों लगा रहे हो इत्यादि बहुत तरह समझाया परन्तु उन्होंने यही उत्तर दिया कि महाराज मैं सात दिनों का राज दे चुका हूँ मैं असमर्थ हूं आप सर्वथा योग्य हैं जो चाहें कर सकते हैं इस पर विष्णुकुमार मुनि ने ५२ अन्गुल का शरीर बनाकर ब्राह्मण के वेष में जहां बलि दान कर रहा था पहुँचे, बलि ने सुन्दराकृति मूर्ति देखकर प्रणाम किया और बोला विप्रराज जो आप चाहते हों स्वेच्छानुसार मांगिये मैं दूंगा इस समय मैं सर्वथा समर्थ हूँ, मैं मुंह मांगा धन दे सकता हूँ, बलि ने वचन सुनकर मुनिराज बोले मुझे धन दौलत की जरूरत नहीं है, विप्र को आत्मकल्याण से ही प्रयोजन है, संसारिक वस्तुओं की इच्छा नहीं है। अतएव मुझे तीन कदम पृथ्वी दे दीजिये जहां बैठकर मैं धर्मध्यान बैठकर निर्विघ्न कर सकूँ। बलि बोलाइतना छोटा दान देने में मुझे लज्जा बोध होती है कोई बड़ा दान मांगिए, मुनिराज ने कहा देना हो तो दे दीजिए नहीं तो किसी दूसरे का घर देखूं विप्र के लिए आत्म ध्यान करनेके लिए तीन पैंड़ पृथ्वी ही पर्याप्त है, बलि ने कहा अच्छी बात है और मुझे स्वीकार है। विप्र भेषी मुनिराज ने कहा कि संकल्प करके दीजिए बलि ने संकल्प कर दिया, मुनिने स्वस्ति कहकर स्वीकार किया विक्रिया ऋद्धि के द्वारा मुनिराज अपना शरीर बड़ा किया, पहली डग सुमेरु पर्वत पर रखी दूसरी मानुषोत्तर पर्वत पर तीसरी के लिए जमीन नहीं रह गई। मुनिराज बोले एक डग और दीजिए, बलि बोला अब पृथ्वी नहीं है तीसरी डग मेरी पीठ पर रख लीजिए, जब मुनिराज ने बलि की पीठ पर डग रखी तो उसका शरीर थर थर कांपने लगा, देव असुरों के आसन कंपायमान हो गए अवधिज्ञान से समस्त वृत्तांत जानकर नारद और सुर-असुर वहीं आगए, मुनि विष्णुकुमार को नमस्कार कर कहने लगे, करुणा निधे अब क्षमा कीजिए, बलि की पीठ पर से चरण हटा लीजिए, मुनिराज ने अपना वास्तविक रूप प्रगट किया, तब सर्वत्र शांति फैली धन्य धन्य की ध्वनि गूंजने लगी बलि ने यज्ञ बन्द करके मुनियों का उपसर्ग दूर किया, और नगर निवासियों ने आकर मुनिराजों का वैयावृत्य की मुनिगण अचेत होगए थे सबके नाक, नेत्र आदि जल से धोकर सचेत किया, और उनकी रक्षा की, राजा बलि को मुनिराज ने दयाधर्म का उपदेश दिया अहिंसा धर्म का उपदेश समझकर चारों मन्त्रियों ने पश्चाताप प्रकट किया और मुनि चरणों में गिरकर मुनि दीक्षा ग्रहण की। वह दिन श्रावण की पूर्णमासी का था मुनिराज विष्णुकुमार ने सात सौ मुनियों की रक्षा की और अपने स्थान पर जाकर छेदोपस्थाना प्रायश्चित्त धारण किया फिर तपस्या करने लगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि परोपकार, रक्षा, दया, सेवा करने के लिए हर समय निस्पृह भाव से तैयार रहना चाहिए। तभी स्वपर कल्याण हो सकता है, सात दिनों

तक यह उपसर्ग होने कारण मुनिराजों के कण्ठ अवरुद्ध हो गये थे नेत्रादि में धुवां भर गया था इसको श्रावकों ने जाकर दूर किया और कण्ठ में आहार जाने की शक्ति नहीं रह गई थी इस लिये सब श्रावकों ने विचार करके पतला दूध और शर्कर मिश्रित सेवई बनाकर मुनियों को भोजन दान दिया तभी से इस दिन सेवई दूध खाने की प्रथा चली आती है और रक्षा करने के लिये अपने अपने हाथों में कंकण बांधा था जो आज राखी के रूप में दिखाई देता है। इससे नतीजा यह निकलता है कि आजके दिन हमको क्या स्मरण करना चाहिये केवल सेवई खाने से और राखी बांधने से तो रक्षा बन्धन पर्व सार्थक नहीं हो सकता है, हमें सोचना चाहिये कि साल भर में हमने कितने जनों की रक्षा कितने स्वजनों, परजनों की रक्षाकी, उसी स्मृति के लिये अपनी शक्ति अनुसार सभी प्राणियों के लिए दीन, अनाथ, विधवा इत्यादिकों की रक्षा करने का नियम लेना चाहिये, वास्तव में आज कल के जगत में स्वार्थ परता बहुत बढ़ गई है, देश सेवा, समाज सेवा, धर्म सेवा भगवत्सेवा और निष्काम प्रेम आदि किसी भी नाम पर आज का मनुष्य अपने व्यक्तिगत प्रयोजन को ही मुख्य रूपसे सामने रखता है। इसलिये सत्यानुरागके बदले मिथ्यानुराग बढ़ चला है। अफसर हो या नेता, व्यापारी हो या मजदूर जमींदार हो या किसान सभी जगह अपनी ही ओर दृष्टि है सभी लेना चाहते हैं देना कोई नहीं चाहता है सुख पूर्वक देना वही सम्भव होता है जहां सच्चा प्रेम होता है प्रेम ही नीच स्वार्थ का नाश करता है प्रेम वास्तव में होता है प्रेम के लिये ही प्रेम का प्रयत्न होने पर भी जहां वस्तुतः व्यक्तिगत प्रयोजन की प्रधानता होती है वहां प्रेम का प्रकाश नहीं होता जब प्रायः सभीजगह अभिनय है सच्चा अनुराग नहीं है इसलिये जो कुछ होता है दिखावे के लिये होता है अन्तरात्मा से नहीं, जो जिस चीज का प्रेमी है उनका हृदय उस चीज की दुर्दशा पर रोता है वह जिस किसी तरह उसका कल्याण, रक्षा करना चाहता है वह अपनी प्रसंशा क्यों नहीं चाहेगा कि मुझे लोग अपना हितकारी समझें या अपना बड़ा समझें सच्चा पुरुष किसी भी भय या प्रलोभन से अपने सत्पथ से नहीं डिग सकता परन्तु जो प्रलोभन में पड़कर ही किसी तरह का स्वांग बनाते हैं उनसे किसी भी क्षेत्र में वास्तविक कल्याण कार्य नहीं हो सकता है कभी कभी स्मशान वैराग्य की भांति मन में सचमुच ही जन सेवा की इच्छा हुआ करती है और उस समय व्यक्तिगत रूप से भी प्राणी सेवा के लिये कर्म क्षेत्र में उतरना उत्तम है परन्तु केवल बड़प्पन पाने की इच्छासे प्राणी मात्र को यदा तदा उपदेश देदेना और अकर्म में नियोजित कर देना ठीक नहीं है जो सच्चे प्राणी सेवक होते हैं वे न तो मिथ्या प्रचार करते हैं न किसी भिन्न मत वाले के प्रति जहर उगलते हैं न अनुचित रूपसे भय या लोभ देकर अर्थ का अनर्थ करना चाहते हैं वे न छल प्रपंच का आश्रय लेकर अपना दुष्प्रयोजन सिद्ध करना चाहतेहैं उद्देश्य कितना ही ऊँचा क्यों न हो परन्तु जब तक मनुष्य स्वयं ऊँचा नहीं होता तब तक उद्देश्य की सिद्धि अशक्य है जिसके मन का जैसा भाव होता है उसका स्वरूप वैसा ही होता है जैसा स्वरूप

होता है उसी के अनुसार क्रिया होती है इसलिये मनुष्य कई बार को महान उद्देश्य का साधक मानकर अपने भावानुसार उद्देश्य के विपरीत कार्य कर बैठता है और आप ही अपने को धोखा देकर गिर जाता है। अतएव मनुष्य को चाहिये कि वह पहले ही बड़ा बनने की कोशिश न करे अपने को ऐसा बनावे जिसमें उसके अन्दर आदर्श सद्गुणों का और महान् ऊँचे चारित्र का विकाश हो, हम लोग दूसरों को ऊँचा बनाना चाहते हैं परन्तु स्वयँ ऊँचा बनना नहीं चाहते मनुष्य निर्माण करना चाहते हैं पर अपने में मनुष्यत्व का विकास नहीं करते यह कितनी बुरी और भद्दी बात है यदि हमको अपनी और अपने धर्म की रक्षा इष्ट है अपने आश्रितों की अपने स्थानीय, दीन दुखी विधवा बहिनों की रक्षा करनेके लिये प्रत्येक समय कटिबद्ध रहना चाहिये यह सलूनो पर्व हमको श्रावण सुदी पूर्णिमा को आकर यही शिक्षा देता है और स्मरण कराता है कि निस्पृह भाव से जैसे विष्णुकुमार ने सात सौ मुनियों की प्राण रक्षा की थी समय आने पर अपनी जान को हथेली पर रख कर अन्यायी और दुराचारी से अपनी तथा अपने समाज की रक्षा करने का दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिये इसीसे कल्याण होगा।

जैचन्द जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख ३०-८-५३ दिन रविवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि जगत में दुःख की वृद्धि क्यों हो रही है ?

वास्तव में देखा जाय तो दुख के लिये मूल कारण स्वयम् आप ही है क्योंकि फल तो वैसा ही लगेगा जैसा बीज बोया जायगा।

पुन्स्य फलमिच्छंति पुन्यंनेच्छंतिमानवाः।
न पाप फलमिच्छंति पाप कुर्वन्तियत्ननः॥

मनुष्य पुण्य का फल तो चाहता है परन्तु पुण्य करना नहीं चाहता है इसी प्रकार पाप का फल कोई नहीं चाहता परन्तु पाप करने का प्रयत्न करते रहते हैं संसारी प्राणियों की यही दशा है घोर अन्धकार से उनकी बुद्धि ऐसी विपरीत हो रही है कि उनको पाप में पुन्य की झांकी हो रही है। कहा भी है किः—

अधर्म धर्ममितियामन्यते तमसावृताः॥
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः स पार्थ तामसि

अर्जुन से श्रीकृष्णजी ने कहा था कि अधर्म को धर्म मानना और सम्पूर्ण बातों को उल्टाही करती है वह बुद्धि तामसी है जब तक बुद्धि पाप को पाप बतलाती है तब तक पाप करने में हिचक होती है और वह बुद्धि की बार बार प्रेरणा पाकर पाप को छोड़ भी देता है परन्तु जब बुद्धि पाप पुण्य बतलाती है तब तो पाप में उसका मन गौरव को प्राप्त होता है और नित्य नये नये पापों के करने में अपना जीवन सफल मानता है, हमारे आज कल के मानव समाज की यही दशा है तो विचार करिये सुख कैसे हो सकता है आज तो सर्वत्र दुख का तूफान आ रहा है उसका वही कारण है हमारे पाप ही आज अनंत गुणे होकर दुख के रूप में फल दे रहे हैं जब तक हमारी तामसी बुद्धि नहीं बदलेगी तब तक हम पापों को पाप समझकर उसका परित्याग नहीं करेंगे तब तक निश्चय जानिए कि उत्तरोत्तर दुख की प्रवृत्ति बढ़ती ही जायगी, असली सुख की प्राप्ति तो हमको तभी होगी जब हमारे सम्पूर्ण विषय की ओर से प्रवृत्ति हटाकर आत्मोन्नति के सच्चे मार्ग में अपनी बुद्धि लगावें क्योंकि विषय वासना में लीन हुए मनुष्य की क्या गति होती है उसकी एक कथा जैन पुराण में इस भांति वर्णित हैः—

श्री आदिनाथ तीर्थंकर के बाद दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ के समय में सगर चक्रवर्ती हो गए हैं इस जम्बूद्वीप में पूर्व विदेह क्षेत्र के सीता नदी के उत्तर में अत्यन्त सुन्दर वत्सकावती देश है उस देश में पृथ्वीपति नाम का एक नगरहै वहां का राजा जयसेन था राजा धार्मिक था राजाकी एक जयसेना नामकी पुत्री थी और दो पुत्र रतिसेन धृतिसेन थे, पूर्णिमा के समान दोनों पुत्र शस्त्र और शास्त्र विद्या में पारंगत होगए। माता पिता का प्रकाश और पृथ्वी को प्रकाशित करने वाले मालूम होतेथे दोनों तेजस्वी थे, कुछ दिनों के बाद किसी कारण से रतिसेन की मृत्यु होगई, मृत्यु का मुख्य कारण कोई नहीं हो सकता, जन्म और मरण तो प्राणी के साथ लगे रहते हैं रतिसेन की मृत्यु से दोनों दम्पत्ति बहुत दुखित होगए तथा मूर्च्छित होगए फिर सावधान होगए और विचार किया कि यमराज को मैं जीतूंगा ऐसा कहकर धृतसेन को राज्य देकर अनेक राजाओं सहित यशोधर मुनि के निकट जाकर उनके उपदेश को सुनकर शुद्ध मार्ग के लिये दीक्षा ग्रहण कर लिया उग्र तप करके अन्त समय संयास धारण करके सोलहवें स्वर्ग में महाबल नाम का देव होगया, मारुत भी उसी कल्प में मणिकेतु नाम का देव हुआ परन्तु आपस में यह तय कर लिया यहां से जो प्रथम जाकर पृथ्वी पर जन्म ले वह दूसरे को उपदेश देकर वैराग्य धारण करावे, महाबल उस स्वर्ग बाईस सागरोपम वर्ष तक देवलोकके सुख भोग कर अयोध्या नगरी में समुद्रविजय राजा के सुबालादेवी रानी से इक्ष्वाकुवन्श में सगर नाम का पुत्र हुआ उनकी आयु का परिमाण बहत्तर लाख पूव थी चार सौ पच्चीस धनुष ऊँचा शरीर था सर्व लक्षण से मण्डित था कुमारावस्था में अट्ठारह लाख पूर्व समाप्त हो गया, पश्चात् अट्ठारह लाख पूव तक राज्य किया फिर षट् खँड भूमि को वश करने की शक्ति उसने प्राप्त किया और छः खँड भूमि को विजय किया और वहां की श्रेष्ठ २ वस्तुओं को अपने आधीन किया और अयोध्या में वापस आकर दशांग कल्पवृक्षों के भोगों को भोगा पुण्यशाली चक्रवर्ती सगर के साठ हजार पुत्र थे अयोध्या में शुद्ध चतुर्मुख प्रतिमायोग धारी श्रीधर मुनि को एक ही समय में चराचर वस्तुओं को जानने की शक्ति वाला केवलज्ञान प्राप्त हुआ उस केवलज्ञान की पूजा में मणिकेतु देव भी आया, केवलज्ञान के द्वारा महाबल का जन्म कहां हुआ है जानने की उत्कंठा हुई और जान लिया कि महाबल का जीव सगर चक्रवर्ती हुआ है उसको जाकर वैराग्य के लिये सम्बोधन करना चाहिए, क्योंकि स्वर्ग में हम दोनों ने प्रतिज्ञा की थी कि परस्पर को वैराग्य उत्पन्न करेंगे। अतः चक्रवर्ती के पास जाकर मणिकेतु ने कहा कि जब हम तुम दोनों स्वर्ग में थे हमारी तुम्हारी यह बात हुई थी कि जो पहले जन्म ले दूसरे को उपदेश देकर वैराग्य उत्पन्न करावें यह बात याद है कि नहीं, राजन् आपने बहुत समय तक राज्य सुख भोगा, नाग के समान क्रूर विषधर को अनुभव करने से क्या प्रयोजन मोक्ष के साधन में प्रयत्न शील होना चाहिए इस बात को सुनकर सगर चक्रवर्ती ने उनकी बात पर तिल मात्र भी लक्ष्य नहीं गया काललब्धि के बिना कोई कार्य नहीं होता है। मणिकेतु ने दूसरा यत्न किया, हित करने वाले क्या नहीं करते हैं ? ये भोग अनेक कष्ट और

दुर्घटना के देने वाले हैं, राजन इनको छोड़ दीजिए परन्तु फिर भी चक्रवर्ती ने कुछ ध्यान नहीं दिया मणिचूल ने समझा अभी विरक्ति नहीं आई फिर अन्य उपाय किया कि इस पृथ्वी पर कांतिमय शरीर वाला चारण ऋद्धिधारी मुनि का वेष धारण करके मणिकेतु सगर चक्रवी के मन्दिर में जाकर भगवान के दर्शन करके बैठ गया, चक्रवर्ती ने देखा तो आश्चर्य चकित हो गया उनकी युवावस्था का तमय सुन्दर शरीर देखकर बोला कि महाराज इस अल्पवय में आपको वैराग्य किस कारण से होगया ? उत्तर में मणिकेतु ने कहा यौवन अवस्था बुढ़ापा के साथ है, आयु क्षण २ बीत रही है. शरीर अशुचि और नाशवान तथा अनेक कष्टों का कारण है संसार में अनिष्ट का संयोग और इष्ट का वियोग हुआ करता है इस प्रकार अनेक भ्रमण बीत चुके हैं। यह सभी अनन्तकाल से चला आ रहा है, अतएव कर्म से व्याप्त इस शरीर को शुद्ध करने के लिए नाश रहित शरीर धारण करने के लिए दीक्षा धारण की है।

नाति ह्रस्योस्य संसार इत्यायात्स विषाद्वान।
उपायो निष्फला कस्य न विषादाय धमितः॥

इस प्रकार कहने पर भी सगर चक्रवर्ती के हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, विचार किया कि इनका संसार लम्बा है छोटा नहीं है, फिर स्वर्ग चला गया क्योंकि उपाय सभी निष्फल गए विवेकी पुरुषों को विवाद होना. ठीक ही है मन में विचार करने लगा तुच्छ साम्राज्य के मोह में पड़कर अच्युत (सोलहवें) स्वर्ग का सुख सम्पत्ति भी भूल गया, कामुक लोगों को उचित ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है, देव ने मन में विचारा कि पुत्र की प्राप्ति को मोक्ष की प्राप्ति समझता है और मोक्ष की प्राप्ति को अप्राप्ति समझता है। इसलिए इस साम्राज्य में यह आसक्त हो गया है एक दिन सगर चक्रवर्ती के सभी पुत्र राज सभा में आकर एक प्रार्थना की कि अनेक प्रकार सौर्य और वीर्य को प्राप्त करके क्षत्रिय पुत्र यदि अपने माता पिता के इष्टार्थ को सिद्ध न करे तो उसके होने से क्या लाभ है अतएव पिता जी हमको कोई ऐसा काम बतलाइए जो बहुत बड़ा हो कष्ट साध्य हो उसे हम पूरा करें अन्यथा बिना काम के भोजन लेना भी ठीक नहीं है इस बात को सुनकर चक्रवर्ती ने सन्तोष के साथ कहा कि हे प्रभो ! चक्ररत्न से हिमवन पर्वत तक सम्पूर्ण पृथ्वी साधन हो चुकी है अब यह जो छः खण्ड पृथ्वी का राज ऐश्वर्य है उसे धैर्य के साथ भोग करो यही सबसे अच्छा काम है इसे सुनकर सभी पुत्र चले गए उत्तम योग्य पुत्र अपने माता पिताओं की आज्ञा सदैव धारण करते हैं फिर दिन सभी पुत्र राज सभा में आकर प्रार्थना किया कि हे प्रभो यदि हमें कोईसेवा कार्य नहीं बतलावेंगे तो हम भोजन नहीं करेंगे ऐसी प्रार्थना बार बार किया चक्रवर्ती सगर विचारने लगा कौन सा काम इन्हें सौंपा जाय विचार करते करते स्मरण में आया कि एक धर्म कार्य बाकी है, कैलाश पर्वत पर राजा भरत चक्रवर्ती अर्हंत भगवान के बहत्तर मन्दिरों का निर्माण किया है, तुम वहां जाकर कैलाश पर्वत के चारों ओर खाई खोदकर गङ्गा नदी से वेष्ठित कर दो क्योंकि आगामी काल में कोई मनुष्य यहां पूजन करने के लिये नहीं आ सकता है और

किसी मानव के द्वारा कोई उपसर्ग न हो, यह आज्ञा पाते ही सभी पुत्रों ने जाकर बज्रदण्ड से खाई खोदकर तैयार कर दिया अब मणिकेतु देव ने सोचाकि सगर चक्रवर्ती को सँसार से विरक्त करने का फिर प्रयत्न करना चाहिये, मित्र का अप्रिय वचन भी हित कारक होता है और न विचार कर हित करने के लिये चल पड़ा और कैलाश पर्वत पर आगया और शीघ्र ही एक क्रूर सर्प का आकार धारण करके अहँकार धारण करने वाले सगर पुत्रों को राख के समान अचेत कर दिया। यह बात मन्त्रियों ने भी सगर चक्रवर्ती से नहीं कहा कदाचित् मोह में प्राणांत न हो जावें। मणिकेतु देव एक ब्राह्मण के रूप धारण करके आया और खूब रोने लगा शोक के साथ कहने लगा कि हे राजाधिराज भू मण्डल के रक्षक होने के कारण आप हमारी प्रार्थना सुनिमे, और कुछ नहीं मेरी रक्षा करो क्योंकि यमराज ने मेरे साथ बड़ा अत्याचार किया है मेरे निरपराध पुत्रको यमराज उठा ले गया है उसे दण्ड देकर मेरे पुत्र को उससे छुड़ा कर मुझे प्रदान कीजिये मेरे कोई दूसरा पुत्र नहीं है इसलिये राजन् जल्दी करो यदि आप मेरे पुत्र को जल्दी ही न छुड़ा लावेंगे तो मैं भी यमराज का ग्रास बन जाऊँगा अर्थात् आत्म हत्या कर लूँगा। गर्विष्ट पुरुष क्या क्या नहीं करता है? अपक्व फल खाने वाला पुरुष क्या पक्व फल छोड़ सकता है? ब्राह्मण की बात सुनकर सगर चक्रवर्ती हँसकर कहने लगा कि हे ब्राह्मण! यदि उस यमराज को कोई बश कर सकता है तो केवल सिद्ध भगवान ही कर सकते हैं। दूसरा साधारण बालगोपाल पुरुष कुछ नहीं कर सकता है क्या तुमने इस बात को नहीं सुना है कईलोग बिना आयु पूर्ण किये मर जाते हैं कई लोग आयु पूर्ण करके मर जाते हैं सभी लोगों की आयु यमराज के आधीन है, तब वेष धारी ब्राह्मण बोला ठीक है, यदि यमराज से कोई बच नहीं सकता है तो सत्य बात के कहने में अब क्या भय है, हे महाराज मेरे पुत्र को नहीं किन्तु आपके सभी पुत्रों को यमराज ले गया है आप उससे बैर करके लड़ भिड़ करके जिस तरह बने अपने पुत्रों को छुड़ा कर लाइये। ब्राह्मण के वाक्य को सुनकर जैसे वृक्ष के ऊपर बिजली गिरने से दो टुकड़े हो जाते हैं, वैसे ही चक्रवर्ती का हृदय दुख से वेध गया और सिंहासन से नीचे अचेत होकर नीचे गिर पड़ा चन्दनादि शीतल उपचार से चक्रवर्ती को सचेत किया गया और मृदु २ बचनों से सम्बोधित किया। चक्रवर्ती उठकर विचारने लगा किः—

धर्मपत्नी ला० बाबूलाल जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

टिकैतनगर में

तारीख ३१-८-५३ दिन सोमवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में बाल शिक्षा के बारे में कहा कि:—

यह ख्याल रखना चाहिये जब तक माता पिता जीवित हैं, कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान नहीं है तब तक बड़े होने पर भी बालक ही है बालक अवस्था में विद्या पढ़ने पर विशेष ध्यान देना चाहिये बड़ी अवस्था होने पर तो विद्या का अध्ययन होना बहुत मुश्किल है यह नियम है बच्चे पाँच साल तक ही माता के आधीन रहते हैं। पाँच साल के बाद गुरू के आधीन रहकर जब तक विद्याध्ययन पूर्ण न हो घर वापस नहीं आ सकते थे आज कल यह परिपाटी न रहने के कारण बालकों की विचार शक्ति उतनी अच्छी नहीं रही बल्कि नष्ट हो चुका है धर्म सम्बन्ध भी जाता रहा।

माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठिता।
सभा मध्ये न शोभंते हंस मध्ये बको यथा

उन बालकों के माता पिता शत्रु हैं जिन्होंने अपने बालकों को विद्याध्ययन नहीं कराया, उन बालकों का सभा मध्य परिहास होता है उनकी कोई शोभा नहीं होती है जैसे हँस के बीच कौआ शोभा को नहीं प्राप्त होता है, किन्तु ध्यान रखना चाहिये कि बालकों को लौकिक शिक्षा के साथ २ धार्मिक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यक्ता है धार्मिक शिक्षा के बिना मनुष्य जीवन पशु के समान है, विद्या विहीना पशुभि समाना" धर्म ज्ञान से शून्य होने के कारण बहुत से बालक स्वेच्छाचारी होने लगे हैं वे निरंकुशता उच्छृङ्खलता, दुर्व्यसन, झूठ, कपट चोरी, व्यभिचारी आलस्य, प्रमाद आदि होनेके कारण अनेक दोषों व दुर्गुणों के शिकार होते चले जारहे हैं जिससे उनके लोक, परलोक दोनों नष्ट हो रहे हैं उनको पाश्चात्य वेष-भूषा अच्छी लगती है, तपस्वी त्यागी, भगवान में ग्लानि हो रही है, यह सब पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव है, कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि पाश्चात्य शिक्षा न दी जाय। किन्तु पहले धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर लेव फिर पीछे दूसरी शिक्षा लो ऐसा न हो सके तो धार्मिक शिक्षा के साथ पाश्चात्य शिक्षा का अभ्यास कराया जाय, यद्यपि विष का

संसार का कल्याण किया जा सकता है यानी मन वाणी और शरीर द्वारा की हुई-उन्नति क्रिया को सदाचार कहते हैं और अंतःकरण के जो भाव हैं उन्हें ही सद्गुण कहते हैं, अब यहां प्रश्न होता है कि ऐसे धर्म की प्राप्ति कैसे हो? इसका उत्तर यही है कि सत्पुरुषों की संगति से इस धर्म की प्राप्त हो सकती है, मनुस्मृति में भी मनु जी ने कहा है:—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्यच प्रियमात्मनः।
एतत् चतुर्विध प्राहुः साक्षात् धर्म स्यल क्षणम्॥

सत्सङ्ग से ही सबकी एकता हो सकती है इनके परस्पर विरोध होने पर भी सत्सङ्ग से यथार्थ निर्णय हो सकता है अर्थात् महा पुरुषों का सत्सङ्ग करना चाहिये याद रहे कि इतिहास और पुराण तथा अन्य ग्रन्थों में भी धर्म की व्याख्या है और उनमें दी हुई शिक्षा भी धर्म है अतः मनुष्य को उचित है कि प्राण भले ही चले जावें पर धर्म को नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि धर्म से उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है जो मनुष्य शास्त्रमेंकहेहुये धर्मका पालनकरत है वहउसी धर्म के साथ मरण करके उत्तम गति को प्राप्त होता है इसलिये हे बालकों तुम्हारे लिये सबसे उपयोगी बात यह है कि सबसे पहले धर्म धारण करने का प्रयत्न करो और तो बहुत सी बातें हैं परन्तु नीचे लिखी छः बातें ऐसी हैं कि उन्हें पालन करने की चेष्टा करनी चाहिये जीवन और प्राण के समान समझनी चाहिये।

सदाचार, संयम, ब्रह्मचर्य का पालन, विद्याभ्यास, माता और गुरुओं की सेवा और भगवान की भक्ति, शास्त्रानुकूल सम्पूर्ण विहित कर्मों का नाम सदाचार है इस न्याय से संयम ब्रह्मचर्य का पालन, विद्याभ्यास, माता पिता और गुरुओं की सेवा, और भगवान की भक्ति सभी शास्त्र विहित होने के कारण सदाचार के भीतर आजाती हैं, इनके अतिरिक्त और बहुत सी बातें बालकों के लिये उपयोगी हैं जिनमें यहां सदाचार के नाम से कुछ बातें बतलाई जाती हैं। बालकों को प्रथम आचरण की ओर ध्यान देना चाहिये क्योंकि आचरण से ही सारे धर्म की उन्नति होती है महाभारत अनुशासन पर्व में कहा है:—

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्प्यते आचार प्रभो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।

सब शास्त्रोंमें सबसे पहिले आचार की ही कल्पना की आचार से ही धर्म उत्पन्न होता है धर्मके प्रभु भी अच्युत भगवान हैं इस प्रकार के मुख्य २भेदहैं १ सदाचार,२शौचाचार जल मृत्ति का इत्यादि से शरीर भोजन, वस्त्रादि को शास्त्र अनुकूल साफ करना शौचा चार है और निष कपट भावसे अंत रंग की मलीनता को निकाल देना भी शौचा चार है सबके साथ योग्य शास्त्र नुसार उत्तम कर्मों का आचरण करना सदा चार है इससे दुर्गुणों का नाश होकर बाहेर और भीतर की पवित्रता होती है तथा सद गुणों का विकाश होता है। प्रथम प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व उठकर शौच स्नान करना चाहिये और फिर नित्य क्रिया करके सबसे बड़े माता पिता, अथवा और कुछ लोगों को जो बड़े हों उन्हें प्रणाम करना चाहिये तथा इसके बाद शरीर की स्वस्थता के लिये शीर्षासन इत्यादि आसनों के द्वारा व्यायाम करना चाहिये फिर दुग्ध पान करके विद्याध्ययन करना चाहिये व्यायाम सायं काल

करने की इच्छा हो तो बिना दुग्ध पान किये विद्याभ्यास करें, विद्या पढने के बाद दिन के दूसरे पहर ठीक समय पर कुछ धर्म का अध्ययन करे, स्वध्याय करे उसके बाद साधन के साथ सात्विक और पवित्र भोजन करें, और यहा ख्याल रखे कि भूख से अधिक भोजन कभी नकरें, अधिक भोजन करना आरोग्य, पुन्य, और आयु की नाशक है लोक निंद्य है अत एव उसे त्याग देना चाहिये भोजन के वाद दिनमें सोना और मार्ग चलना नहीं चाहिये विद्याभ्यास भी एक घंटे ठहर करही करना चाहिये विद्याभ्यास करने के वाद सायं काल के समय स्नान करके नित्य कर्म करना चाहिये, और सूर्य अस्त के पहिले भोजन कर लेना चाहिये इस तरह भोजन करने से रात्रि में उड़ने वाले कृमि और कीटों से जो भोजन में पड जाते हैं रक्षा हो जायगी रात्रि में दूसरे पहर के प्रारंभ में शयन करना चाहिये कम से कम बालक को सात घंटे सोना चाहिये नित्य कर्म से भगवान की जाप करना चाहिये, ध्यान तथा स्तुति करना चाहिये, सवेरे उठकर शौचादि व स्नान करके नित्य देव, गुरु, शास्त्र की पूजा करनी चाहिये। जब बालकों की आयु आठ वर्ष की हो जाय तब शास्त्रनुसार बालकों को यज्ञोपवीत लेना चाहिए उपनयन का काल, सोलह साल तक ब्राह्मणों के लिए बाईस साल तक क्षत्रियों के चौबीस साल तक वैश्य के लिए शास्त्रों में कहा है, व्याहके पहले उपनयन संस्कार होना चाहिए है बालकों संसार में सबसे बढ़कर प्रेम है प्रेम साक्षात् परमात्मा का स्वरूप है इसलिए जहां प्रेम है वहीं सुख और शांति का साम्राज्य है वह प्रेम स्वार्थ त्याग पूर्वक दूसरों की आत्मा को सुख पहुँचाने से होता है माता पिता गुरुजनों की बात ही क्या है सभी के साथ सदा सर्वदा हित मित बचन बोलकर मन से वाणी से शरीर से जिस तरह से किसी दूसरे का हित हो वैसा बर्ताव करना चाहिए दूसरों की वस्तु को चुराना, छीनना तो दूर रहा यदि कोई तुम्हें दे तो भी अपने स्वार्थ के लिए न लेकर प्रेम और मीठे बचनों से संतोषित करना चाहिए यदि लेने का विशेष आग्रह करे तो आवश्यकतानुसार ही लेना चाहिए दूसरे के अवगुणों की तरफ ख्याल न करके उनके गुणों की तरफ देखना चाहिए, किसी कि निंदा व चुगली कभी करना ही नहीं चाहिए इसमें और दूसरे का हित किंचित भी नहीं है यदि आवश्यकता हो तो उसके गुणों की प्रसंशा करना चाहिए मान बड़ाई प्रतिष्ठा की इच्छा तो कभी नहीं करना चाहिए किन्तु अपने आप प्राप्त होने पर भी कल्याण में बाधक होने के कारण स्वीकार न करके मन में दुःख या संकोच न करना चाहिए बड़ों की सभी आज्ञायें हमेशा पालन करना चाहिए।

श्री परम पूज्य १०५ माता ब्रह्ममती जी ने जनता प्रेस, बाराबकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख १-६-५३ दिन मङ्गलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि सृष्टि के विषय में अनेक मत हैं।
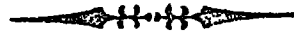
जैन शास्त्रों में सृष्टि का कर्त्ता कोई नहीं माना गया है, जैन शास्त्रों में जगत को अनादि माना है, काल अनादि, जीव अनादि, कर्म अनादि इस प्रकार यह वस्तुयें अनादि मानी गई हैं शुभा शुभ कर्मों के द्वारा जो जीवात्मा में कर्मों का संबंध होता है इसी लिये जीव को कर्म माना है सृष्टि का कोई कर्त्ता हर्त्ता नहीं है अनादि काल से यही क्रम चला आया है और चलता रहेगा, यह जैन सिद्धांत है परंतु इस विषय में अनेकों वाद विवाद उपस्थित होते हैं इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टि वा दिनः सर्व मेव मिन्ति लोकम्। कृत्स्नं लोकं महेश्वरादयः सादियर्यन्तम्

सृष्टि वाद वाले सम्पूर्ण जगत को कृत्रिम मानते हैं अर्थात् रचा हुआ मानते हैं और उसमें महेश्वरादि से सृष्ठि की उत्पत्ति मानने वाले सृष्टि वादी हैं यह सम्पूर्ण लोग जगत को यदि शांत मानते हैं, यानी मैं ईश्वर हूं, वैसे ईश्वर से लोक उत्पन्न हुआ है जैन शास्त्र में इस प्रकार मानी का अर्थ अहंकार, ममकार जीवात्मा के अन्दर उत्पन्न होता है तो आत्मा के साथ कर्म आकर चिपट जाता है मानी का अर्थ यही आत्मा जिसने शुभाशुभ कर्म किये कर्मों का कर्त्ता हुआ-इस दृष्टि से यही जीवात्मा, महेश्वर जगत कर्त्ता हुआ बहुत से जीव कहते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत मनुका रचा हुआ है ऐसा सनपद ब्राह्मण में कहा है—मनवेह वै प्रातः अवनेग्मुदक माज हर्य थेंद पाणिभ्याम घने जनाया हरन्ति एवं तस्या बने निजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे मनु जी के पास प्रातःकाल में मृत्य गया हाथ धोते और तर्पण के लिये जल का आहरण करने लगे तबमनु जीने जैसे इतर लोक वैदिक कर्म निष्ठ पुरुष इस आने योग्य जल को तर्पण करने के लिये अपने दोनों हाथों करके ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार तर्पण करते हुये मनु जी ने जल अपने हस्त से बुलाया, उस समय मनु जी के हाथ में मछली का बच्चा अकस्मात आया उसको देखकर मनु जी सोचने लगे - तब वह मत्स्य मनु जी की ओर देख कर बोला कि हे मनु! तू

मेरा पालन कर और हे मनु ! मैं तेरा पालन करूंगा—तब उस मत्स्य की मनुष्य वाणी सुन कर मनुजी ने कहाकि तू मेरा पालन कैसे करैगा क्यों कि तू महा तुच्छ जीव है.तब मत्स्य ने कहा हे राजन् तू मुझे छोटा सा मत समझ, यह सम्पूर्ण प्रजा जो कुछ तेरे देखने में आती है बड़े भारी जल में डूब जायगा कुछ नहीं रहेगा तब मैं उस प्रलय काल के जल समूह से तेरा पालन करूंगा अर्थात् उस प्रलय काल के जल में तुझे नहीं डूबने दूंगा तब मनु जी ने कहा कि तेरा पालन कैसे होगा वह भी मेरे प्रति कहिये मत्स्य ने कहा कि जब तक हम लोग छोटे रहते हैं तब तक बहुत से पापी धीवरादि हमको मारते हैं और छोटी छोटी मछलियों को बड़े बड़े मत्स्य निगल जाते हैं इससे प्रथम समय के लिये मुझे अपने कमंडल में रख लिजिये, तब मनुजी ने उस मत्स्य को कमंडल में जल भरवाकर रख लिया, जब वह मत्स्य उस कमंडल से अधिक बढ गया तब मनु जी ने पूछा कि मैं अब किस तरह तेरा पालन करूं, तब मत्स्य ने कहा हे राजन् एक बड़ा तालाब या नदी में मेरा पालन कर तब मनु जी ने वैसा ही किया तब वह मत्स्य नदी और तालाब से भी बढ गया तब मनु जी ने फिर पूछा कि अब मैं तेरा पालन कैसे करूं—सो उस मत्स्य ने कहा कि एक बडी नदी खुदवा कर उसमें पालन करो, मनु जी ने वैसाही किया परन्तु वह मत्स्य उससे भी बढ गया तव मनु जी ने पूछा कि मैं अब कैसे पालन करूं तव मत्स्य ने कहा कि मुझे समुद्रमें छोड दीजिये तो मैं नाश रहित हो जाऊंगा इस पर मनु जी ने उस नदी को खुदवा कर समुद्र में मिलवा दिया तब वह मत्स्य उसमें चला गया वह मत्स्य समुद्र में जाते ही शीघ्र ही बहुत बड़ा हो गया और फिर क्षण क्षण में बढ़ने लगा तब वह मत्स्य उस तिथि को जिस समय जल का समूह आने वाला था बतला कर कहने लगा कि जब वह समय आवे तब तुम एक उत्तम नाव बनवाकर उसमें बैठकर मेरी उपासना करना तथा स्मरण करना जब जलों का समूह आवेगा तब मैं तेरी नौका के पास ही आजाऊंगा और तेरा पालन करूंगा मनु जी उसी के अनुसार उस मत्स्य को धारण पोषण कर समुद्र में पहुँचा दिया वह मनु उस तिथि और सम्वत में नाव बनवा कर मत्स्य की उपासने करने लगे, तदनन्तर मनु महाराज जलों के समूह को उठा देखकर नाव में आरूढ़ हो गये तब वह मत्स्य मनु जी के समीप आकर ऊपर को उछला, तब मनु जी ने उस मत्स्य भगवान को उछलते देखा तो उसके शरीर पर नौका का रस्सा डाल दिया, उससे वह मत्स्य नौका को खींचते हुये उत्तर गिरि हिमालय नाम के पर्वत के पास शीघ्र ही पहुँचा दिया पर्वत के नीचे नौका को पहुँचा कर मत्स्य कहने लगा कि हे राजन् ! निश्चय करके मैं तुझे प्रलय जल में डूबने से पालन कर रहा हूँ, अब तुम नौका को इस वृक्ष के साथ बांध दो तुम इस पर्वत के शिखर पर जब तक जल रहै तब तक रहना, और इस रस्से को मत खोलना और जल जैसे जैसे कम होता जाय उसी तरह तुम उतर उतर कर नीचे आना ऐसे मनु जी को समझा कर मत्स्य जल में चला गया और मनु जी भी मत्स्य के कथनानुसार जैसे जल उतरता था पर्वत से उतर कर नीचे आये वह भी केवल पर्वत के ऊपर से एक

मनु का अवतरण हुआ सो एक मनु ही उस समय बाकी बचे और सम्पूर्ण प्रजा जल समूह में लय हो गई, तब मनु ने प्रजा जनों की रचना के लिये तपस्या के द्वारा पर्याय लोचन कर तपोनुष्ठान किया इसीसे यह प्रजा मानवीय नाम से अब तक प्रसिद्ध है इस प्रकार शनपद ब्राह्मण मानते हैं, और कितनेही लोग यह मानते हैं कि प्रजा पति ने सृष्टि की रचना की है कहा भी है कि--के चिन्प्राहुसूर्ति स्त्रिधा गनिका हरिः शिवो ब्रह्मा ॥ शंभु वंजिज गतः कर्त्ता विष्णु क्रिया ब्रह्मा कितने ही कहते है कि एक परमेश्वर की मूर्त्ति की तीन आकृतियां हैं ब्रह्मा विष्णु महेश उसमें शिव तो जगत का कारण रूप है कर्त्ता है ब्रह्मा किया है। कितने कहते हैं कि जगत को विष्णु का रचा हुआ है किन्हीं लोग काल कृत मानते हैं, और किन्हीं लोगो का कहना है कि जगत में जो कुछ हो रहा है ईश्वर की मर्जी से हो रहा है कितने ही कहते हैं कि ब्रह्मा ने उत्पन्न किया है, अव्यक्त प्रधान प्रकृति उस अव्यक्त से सर्व जगत उत्पन्न होता है ऐसा कपिल के मत वाले मानते हैं। और शक्य मत वाले, विज्ञाना द्वैत क्षणिक रूप जगत मानते हैं और कोई सनानीय जगत को शून्य रूप मानते हैं, पुरुष प्रभव के चित् दैवात् के चित् स्वभावतः अक्षरात् क्षरिन के छित् , के चिदरा जेभ्द्वं मदत् । १ । किन्हीं पुरुष से उत्पन्न हुआ जगतको मानते हैं अथवा पुरुष मय सर्व जगत मानते हैं और कितने स्वभाव से जगत की उत्पत्ति मानते हैं किन्हीं लोग अक्षर ब्रह्म के क्षरणे से अर्थात् माया जगत की उत्पत्ति मानते हैं, एको डंरद् भविष्या मिति वचनात् अर्थात् और कितने ही अंडे से जगत उत्पत्ति मानते हैं, कोई कहते हैं कि स्वतः ही उत्पन्न हुआ है और कोई कहते हैं कि यह जगत भूतों के विकार से उत्पन्न हुआ है, कोई कोई जगत को अनेक रूप मानते हैं इस प्रकार सृष्टि के बारे में अनेक विकल्प हैं, वैष्णव मत वाले कहते हैं कि जले विष्णु थले विष्णु राकाशे विष्णु मालिनी, विष्णु माला कुले लोके, नास्ति किम् चिद वैश्यवम् जल में विष्णु थल में विष्णु, आकाश में विष्णु सभी विष्णुकी माला पंकति है इसी से सर्व लोक भरा हुआ है इस लिये संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो विष्णु का रूप न हो। काल वादी कहते हैं काल ही जीव को उत्पन्न करता है और काल ही प्रजा का संहार करता है और जीव को सोते हुये रक्षा करण रूप काल ही जगाया है इस लिये काल का उल्लंघना दुष्कर है ईश्वर वादी कहते हैं जैसे प्रजा की रक्षा के लिये राजा होता है उसी तरह सर्व जगत की रक्षा के लिये ईश्वर है रक्षा के लिये जीवत्मा ईश्वर जगाना है—

ब्राह्मणवादी—कहते हैं कि यह जगत तम में लीन था स्थित था प्रलय काल में सूक्ष्म रूप करके प्रकृति में लीन था, प्रकृति भी ब्रह्मात्मा करके अव्यक्त थी अलग नहीं इस वास्ते ही प्रत्यक्ष नहीं था अलक्षणम् अनुमान का विषय भी नहीं था, अपर्त तर्क तर्क यितु शक्यं अर्थात् तर्क करने योग्य भी नहीं था वाचक स्थूल शब्द से अभाव से, इस वास्ते ही अवि ज्ञेयथा, अर्थ पत्ति के भी आगोचर था इस वास्ते सब ओर से सुप्त की तरह स्वीकार करने में असमर्थ था, सांख्य लोग कहते हैं कि पंच भूत, नानाप्रकार के ध्येय, संस्थान यह सब अव्यक्त प्रधान

से ही उत्पन्न होते हैं, अर्थात् जगत की उत्पति प्रधान से मनाते हैं, बौद्ध मत वाले कहते हैं। कि जो कुछ दिखाई देता है सर्व विज्ञान मात्र है क्योंकि जो दीखता है असमर्थ होके भासमान होता है, अर्थात् युक्ति प्रमाण से अपने स्वरूप को धारा में समर्थ नहीं है, हे जैन! जैसे तू कहता है मैं कोप, कीटकादि का दर्शन करता हूं, या करूंगा, परन्तु जो मुझको दीखता है उपाधि रूप से मान होता है न कि यथार्थरूप से, पुरुषवादी कहते हैं कि पुरुष और आत्मा एक अवधारण में है जो कर्म और प्रधानादि के विच्छेदार्थ में है यह सर्व प्रत्यक्ष वर्तमान वस्त्र प्रतीत काल में हुआ और आगामी काल में होगा मुक्ति और संसार यह सभी पुरुष हैं—अमृतस्य अभरण भव, काई शान प्रभू हैं, यदीति यतवेतिच शब्द के लोप होने से जो अन्येन आहार करके अतिरोहित अतियय से वृद्धि को प्राप्त होता है दैववादी कहते हैं कि स्वच्छंद, धन, गुण, विद्या, धर्माचरण सुख दुःखादि नहीं है किन्तु काल रूपी यात पर चढ़ादेव उसके वश से जहां ले जाता है वहां जाना पड़ता है। स्वभाव वादी कहते हैं कौन पुरुष कंप्कों नीक्षण करता है? और भृग पक्षियों का रङ्ग विरङ्ग कौन करता है? अपितु कोई भी नहीं करता है। स्वभाव से ही सब प्रवृत्ति होते हैं इस वास्ते अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं होता है अतएव पुरुष का प्रयत्न ठीक नहीं है, अक्षरवादी कहते हैं कि अक्षर से अक्षर का काल उत्पन्न हुआ है इस हेतु से काल को व्यापक माना है व्यापकादि प्रकृति प्रयन्त को ही सृष्टि कहते हैं—कोई दूसरा ऐसा कहते हैं प्रथम अक्षरांश उसमें से वायु उत्पन्न उस वायु से तेज उत्पन्न हुआ तेजस जल उत्पन्न हुआ और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई—

अन्डवादी कहते हैं। नारायण भगवान परम अव्यक्त से व्यक्त अन्डा उत्पन्न हुआ और उस अन्डे के अन्दर से सात द्वीप वाली पृथ्वी गर्भेदिक, वर्ष नेचात्मा जल, समुद्र, जरायु, मनुष्य, पर्वत उस अन्डे के भीतर सात-सात अर्थात् चौदह भुवन प्रतिष्ठित है, उस अन्डे के भीतर भगवान एक वर्ष रहकर उस अन्डे के दो भाग किया, उस दोनों टुकड़ों में ऊपरले टुकड़े को आकाश और दूसरे नीचले टुकड़े को भूमि निर्माण किया, अहेतुवादी कहते हैं कि प्रति समय होने वाले विचित्र भाव है वह अहेतु से ही उत्पन्न होते हैं, और भाव से रहित द्रव्य सम्भव नहीं है आकाश के पुष्प की तरह परिणामवादी कहते हैं कि समय २ प्रति आत्मा २ प्रति प्राप्त हुआ सर्व भावों को सम्भव होता है इच्छा से कुछ भी नहीं होता है। क्योंकि स्वेच्छा क्रमवर्तिनी है और परिणाम युगपत हैं। युगपत सर्व पदार्थों में हैं—

नियतवादी कहते हैं नियत बलाश्रय से जो अर्थ प्राप्त होने योग्य हैं वह सब शुभ व अशुभ पुरुषों को अवश्यमेव होता है जीवों के बहुत से प्रयत्न करने पर भी कुछ नहीं होता है और जो होनहार है उसको कदापि नाश नहीं होता है। भूतवादी कहते हैं पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु यह चार तत्व हैं उसके समुदाय से ही शरीर, इंद्रिय विषय अवज्ञा हैं और मदशक्ति की तरह चैतन्य उत्पन्न होता है—जल बुद्बुद की तरह जीव है। अचेतन विशिष्ट काया है सो ही पुरुष है।

धर्मपत्नी ला० प्रेमचन्द जी जैन ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख २-६-५३ दिन बुधवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि मुक्ति का स्वरूप क्या है।
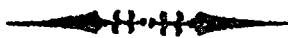
आत्मा सुख स्वरूप है और अनादि काल से मुक्तावस्था में है आत्मा मात्र सुख की अभिलाषा करते हैं दुखी होना कोई नहीं चाहता। "सुखमे भूयात्, दुःखमे भासम् भू" हमें सुख ही सुख हो दुःख का कदापि अनुभव न करें यही सबकी इच्छा रहती है, अनुकूलता में सुख है। प्रतिकूलता में दुख है इसलिये शास्त्रों में सुख दुख की परिभाषा करते हुये कहा है:—

अनुकूल वेदनीयं सुखम् प्रतिकूल वेदनीयं दुखम्, ऐसा तर्क संग्रह में कहा है, अपनी स्थिति से प्रायः सन्तोष नहीं है किसी के पास कुछ रुपये हैं वह चाहता है हजार रुपये मेरे पास हो जायँ जिसके पास नहीं हैं वह रुपया की इच्छा करता है हजार वाले लाख की इच्छा, लाख वाले करोड़ की करोड़ वाला राजा होने की इच्छा करता है राजा चक्रवर्ती बनने की इच्छा करता है चक्रवर्ती इन्द्र बनने की इच्छा करता है तात्पर्य यह है कि सभी अधिक से अधिक सुख की इच्छा करते हैं अल्प कोई नहीं चाहता है कहा भी है— नाल्पे सुख मस्ति भूमैव सुखं, अल्पमें सुख नहीं है असीम में सुख है तात्पर्य यह है कि "हम निरवधि, निरतिशय सुख चाहते हैं हम ऐसा सुख चाहते हैं जिसका कभी अन्त न हो, वह सुख ऐसा चाहिये जिसमें दुःख का संमिश्रण न हो ओर पूर्ण हो अतः जिससे बढ़कर दूसराकोई सुख न हो, इस प्रकार के सुख की खोज हृदय में मनुष्य के सदा बनी रहती है जब तक जीव को अनन्त सुख प्राप्त नहीं होगा तब तक भटकना बन्द नहीं हो सकता है यही अनन्त सुख जीव का असली सुख है और इससे कृत कृत्य हो जाता है इसके बाद कुछ करना या पाना बाकी नहीं रह जाता है यही परम सुख है और परम गति है, इस संघर्ष मय जीवनमें कोलाहल मय जीवन के पीछे ऐसे सुखमय स्थिति है जहां पहुँचने पर सभी हल हो जाता है, सारे दुख, सारे शोक, नष्ट हो जाते हैं सारे क्लेशों का अत्यंताभाव हो जाता है सारे सभी क्लेश, दुख, संताप, सभी विलीन हो जाते हैं इसबात

रहते हैं इससे यह सिद्ध है कि पृथ्वी के सुख से अधिक सुख स्वर्ग में होने पर भी यह सुख सम्पूर्ण सुख नहीं है और न पूर्ण है अतः पूर्ण सुख चाहने वालों को इससे सन्तोष नहीं हो सकता है परन्तु विचार करना चाहिये कि सुख न तो पृथ्वी पर किसी जगह है और न स्वर्ग लोक में यह सुख अपने ही पास अपनी आत्मा के भीतर है इस प्रकार का सुख प्राप्त होने के बाद वह परमानन्द को प्राप्त है और जन्म मृत्यु का भय कभी नहीं रहता है हर्ष, शोक, समस्त विकार को छोड़ देता है उसका अज्ञान सदा के लिये नष्ट हो जाता है उसकी अविद्या रूपी गुत्थी खुल जाती है वह सन्देह रहित हो जाता है उसके सब प्रकार के क्लेश कर्म नष्ट हो जाते हैं उसको कुछ करना बाकी नहीं रहता है वह कृत कृत्य हो जाता है एक बार अपने आतमसुख के प्राप्त हो जाने के बाद संसार चक्र से छूट जाता है और सदा निरतिशय सुखों का अस्वा- करता है यह सुख योगियों को प्राप्त होता है। यह जीव का अन्तिम लक्ष्य है इसको प्राप्त करने के लिये मनुष्य पर्याय में जन्म लेता है अतः मनुष्य जन्म पाकर इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये मनुष्य जन्म में ही इसका साधन हो सकता है और इसलिये यह मनुष्य जन्म हमको मिला है इसे प्राप्त करने पर मनुष्य जन्म सार्थक है अन्यथा भोग सुख तो हमें पशु, पक्षी इत्यादि योनियों में हमें प्राप्त हो सकता है

परन्तु वास्तविक सुख का साधन इन योनियों में नहीं बन सकता है यह केवल मनुष्य जन्म में मिल सकता है भोगोंसे हमारी तृप्ति हो सकती होती तो कभी की होगई होती परन्तु अनेक जन्मों में न मालूम कितने असंख्य भोग भोगे परन्तु तृप्ति उनसे नहीं हुई इससे यही सिद्ध होता है कि भोगों में सुख नहीं है विष्णु भगवान ने समुद्र मंथन करके चौदह रत्न निकाले थे परन्तु उनसे भी तृप्ति नहीं हुई, अतएव यह समझना चाहिये कि इन भोगों की आशक्ति का त्याग करने में ही सुख है भोगों में आशक्ति रहने पर नहीं इसी मनुष्य जन्म में अपना काम बना लेना चाहिये क्योंकि न मालूम फिर कभी यह दुर्लभ अवसर हमें मिले या न मिले मनुष्य जन्म की दुर्लभता कही गई है बहुत दुर्लभता से यह मनुष्य जन्म प्राप्त होता है कहा है कि:—

अस्मिन्नपार संसार पारावारे शरीरिणाम ।
महारत्न मिवानर्घं मानुष्यमिह दुर्लभम् ॥

अपार संसार रूपी समुद्रमें जो प्राणियों का मनुष्य जन्म रूपी महान रत्न डूब जाय तो फिर हाथ लगना बहुत मुश्किल है मनुष्य जन्म पा करके यदि पुण्य योग से भगवान अर्हंत का उपदेश ग्रहण नहीं किया तो क्या लाभ यदि मनुष्य रत्न की रक्षा नहीं की गई तो लुटेरे इस बीच बाजार में लूट लेंगे यदि ऐसी रीतिसे छिन गया तो फिर कैसे मिल सकता है, कदाचित् किसी मनुष्य को अमूल्य रत्न मिल जाय तो उसकी रक्षा का कितना प्रयत्न किया जाता है परन्तु यदि वही रत्न प्रमाद के वशीभूत होकर फिर समुद्र में गिर जाय तो फिर भला कैसे मिल सकता है कदाचित मिले तो कितना परिश्रम अधिक करना पड़ेगा थकावट आ जायगी मुख की शोभा विगड़ जायगी हृदय में उसके मिलने की कितनी चिंता करना पड़ेगी क्योंकि उसे मालूम था कि ऐसा अमूल्य रत्न जल्दी मिलने वाला नहीं है, परन्तु यदि मनुष्य जन्म रूपी रत्न एक बार मिल जाय और उसे प्रमाद के कारण गवां दे तो कितनी मूर्खता होगी। संसार समुद्र अत्यन्त गहरा है यदि इसके भीतर यह रत्न गिर पड़े तो कैसे मिल सकता है बड़े आश्चर्य की बात है कि उसके गिरने पर पाने की अत्यन्त चेष्टा करता है परन्तु फिर उसका मिलना अवश्य प्रायः मालूम देता है। एक मनुष्य द्यूतक्रीडा (जुआ खेलना) में आसक्त था उसने सुवर्ण की गिन्नियों से भरी एक थैली और एक दिव्य पांसा देकर किसी को शहर में भेजा वह पुरुष एक बड़े रास्ते पर बैठ करके बोलने लगा कि हे भाइयो ! जो कोई जुआ में जीतेगा उनको सुवर्ण और मोतियों से भरी हुई थैली दी जायगी और यदि मैं उसको जीतूँगा तो एक मुहर सोने की लूँगा यह सुनकर बहुत से लोग उनके साथ जुआ खेला परन्तु उस पुरुष को कोई जीतनेमें समर्थ नहीं हुआ किन्तु उसका हारना दुर्लभ था, इसी तरह एक मनुष्य हार जाय तो फिर जीतना दुर्लभ है।

२—दुनिया में तमाम, सरसों, जौ, बाजरा अनेक प्रकार के धान्य अनेक लोगों से लाकर एकत्रित किया जाय और अन्त में जिनका २ धान्य है पहिचान कर अलग अलग कर लेने को कहा जाय तो यह बात दुर्लभ है इसीतरह मनुष्य जन्म का मिलना दुर्लभ है।

३—एक राज के एक सौ आठ खम्भों का

सभा मण्डप बना हुआ था प्रत्येक स्तंभ के भीतर एक सौ आठ हँस थे एक पुत्र को राजगद्दी पर बैठने की लालसा उत्पन्न हुई, यह बात मन्त्री द्वारा राजा को ज्ञात होगई, उसने सब पुत्रों को इकट्ठा करके कहा कि भाई जिनको राज्य लेने की इच्छा हो वह हमारे साथ जुआ खेलै और जो कोई मुझे जीत ले इस प्रमाण से कि एक सौ आठ दांव खेलै और एक साथ जीत हो तो एक हंस की जीत हो, नहीं तो सब व्यर्थ हो जायगा तब राज पुत्रों का मन जीतने में समर्थ नहीं हो सका इसी तरह मनुष्य जन्म मिलना अत्यन्त दुर्लभ है।

४—किसी एक सेठ के पास परम्परा से चले आये अनेक रत्नों का संग्रह था परन्तु किसी दिन उसमें से एक रत्न भी बाहर नहीं निकाला था, एक दिन वह देशांतर व्यापार के लिये चला गया पुत्रों ने विचार किया कि मेरे पिताने लोभ वश कभी रत्न बाहर नहीं निकालता है घर में करोड़ों का सोना मोहर होते हुये अपनी ध्वजा नहीं चढ़ाई गई है अतएव उन पुत्रों ने देशांतर से आये हुये व्यापारियों के हाथ रत्नों को बेच दिया और कोटि ध्वजा बनाकर खड़ी कर दिया सेठ वापस आये और रत्नों की बिक्री की बात जान लिया तब अपने पुत्रों से कहा कि जल्दी से जल्दी उन बिके हुये रत्नों को ले आवो परन्तु जैसे उन रत्नों का मिलना अत्यन्त दुर्लभ वैसे ही मनुष्य जन्म भी मिलना असम्भव है।

५—एक दिन मूल और भिक्षु उज्जैन के बाहर एक कोठरी में सोये हुये थे. सोते सोते उन्होंने चन्द्रपान करते देखा, तुरन्त मूलदेव उठ करके णमोकार मन्त्र की जाप्य करके भगवान का दर्शन किया और फलफूल ले जाकर निमित्त ज्ञानी के पास रखकर अपने स्वप्नों का फल पूछने के लिये निवेदन किया तब अष्टांग निमित्त से जान करके वह निमित्तज्ञानी पंडित ने कहा कि पहले मेरी पुत्री के साथ अपना विवाह करने का वचन दो मूलदेव् ने स्वीकार कर लिया। निमित्तज्ञानी ने कहा कि आज से सातवें दिन तुम्हें राज्य की प्राप्त होगी और उसी के कहे अनुसार होगया दूसरा भिक्षु भी गुरु के पास जाकर कहा कि मैंने भी सम्पूर्ण चंद्र पान किया है, गुरु अज्ञानी थे उन्होंने कहा कि तुम्हें घी गुड़ वाली रोटी मिलेगी, कालान्तर में ऐसा ही हुआ इसी प्रकार मूलदेव का दृष्टांत ठीक था कि रोज २ चन्द्र पान दुर्लभ है इसी तरह मनुष्य जन्म बार बार पाना अत्यन्त दुलभ है।

इस प्रकार यह जीवन नाना प्रकार की योनियों में भटकता हुआ अत्यन्त थक जाता है तो भगवान उसे मनुष्य का शरीर देते और जन्म मरण से छूटने का सुन्दर अवसर प्रदान करते हैं परन्तु यह जीव कृतघ्न की भांति इस अवसर को खो देता है। और अन्त में पछिताता है।

धर्मपत्नी ला० पन्नालाल जी जैन ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख ३-६-५३ दिन गुरुवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में बताया कि आत्म कल्याण कैसे हो सकता है।
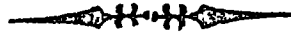
आत्मकल्याण करने के लिये कई व्यक्तियों को गुरू मानना पड़ता है तभी कल्याण हो सकता है अन्यथा नहीं।

पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, चन्द्रमा, अग्नि, कपोत (कबूतर) अजगर, सागर पतंग भ्रमर, गज, मधुमक्खी, हरिण, मीन, पिंगला, कुरलपक्षी बालक, कुमारी कन्या, बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी तितली इस प्रकार हे जीवों मैंने उपरोक्त चौबीस गुरुओं के आचरण द्वारा ग्राह्य और अग्राह्य वस्तुओं को सीखा है इसका उदाहरण भी श्रीमद्भागवत् के द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

(१) परम हँस कहते हैं कि मैंने पृथ्वी से क्षमा और स्थिरता सीखी है जैसे पृथ्वी को लोग खोदते हैं उस पर मलमूत्र त्याग करते हैं। परन्तु पृथ्वी कभी विचलित नहीं होती सबको अपनी गोद में रखती है, वैसे ही साधु पुरुषों को उचित है कि दुष्ट पुरुषों के अपकारी लोगों की अनुगत समझकर उनका उपकार करता रहै क्रोध न करै पृथ्वी के समान क्षमावान बन कर रहै।

(२) मैंने पर्वतों और वृक्षों से परोपकार वृत्ति सीखी है, जैसे पर्वत और वृक्ष, तृण, फूल, फल, झरने के द्वारा अपनी कुलचेष्टा परोपकार में लगा देता है, उसी तरह साधु को स्वपर कल्याण के लिये अटल बना रहै, वृक्ष को लोग काटते हैं उखाड़ डालते हैं, जला डालते हैं परन्तु वृक्ष किसी पर रुष्ट न होकर, लकड़ी, कोयला इत्यादि उपयोगी चीजें मनुष्य को देते हैं उसी तरह साधुओं को परोपकार वृत्ति में लगा रहना चाहिये।

(३) मैंने वायु से जो सीखा है वह सुनो वायु दो प्रकार की होती है एक भीतर की वायु एक बाहर की वायु—प्राण वायु केवल आहार मात्र की अपेक्षा रखकर रूप रसादि इन्द्रियों के विषयों की अपेक्षा ही रखता है उसी प्रकार साधुओं को जिससे ज्ञान नष्ट न हो वाणी और मनव्यग्र न हो ऐसा मित आहार मात्र ग्रहण करै और उसी में संतुष्ट रहे जैसे वाह्य वायु गंधादि गुणों तथा शीत उष्णादि धर्मों से युक्त प्रतीत होकर भी वास्तव में निर्लिप्त ही रहता है वैसे

ही आत्मज्ञानी साधु अहँभावना के कारण विविध शारीरिक धर्मों से युक्त होकर भी अपने शारीरिक गुण दोषों से प्रतीति समझें और पूर्व संस्कार वश विषय भोग करता हुआ भी निर्लिप्त रहे।

४—आकाशसे जो सीखा है सुनो आंतरिक आकाश घटादि के भीतर होकर भी अखण्ड निर्लिप्त समन्वय रूपसे व्यापक है वैसे ही साधु को चाहिये देह के भीतर स्थित होकर आत्मा को अखण्ड, अविनाशी, निर्लिप्त समझे आकाश में सभी द्रव्योंके होनेपर सबसे आकाश निर्लिप्त रहता है।

५—जल से जो शिक्षा पाई है उसे सुनो! साधु को चाहिये कि जल के समान निर्मल स्वाभाविक स्निग्ध तीर्थ रूप हो जैसे तीर्थ मन को पवित्र करता है वैसे साधु अपने विहार में समस्त लोगों को मधुर मिष्ट भाषणों से पवित्र करते हैं।

६—अग्नि से जो शिक्षा ली है उसे सुनो! साधु को अग्नि के समान तेजस्वी और ज्ञान वान होना चाहिये तप से दुरन्त दीप्तिशाली मनोविकार से विचलित न होने वाला जो प्राप्त हो उसी से उदर पूर्ति कर ले जो मिले वही पेट में रक्खे, अर्थात् आहार से अधिक न संचय करे जितेंद्रिय के समान साधु को उचित है कि अग्नि के समान प्रच्छन्न रहे और भूत तथा भविष्यत काल के पापों को नष्ट करता रहे। साधु को विचारना चाहिये कि जैसे अग्नि के भीतर जो काष्टादि डाला जाता है सभी भस्म कर देती है उसी तरह सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देना चाहिये।

७—चन्द्रमा की कला के द्वारा एक कला घटती बढ़ती रहती है परन्तु चन्द्र मण्डल घटता बढ़ता नहीं है वैसे ही योगी को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत की सम्पूर्ण अवस्थायें काल की देह जनितहै आत्मा की नहीं है जैसे अग्नि की शिखा उत्पन्न होकर नष्ट होती है अग्नि नष्ट होती है उसी तरह जल प्रवाह के तुल्य आत्मा की स्थिति घटती बढ़ती है परन्तु आत्मा की अवस्था घटती बढ़ती नहीं है।

८—सूर्य से जो सीखा है वह सुनो! जैसे सूर्य किरणों के द्वारा पृथ्वी से जल को खींचता है और समयानुसार वर्षा भी करता है वैसे ही साधु को चाहिये कि विषयों का सेवन करता हुआ समय पर आगत जनों का स्वागत करे परन्तु सूर्य के समान निर्लिप्त रहे।

(९) कबूतर से जो सीखा है वह सुनो साधु को चाहिये कि किसी से अतिस्नेह नहीं करना चाहिये और न किसी में अति आसक्ति करना चाहिये, यदि अतिस्नेह या आसक्ति करता है तो दीन बुद्धि कबूतर के समान संताप को प्राप्त होता है, सुनो एक भिवासी कबूतर किसी वृक्षपर झोंझ लगाकर कई वर्ष रहा, गृहस्थ कबूतर और कबूतरी को परस्पर स्नेह था दोनों एक बुद्धि एक हृदयी थे दोनों साथ रहते थे, दोनों बेखटके एक साथ सोते, उठते, बैठते, खाते, पीते, टहलते, बात चीत करते थे, इसी से वह कबूतरी जो २ कामना करती थी उसे यह अजितेन्द्रि का भी कबूतर कष्ट उठाकर भी पूर्ण करता था, अब कबूतरी को गर्भ रहा और समयानुसार कई अँडे दिये कुछ दिन में वह अन्डे फूटकर छोटे २ बच्चे

बन गए, और उनकी कलकूँजादि को सुनकर वह दोनों उनको पालने लगे, माता पिता कोमल स्पर्शों से तथा उनके सुन्दर मुंह को देखकर प्रति दिन खुश होते थे, कबूतरी मोहित भाव से प्रति पालन कर रही थी एक दिन आहार के लिए बच्चों को अकेला छोड़कर बनमें इधर उधर दोनों घूमने लगे दूर २ देर तक घूमने चले गए इतनेमें एक चिड़ीमार उधर आ निकला, और कबूतर के बच्चों को विचरता देखकर जाल बिछाकर बैठ गया बच्चे जाल में फँस गए इतने में माता पिता भी आ गए उनको देखकर परस्पर आकुल व्याकुल होकर सब चिल्लाने लगे बच्चों के स्नेह में ग्रसित कबूतरी भी जाल में आकर फँस गई, कबूतर ने देखा कि बच्चे और स्त्री दोनों फँस गये तो विलाप करनेलगा अहो! मैं अत्यन्त अभागी और मन्द मति हूं, मेरी इस दुर्गति कोई देखे कि मैं अभी तृप्त नहीं हुआ था, धर्म, अर्थ काम कामा, धन, रूप मेरा घर विगड़ गया मेरी पत्नी मुझे अपना इष्टदेव मानती थी, किंतु वह अपने पुत्रों के साथ स्वर्ग जारही है—अब इस शून्य घर में कैसे रहूँ और कैसे जीवन यापन करूँ किन्तु वह यह न विचार किया कि यह सब तो फँस गये हैं मैं जाल में न फँसू किंतु मोह वश वह भी जाल में फँस गया, चिड़ीमार सब को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ जो व्यक्ति अशांत हृदय अपने कुटुम्ब के पालन पोषण में सदैव आसक्त रहता है वह कबूतर के समान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है कहा भी है किः—

यः प्राप्य मानुषँलोकं मुक्तिद्वारमयावृतम्।
गृहेषु खगवत सक्त मारूढ़च्युतंविदुः॥

यह मनुष्य जन्म खुला हुआ मुक्ति का द्वार है इसको पाकर भी जो उक्तपक्षी की भांति आसक्त होता है वह मूढ़ है उसको शास्त्र में आरूढ़च्युत कहते हैं।

(१०) सागर से एक बात सीखी है उसे भी सुनो—जिसका प्रवाह रूका है उसी सागर की भाँति गंभीर शाँत, दुःखगाह, अनतिक्रमणीय अनंतपार, और अक्षोभ होकर रहना चाहिये, सागर जैसे वर्षा की नदियों का जल पाकर भी अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता है, और ग्रीष्म-ऋतु में नदियों का जल न पाकर सूखता नहीं है वैसे ही साधु को समृद्ध कामनाओं के पाने पर सुखी दुःखी नहीं होना चाहिए समभाव रखे

११—मैंने पतङ्ग से भी सीखा है जो लोग विषयों में फँसे रहते हैं वे देव रूपी मायावनी स्त्रियों के फन्दे में फँसकर दुखों को जैसे पतंग दीप में गिरकर भस्म हो जाता है स्वयम् अपने को साधु भस्म कर लेता है।

१२—भ्रमर से सीखा है कि शरीर की शक्ति शिथिल न हो इसलिये साधु को उतना ही हित मित आहार ग्रहण करना चाहिये, मधुकर की भांति थोड़ा थोड़ा अन्न किसी घर में जाकर खाना चाहिये किसी को सताना नहीं चाहिये, ऐसा करने से अपनी भी हानि है जैसे कोई भ्रमर लोभी हुआ एक ही कमल पर बैठा रहता है तो सायंकाल सूर्यास्त में कमल की संपुट में फँसकर प्राण दे देता है वैसे ही मुनि भी स्वाद के वशीभूत होकर एक ही घर में फन्स कर नष्ट होता है।

१३—मधु मक्षिका से जो सीखा है उसे सुनो जो कुछ भी भिक्षा में मिले उसे सायंकाल या प्रातःकाल के लिये रख न छोड़े हाथ और पेट

को पात्र बनावे मधु मक्षिका की भांति संचय न करे जो भिक्षु सायंकाल या सवेरे के लिये संचय करता है वह मधु मक्षिका की भांति नष्ट हो जाता है।

१४—हाथी से जो शिक्षा मिली है उसे सुनो हाथी जैसे हथिनी को देखकर फंस जाता है। वैसे साधु को स्पर्शेन्द्रिय के वशीभूत नहीं होना चाहिये।

(१५) मधुहारी से जो सीखा है वह सुनो जैसे मधुहारी पता लगाकर मधु निकाल ले जाता है और उसे खाता है दूसरों को भी खिलाता है, वैसे ही कँजूस आदमियों का धन लोग पता लगाकर चुरा ले जाते हैं और खर्च करते हैं, मौज शौक उड़ाते हैं, इससे यह तात्पर्य निकलता है कि जो लोग धन पाकर दान और भोग नहीं करते उससे दूसरे ही लोग लाभ उठाते हैं।

(१६) मैंने हरिण से भी सीखा है—कि बनवासी यती ग्राम्यगीतों को न सुने, देखो व्याध के मनोहर गीतों को सुनकर हरिण मोहित होकर जाल में फंस जाता है।

(१७) मछली से जो सीखा है उसे सुनो जैसे मीन चंचल जिह्वा के वश होकर मांस के टुकड़े को लोह के ऊपर लगा हुआ खाकर कांटे से अपने को चुभा लेता है, वैसे ही रस के स्वाद से मोहित मूढ़ मनुष्य जिह्वा लंपट बन कर अपनी दुर्गति करा लेता है अतएव सबसे पहिले जिह्वा को अपने वश में करना चाहिये।

(१८) कुरल पक्षी से जो सीखा है वह सुनो—मनुष्य को जो वस्तु अत्यन्त प्यारी है। उसका संचय ही दुःखकारी है। इस सत्य सिद्धांत को जानने वाला अकिंचन पुरुष अत्यंत सुख को प्राप्त होता है, मांस युक्त कुरल पक्षी को अन्य सबल पक्षी मारते हैं उस मांस को छोड़कर वह सुख से रहता है।

(१९) मैंने बालकसे जो सुना है उसे सुनो मेरे निकट मान अपमान कुछ नहीं है, मुझे परिवार इत्यादि की कुछ चिंता नहीं है मैं बालक के समान फिरा करता हूँ और अपने आप ही मगन रहता हूँ इस तरह प्रसन्नता पूर्वक संसार में रहता हूँ।

(२०) कुंवारी कन्या से सीखा है उसे सुनो—एक कुंवारी के व्याह के लिये कुछ लोग उसके घर आये उसके माता पिता कार्य वश कहीं गये थे इससे स्वयम् कन्या ने आगतों की अभ्यर्थना की, और उनके भोजनके लिये एकांत में धान कूटने लगी, धान के कूटने से उसकी चूड़ियों में खनखनाहट होने लगी, लज्जा जनक शब्द समझकर कन्या ने सम्पूर्ण चूड़ियां तोड़ डाली एक २ रहने दी, शब्द होना-बन्द हो गया इससे यह शिक्षा मिली कि वह लोगों का सम्बंध संसर्ग अच्छा नहीं होता है या दो जनों का एकत्र रहना कलह का कारण है इसलिये सबसे अलग अकेले ही रहना चाहिये जिसमें किसी प्रकार की खटपट कभी न हो—

तारादेवी धर्मपत्नी ला० महावीरप्रसार जी जैन बाराबंकी निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

तारीख ४-६-५३ दिन शुक्रवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में बताया कि चित्त को शांति कैसे हो ?
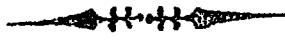
अधिक संसार में लालसा होने के कारण चित्त में शांति नहीं होती है जब तक धनी नहीं होता है तब तक मनुष्य समझता है कि मैं धनी हो जाऊंगा तब सुखी हो जाऊंगा परन्तु ज्यों ज्यों धन बढ़ता है त्यों त्यों अभाव बढ़ता है अभावों की पूर्ति के लिये चित्त प्रशांत रहता है, फिर तुम्हीं कहो कि—"प्रशांतस्यकुतः सुखम्" प्रशांत को सुख कहां आपके घर में धन पुत्र की प्रचरता, मनमाने भोग सहज ही प्राप्त है परन्तु प्रशांत की आग तो और भी जोर से धधकती है कहा है:—

आशा नाम नदी मनोरथ जलाः तृष्णा तरंगा कुला। राग ग्राहवती वितर्क विहगा धैर्य द्रुमध्वं-सिनी मोहा वर्त सुदुस्तरा डनि गहना प्रोतुंग चितातटी। तस्याः पारगता विशुद्ध मन सो नंद-न्ति योगीश्वराया। आशा एक नदी है जिसमें इच्छा रूपी जल भरा है, तृष्णा उस नदी की तरंगे हैं प्रीति उसका सागर है तर्क वितर्क हलोले उसमें पक्षी है मोह उसमें भ्रमर हैं चिंता कनारे है यह आशा नदी धैर्य रूपी वृक्षको गिरा-देने वाली है, इस कारण इसका पार होना बहुत कठिन है शुद्ध चित्त योगी उसको पार करके बड़ा आनंद उपयोग करते हैं।

Hope is just like a river with water in the shape of desires, agitaledly cur-seuts in the shape of avarice with alligators in the shape of attach ments with watery birds in the shape of motely designs. with the power of destroying one's persener-auce in place of uproo tweg trees. Difficult to cross wiuing to the presence whiat poots in the shape of wardly love exeedingly deep and possessing banks in the shape of very great cores. Happy are the greet yagis. who pure in mind have succeeded in stepping over it. कहा है—

नजातु कामः का माना मुप भोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूयएवाभि वर्धते ॥
यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
एक स्यापिन पर्याप्तं नदित्य त्तितृषां त्यजेत ॥

मोह के द्वारा कामना की निवृति नहीं होती है जैसे अग्नि में ईंधन पड़ने से वह और जोर से जलती है पृथ्वी में जितना धन, सुवर्ण, स्त्री, इत्यादि है वह सब यदि एक ही मनुष्य को मिल जाये तो भी उस की तृप्ति नहीं हो सकती इस लिये प्यास को बुझाना चाहिये बृद्धावस्था में और सभी बातें पुरानी पड़ जाती हैं परन्तु तृष्णा बुड्ढ़ी नहीं होती है इस लिये इसमें जब तक वैराग्य रूपी जल धारा न छोडी जाय इसकी शांति नहीं हो सकती, है आपके चित्तकी शांति का उपाय यह है कि घर और बन से मोह हटाकर भगवान से प्रेम करिये, और दान करने की रुचि रखिये, भूखे लोगों को अन्न बाँटिये रोते हुये लोगों को पथ्य और सेवा की व्यवस्था करके उनके संताप को दूर किजिये, रोगी को दवा देकर उनकी सेवा सुश्रुषा करो, निर्धन को धन देकर उनके अभाव को पूरा करो ऊपर से बने हुये इज्जतदार लोगों की गुप्त सहायता करो उनकी सेवा करो, इस प्रकार का बर्ताव करना, मनुष्य जनको सार्थक करता है वेही मनुष्य धन्य गिने जाते हैं इस सेवा में भी यह भाव रखो कि मैं तो निमित्त मात्र हूँ। किसी को कुछ देकर कभी अभिमान न करना चाहिये, इस बात को ख्याल रखिये आपकी सभी बातों का प्रतिकार हो जायगा, धन पुत्रादि वस्तुओं में नित्य प्रति अतित्यता का विचार करो यह मेरे नहीं हैं ऐसा बार बार विचार करो।

१-शरीर मैं नही हूं इससे शरीर के बसने के पहिले भी मैं था, इसके नाश के बाद भी मैं रहूँगा नाम कल्पित है मैं इसका द्रष्टा हूँ, इनके मान अपमान से मेरा अपमान नहीं होता है इनके नाश से मेरा नाश कभी नहीं होता है।

२-प्रति दिन भगवान अर्हंत के नाम की माला, एक, दो, अथवा चार मालओं की जाप किया करो समयानुसार भगवान का ध्यान भी करो।

३-प्रति दिन रात को जब नींद खुलै भगवान की स्तुति करना, प्रार्थना अपना हृदय खोलकर खूब मनसे करना चाहिये उसमें बनावट न हो।

४ सप्ताह में एक दिन एकांत में रह कर अष्टमी और चतुर्दशी के दिन मौन रहने का अभ्यास करना चाहिये और सप्ताह भर के पापों पर विचार करके अगले सप्ताह में साधन करने पर दृढ़ संकल्प रहना चाहिये

५-जिससे मनो मालिन्य हो उनसे सच्चे हृदय से क्षमा मांगलेना चाहिये इसमें अपना अपमान न समझना चाहिये।

६-धन और पद के मान का यथा साध्य विचार पूर्वक त्याग करना चाहिये।

७-हमेशा भगवान के मार्ग पर दृढ़ता रहे कभी बोलने का प्रसंग मिल जाय तो धर्म के अनुसार सभ्यता के साथ बोलने का प्रयत्न करो,

८-सरकारी अफसरों से मिलना जुलना बहुत काम कर देना चाहिये।

९-अधिक मसाले की चीजें और मिठाई नहीं खाना चाहिये।

१०-चापलूस, खुशामद, और अपनी बड़ाई करने वाले से सदा दूर रहना चाहिये

११-रोज पुराण पुरुषों के चरित्र और उनकी कथाओं को पढ़ना चाहिये

१२-घर में अपने को दो दिन के अतिथि की

तरह समझना चाहिये, मालिकी के भावों का त्याग करना चाहिये।

१३-शतरंज, ताश, खेलने का त्याग करना चाहिये सदा रेस खेलने का भी त्याग करना चाहिये।

१४-कभी किसी से कठोर वचन नहीं कहना चाहिये।

१५-अपने दोषों पर सर्वदा विचार करो असली कारण तो आपका अपना उच्छृ खेल मन ही है जो मनुष्य दूसरों के प्रति बुरे भावों का विचार करता है उसको दूसरे से बुरे भाव प्रति हिंसादि मिलने का भय बना ही रहता है, वह आपही अपने लिये दुःखों को बुलाता है इतना ही नहीं वह जगत में दुःखों को फैलाता है

जिसके भीतर जैसे विचार और भाव होते हैं उसके, भाव भंगी से वही विचार प्रतिपल से बाहर निकलते रहते हैं, उसके वैसे ही रोम रोम से स्वाभाविक परमाणु निकल निकल कर दूर दूर तक फैलते रहते हैं और न्यूनाधिक रूप से दूसरे पर भी अपना प्रभाव डालते हैं सजातीय विचार वालों पर अधिक विजातिय विचार वालों पर कम जैसे प्लेग, चेचक, है जाके कीटाणु फैलकर लोगों को रोगी बनाते हैं वैसे ही, मनुष्य के भीतर से घृणा, वैर, शोक, विषाद चिन्ता, क्रोध, मान माया लोभ, डाह इत्यादि परमाणु फैलकर रोगी बना देते हैं, आपके घर में कलह है इससे दूसरे पक्षका ही दोष है यह बात नहीं मानना चाहिये, वस्तुतः ऐसा है भी नहीं उसमें आपका भी दोष है वही कलह फैलकर अपने को और दूसरे लोगोंको दुःखी बनारहा है, आपही अपना मित्र है आपही अपना शत्रु है जिसके द्वारा मन, वाणी आदि जीते हैं वह अपना मित्र है और जिसके द्वारा नहीं जीते जाते हैं आपही आप शत्रु मान रखा है, जैसे अभ्यास होता है मन वैसा ही बन जाता है दोष दर्शन का अभ्यास हो जाने पर विना हुये ही लोगों के दोष दिखाई देने लगते हैं इस लिये धैर्य और शांति के साथ अपने दोषों को खोजने का प्रयत्न कीजिये जब अपने दोष दिखने लगेंगे तो दूसरे के दोष नहीं दिखाई देंगे फिर आगे चलकर यह दशा हो जायगी कि—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न देखा कोय।
जो तन देखा आपना मुझसे बुरा न कोय॥

जब दूसरे के दोषों की बात याद ही नहीं रहेगी अपने दोष प्रत्यक्ष अपने सामने रहेंगे तो स्वाभाव ही अपने दोषों के लिये पश्चाताप रहेगा, और नम्रता पूर्वक सबसे क्षमा चाहने की प्रवृत्ति बलवती हो उठेगी।

दुःखों से छूटने का उपाय

आर्थिक स्थिति अच्छी न रहने के कारण मनमें अशांति रहना स्वाभाविक है बिना अर्थ के संसार में कोई काम नहीं निकलता है बात बात में अर्थ की आवश्यकता है, ऐसी हालत में अर्थ का अभाव क्लेश दायक होगा ही, परंतु प्रारब्ध के विधान के अनुसार आप क्या कर सकते हैं, यथा साध्य उपाय करना चाहिये सो आप कर ही रहे हैं उद्योग करने पर फल नहीं होता तो सिवाय संतोष के और कोई कारण नहीं है, ऋण

होना चाहिये, और साधारण खर्च करने के बाद कुछ बचे तो ऋण दाताओं को देना चाहिये, और इसमें मुख्य साधन धर्म ही है, धर्म ही से ऋण मुक्त हो सकता है धर्म में किंचित्त भी न्यूनता न करना चाहिये उसीसे सबसे मुक्ति मिलकर सुख मिल सकता है। परन्तु यह बात ख्याल रखना चाहिये कि—ऋण पूरा उतर जाने पर स्त्री पुत्रों का भरण पोषण हो जाने पर और पूरी कमाई कर लेने पर ही कुछ संग्रह होने पर ही पूजन भजन करना चाहिये, और दान देना चाहिये ऐसा कभी नहीं सोचे क्योंकि इसका कोई ठीक नहीं है कि यह तीनों बातें कब पूरी हो जावेगी, अगर धर्म विश्वास और दृढ़ रहे तो यह सभी बातें पूरी भी हो सकती हैं, परन्तु यह बातें पूरी होने पर भगवान की पूजा करने में मन नहीं लगेगा—यह बात याद रखना चाहिये कि एक २ अभाव की पूर्ति पचासों नये २ अभावों की पूर्ति करने का कारण बनती है, मन रहा भी तो शरीर पहिले छूटगया तो अपने को क्या लाभ ! इसलिये धर्माराधना और उसकी भावना हमेशा करते रहना चाहिये अतएव साथ ही ऋण चुकाने तथा आजीविका उपार्जन करने की चेष्टा भी करते रहना चाहिये भजन पूजा के साथ ऋण चुक गया तब तो दोनों काम हो गये नहीं तो भजन हुआ ही हुआ।

शोक नाशक उपाय

आप जानते हैं। कि यहां सब चीजें विनाशीक हैं कोई स्थिर नहीं है जैसे मुसाफिर सब एक जगह एकत्रित होते हैं परन्तु समय आने पर अपनी २ गाड़ी में सभी लोग यत्र तत्र चले जाते हैं वैसे ही यह संसार मुसाफिर खाना है, अपने कर्म भोग के लिये जीव यहाँ आते हैं और कर्म भोग होने पर चले जाते हैं। यहाँ का कोई सम्बन्ध नित्य नहीं है—इसलिये आपको स्वयं शोक न करके घर वालों को भी समझना चाहिये, मृत्यु ऐसी चीज है कि जिस पर किसी का वश नहीं चलता है विषाद या शोक करने पर जराभी लाभ नहीं होता है जिस जीव का देह से सम्बन्ध छूट गया फिर उस देह से वह कभी मिल नहीं सकता, शोक से रोग बढ़ता है चित्त में अनेक प्रकार के अशांति भाव आते हैं—और यदि पूर्व जन्म को प्राप्त नहीं हो गया है तो उन्हें यह देखकर शोक होता है इसलिये हम तो शोक कभी न करें और उनको भी शोक न उत्पन्न हो शांति मिले ऐसी भगवान से प्रार्थना करे, परमार्थ दृष्टि से तो आत्मा अमर है हम लोगों को जो शोक होता है वह ममत्व के कारण होता है, विचार करने पर मालूम होता है कि ममत्व मोह से उत्पन्न होता है इसमें कुछ सार नहीं है।

निर्मलकुमार बाबूचन्द जी जैन विलहरा निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया।

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख ५-६-५३ दिन शनिवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि प्राचीन और आधुनिक संस्कृति में क्या अन्तर है

जगत स्वभावतः परिवर्तन शील है। जगत और उसका पर्याय 'संसार'? दोनों ही शब्द गति वाचक है संसारमें जितनी वस्तुएं हैं हमेशा परिवर्तन शील होती रहती हैं। और क्षण क्षण में संसारिक चीजें बदलनी रहती हैं। इस संसार में अगर स्थिर है तो एक आत्मा ही स्थिर है और अविनाशी अखंड पदार्थ है। इसके अतिरिक्त जितनी संसार में चीजे हैं परिवर्तन तथा परिगमन होते हुए अन्त में नाशवन्त या क्षणिक है।

इसी तरह हमेशा भारतीय संस्कृति भी हमेशा समय के निमित्त के अनुसार क्रम से उन्नित और अवनिति को प्राप्त होती रहती है एक समय था हमारा भारतवर्ष सभ्य देशों का शिरमोर बना हुआ था। विद्या बुद्धि, कला कौशल्य धन बल जन बल धर्म बल ज्ञान विज्ञान इत्यादि में सबसे बढ़ा चढ़ा था। लौकिक एवं पार लौकीक सभी प्रकार की विद्यावों का यह उद्‌गम स्थान था यहीं से आत्मज्ञान रूपी सूर्य का उदय होकर मनुष्य का अज्ञानरूपी अन्धकार नष्ट होकर तीन लोक में इसका प्रकाश चारों ओर दस दिशाओं में फैला था। मोक्ष का द्वार यहां से खुलता है इसके अलावा मोक्ष जाने का द्वार इधर अन्य जगह में नहीं है, यही एक महान दरवाजा है, यह दरवाजा महान-महान पुण्यशाली पुरुषों के द्वारा खुलता रहा है। आज कल उन महान पुण्यशाली पुरुषों के अभाव के कारण इस कलिकाल पंचमकाल में मोक्ष रूपी द्वार का खुलना वन्द होगया है। इसका कारण यही है कि पुण्य पुरुषों के संस्कृति नष्ट होने के कारण या उनका सच्चा मार्ग लोप करनेसे आज कल हमारे कल्याणकारी संस्कृति का लोप और पाश्चात्य संस्कृति का प्रचार इससे हमारा उन्नति मार्ग अवनति बन गया है पहले सभी भारतवर्ष के कोने कोने में आर्य संस्कृति का प्रचार प्रत्यक्ष परोक्ष दोनों रूप से फैला हुआ था ओर आज भी फैल रहा है परन्तु जो संस्कृति का कोने कोने में उन्नति का प्रभाव था, वह उच्च संस्कृति का प्रभाव आज कल के समय के

पश्चात्य संस्कृति ने आकर अपना स्वरूप खो देना चाहती है और उसको मिटाने के लिये चारों ओर से उस पर विजातीय संस्कृतियों के आक्रमण हो रहे हैं। परन्तु युग के प्रभाव से चाहे संस्कृति का कितना ही ह्रास क्यों न हो जावे परन्तु इसका लोप नहीं हो सकता क्योंकि इसकी नीति अत्यन्त सुदृढ़ है, भारतीय संस्कृति का आधार उसकी आध्यात्मिकता है यही कारण है कि जहां ग्रीस, रोम, मिश्र आदि देशों की सभ्यता केवल स्मृति मात्र रह गई है। भारतीय सभ्यता इतना विजातीय आक्रमण होने के पश्चात भी अपना सिर ऊँचा किये हुये खड़ी है इस युग में भी जब हम भारतवासी सदियों से दासता की बेड़ी में जकड़े हुये थे हमारी सभ्यता संसार में आदर का विषय बनी हुई है सभ्यता के कायल हैं और उसकी भूरि २ प्रशंसा करते हैं यही नहीं हम घोर अशांति के युग में जब कि सम्पूर्ण विश्व में हाहाकार मचा हुआ है, शांति चाहने वाले योरोप के निवासी भारत की ओर ही आंख ऊपर उठाये हुये भारत की ओर निहार रहे हैं और आशा करते हैं कि यहीं से विश्व शांति और विश्व प्रेम का सन्देश प्राप्त हो सकता है यहां के प्राचीन और अर्वाचीन आध्यात्मिक साहित्य को बड़े चावसे पढ़ते हैं और यहां के प्रमुख व्यक्तियों का बड़ा सन्मान करते हैं, आज हम भारतीय उन्हीं ऋषि मुनियों द्वारा परिवर्तित प्राचीन आर्य सभ्यता तथा वतमान भोग प्रधान पाश्चात्य संस्कृति की तुलना में कुछ विचार करके देखो भारतीय संस्कृति का आधार उसकी आध्यत्मिकता है, पारलौकिक तथा लौकिक सभी को आध्यात्मिक दृष्टि से विचार किया जाता है यहां का धर्म यहां का आचार व्यवहार यहां की राजनीति समाज नीति, युद्धनीति यहां की शासन व्यवस्था समाज व्यवस्था यहां का रहनसहन, शिक्षा व्यवस्था, वेषभूषा, आहार व्यवहार सब कुछ आध्यात्मिक नीति पर निर्भर है आज का शिक्षित संसार विश्व बंधुत्व के आदर्श को सबसे ऊँचा मानता है विश्व की सभी जातियां सभी बन्धु सभी राष्ट्र आपस में भाई २ की तरह रहें यही उनकी सबसे ऊँची कल्पना है परन्तु भारतीय आदर्श इससे कहीं अधिक ऊँचा है भाई भाई में कलह हो सकता है और होता है राम लक्ष्मण के समान भाई इस पंचम काल में नहीं हो सकते है। राम लक्ष्मण के समान भ्रातृ प्रेम कहीं अत्यंत देखनेको नहीं मिलसकता है ऐसी स्थिति में बन्धुत्व का आदर्श प्रेम की परमावधि नहीं माना जा सकता भारतीय संस्कृति मनुष्य मात्र तक ही नहीं वरनस्थावर, पंचेद्रिय प्राणी तक आत्मबुद्धि करने का उपदेश देती है वह हमें सिखलाती है कि प्राणी मात्र को अपना आत्म समझो Live & Let Live ! स्वयं जीवो और दूसरे को जीने दो, अर्थात् सभी प्राणी को आत्मा समझने से कलह सम्भव नहीं क्योंकि कलहतो दूसरों से ही होता है, ऐसा समझने से किसी का द्वेष तथा घृणा नहीं हो सकता है अपना अहित कोई नहीं करना चाहेगा, सबका आपस में स्वाभाविक प्रेम होता है यही पुरानी धार्मिक शिक्षा हमें भारतीय संस्कृति में प्राप्त होती है, इसी प्रकार आज की सबसे ऊँची शिक्षा मनुष्य मात्र में प्रेम करना है किंतु भारतीय संस्कृति में मनुष्य ही नहीं किंतु प्राणी मात्र

के ऊपर प्रेम करने को कहती है स्वयं जीवो दूसरों को जीने दो, स्वयं शांति रखो दूसरों को शांति रखने के लिये कहो यही भारतीय संस्कृति का उपदेश है बार २ यही कहती है कि सर्वभूत हितेरताः किसी प्राणी को कष्ट पहुँचाने की बात तो दूर रही हमारे शास्त्रों ने तो वृक्षों को पौधों को काटने की मनाही की है, जहां मूक प्राणी की हिंसा सभी राष्ट्रों में और सभी देशों में वैध मानी गई है वहां हमारे यहां अनावश्यक एक पत्ता तक तोड़ने की आज्ञा नहीं देती है एक दतून तोड़ने के लिये भी वृक्ष से प्रार्थना करने की आवश्यकता बताई है यहां तक आवश्यकता से अधिक स्नान करने जल गिराने का निषेध किया गया है भोजन के लिये पके हुये फल अनाज को ही ग्रहण करने की आज्ञा दी गई है, शरीर से किसी प्राणी को तो कष्ट पहुँचाना दूर, मन और वाणी से कष्ट पहुँचाने को हिंसा मानी गई है यहां तक कि सारे जीवों की सेवा गृहस्थ के लिये अनिवार्य मानी गई है शास्त्रों में इस बारे में ऐसा आदेश है कि दूसरों के प्रति वैसा वर्ताव नहीं करना चाहिये जिसे हम अपने लिये पसन्द नहीं करते हैं, ।

आत्मनऽप्रति कूलानि परेषां नसमा चरेत् ॥

हमारे पूर्व ऋषियों ने प्राणी मात्र के लिये यही प्रार्थना की है कि:—

सर्वे भवंतु सुखिना, सर्वेसन्तु निरामयाः ।
सर्वेभद्राणिपश्यन्तु माकश्चिद्दुःख भागभवेत ॥

सब प्राणी सुखी हो सभी निरोग रहें सभी कल्याण के भागी बनें कोई दुखी नहीं हो ।

संसार के प्रति इससे ऊँची भावना और क्या हो सकती है, सब लोग जीवें सब लोग सुखीरहें सभी फूलेंफलें भारतीय संस्कृतिका यही उद्देश्य है, यही कारण है कि शक्ति रहते हुये भी भारतवासियों ने दूसरे देशों पर अन्याय आक्रमण नहीं किया धार्मिक सहिष्णुता का भाव तो भारतीयों को सदा से आदर्श रहा है। उन्होंने तलवार के जोर पर कभी विधर्मियों को अपने धर्म पर लाने की चेष्टा नहीं की धर्म के मामलों पर उन्होंने दूसरों के अत्याचार सहे परन्तु धार्मिक मामलों में उन्होंने किसी के ऊपर अत्याचार नहीं किया, विधर्मियों को उन्होंने सदा आश्रय दिया और इस तरह उन्होंने अपनी अतिथिता का परिचय दिया इन सिद्धान्तों को संसार अँशतः भी मानने लगें तो व्यर्थ के झगड़ों से बहुत बच जावें और सर्वत्र सुख शांति का साम्राज्य हो जावे, अब रही ज्ञान की बात लो, लौकिक एवम् पार लौकिक दोनों प्रकार के ज्ञान को पूर्व काल में हमारे देश ने बहुत बड़ी उन्नति की थी, हमारे सभी धर्म ग्रन्थ संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ माने जाते हैं उन्हीं ग्रथोंमें लौकिक और पारलौकिक ज्ञान भरा पड़ा है काव्य साहित्य, ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद गंधर्ववेद, (गान विद्या) दर्शन शास्त्र अर्थ शास्त्र शिल्प विद्या चित्रकला, तक्षण कला, पशु पालन, कृषि विज्ञान राजनीति आदि सभी विषयों में हमारे देश ने आश्चर्यजनक उन्नतिकी थी, जिसका सारासंसार आजतक लोहा मानता है, अध्यात्मविद्या और परलोक विद्या की समता आजतक तो किसी देश ने नहीं किया भविष्य में कोई कर सकेगा। यह संदेहास्पद है, परलोक के सम्बन्ध में जो बातें हमारे शास्त्रों में बतलाई गई है उनका खंडन आजतक कोई नहीं कर सकता है, खंडन

करना तो दूर रहा वहां तक कोई पहुँच, नहीं पाया यहां के पूर्व जन्म के सिद्धांत को बड़े २ ज्ञानिक मानने लगे हैं, हमारे शास्त्रों में तथा अन्य धर्मिक ग्रन्थों में जो ज्ञान भरा पड़ा है। उसकी प्रशँसा सारे जगत वाले मुक्त कन्ठ से कररहे हैं। हमारे सिद्धांत तो ज्ञानकी परमावधि को सूचित करते हैं उससे ऊँचे ज्ञान की संसार कल्पना भी नहीं कर सकता है हमारे पूर्वज मुनियों ने तपस्या, शील, संयम, सद्गुण सदाचार भगवत् भक्ति, एवम् योग तथा तपश्चरण के बल से सर्व लोक के तत्व ज्ञान का अर्जन किया, उसके मुकाबिले न ऊँचा ज्ञान पाश्चात्य देशों का ज्ञान समुद्र के एक बूँद के समान नहीं है। पाश्चात्य देशों ने तो धर्म कर्म को तो दूर ही ठुकरा दिया है और जब धर्म को ठुकरा दिया तो परलोककी गिनतीही कहां रहगई, पाश्चात्य संसर्ग से तथा पाश्चात्य शिक्षा के अभाव से आज बहुत सी अवांछनीय बातें हमारी समाज में प्रवेशकर हमारी मूल संस्कृनि का मूलोच्छेद कर रही है, पाश्चात्य की देखा देखी युवक युवतियों को सहशिक्षा देखर उनके चरित्र नाश का कारण बन रहे हैं क्योंकि आहार शुद्धौतत्व शुद्धि आहार की शुद्धि से अन्तःकरण की शुद्धि होती है इस सिद्धांत को भूलकर हम लोग खान पान के विषय में अत्यन्त स्वतंत्र होकर भ्रष्ट होते जा रहे हैं, शौचाचार की ओर हमारा तनिक भी ध्यान नहीं रह गया है। मादक द्रव्यों का क्रमशः अधिकाधिक प्रचार हो रहा है, चाय, तमाकू, गांजा, भंग, बीड़ी सिगरेट की तो बात ही क्या है। औषधि के रूप में तथा शौकिया तौर पर मदिरा का सेवन बढ़ रहा है मछली, मांस तथा अन्डे का व्योहार होटलों द्वारा सभ्य समाज में खुल्लम खुल्ला हो रहा है, इन सब बातों से शौचाचार तो नष्ट भ्रष्ट हो ही रहा है व्यभिचार की वृद्धि हो रही है उसके सम्बन्ध में पाप बुद्धि क्रमशः नष्ट हो रही है, उसको पाप ही नहीं समझते हैं, शरीर और घरों की सजावट में आमोद-प्रमोदमें रुपया पानीकी तरह वहा रहे हैं गन्दे साहित्य और गन्दे चित्रपटों का प्रचार क्रमशः बढ़ रहा है जिससे हमारे युवक युवतियों के चरित्र पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है जिससे हमारी बुद्धि, धन, धर्म स्वास्थ्य आयु, बल बुद्धि लोक परलोक का नाश हो रहा है। और हम लोग क्रमशः पतन की ओर अग्रसर हो रहे हैं अपने हाथों अपना सर्व नाश कर रहे हैं, झूठ कपट चोरी और हिंसा आदि पापों की अत्यन्त वृद्धि हो रही है, इसलिये समाज के कर्णधारों को चाहिये कि समाजको इन बुराइयों से बचावें और प्राचीन संस्कृति की रक्षा करें। प्राचीन संस्कृति का ओर जब हम दृष्टि डालते हैं। तो ऐसा प्रतीत होता है तो आधुनिक संस्कृति में और उसमें महान अन्तर है दोनों की दृष्टि कोण में अन्तर है आधुनिक संस्कृति का उद्देश्य यह है कि खाना पीना मौज करना शरीर को अधिक से अधिक आराम पहुँचना, अधिक से अधिक भोग भोगना जिस किसी प्रकारसे हो वर्तमान जीवनको सुखी बनाना है।

ला० रामस्वरूप प्रकाशचन्द जी जैन मु० सिहारा जि०बिजनौर ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया।

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख ६-९-५३ दिन इतवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि प्राणी मात्र की रक्षा करना परम कर्त्तव्य है।

आज भारतवर्ष की जैसी दुर्दशा है उसे देखकर विचारवान पुरुषमात्र प्रायः दहल उठेंगे। भारतवर्ष की वह पुरानी सभ्यता उसकी शिक्षा प्रणाली और उसका बल, बुद्धि, तेज आदि से भरा हुआ जीवन आज कहाहै? जिस भारतवर्ष से अन्य समस्त देशों के सहस्रों नर-नारी शिक्षा ग्रहणकर अपना जीवन उन्नति बनाते थे, आज उसका वह अलौकिक गौरव कहाँ है? आज तो वह सर्वथा बलहीन, विद्याहीन, बुद्धिहीन, गौरवहीन और धन हीन होकर अधमरा होगया है। इस अवनति का कारण क्या है? विचार करने से अनेकों कारण जान पड़ते हैं। उन्हीं कारणों में से पशुओं की हानि का भी एक प्रधान कारण है। इसी विषयपर कुछ लिखने का प्रयत्न किया जा रहा है।

पूर्वकाल में इस देश में पशुओं की कितनी अधिकता थी, यदि इस बात पर पूर्ण रूप से विचार किया जाय तथा उनकी संख्या का हिसाब लगाया जाय तो बहुत से लोग उस संख्या को असम्भव सा समझेंगे। किन्तु यह ऐतिहासिक और प्रमाणिक बात है! बाल्मीकिय रामायण के अयोध्या काण्ड में कथा आती है कि भगवान श्रीरामचन्द्र जी के पास त्रिजट नाम का एक ब्राह्मण आया और उसने धन की याचना की। महाराज ने उनसे कहा कि "मेरे पास बहुत गायें हैं आप अपने हाथ से एक डंडा फेंकिये वह डँडा जहां जाकर गिरे, यहाँ से वहां तक जितनी गौएँ खड़ी हो सकें आप ले जाइये।" विचार करने से पता चलता है कि जहाँ विनोद रूप में एक याचक को इस प्रकार हजारों गौएँ दान में दी जा सकती है, वहाँ देने वाले के पास कितनी गौएँ हो सकती हैं? भागवत् में राजा नृग का इतिहास बहुत ही प्रसिद्ध है, वह हजारों गौओं का दान प्रतिदिन किया करते थे। केवल पांच हजार वर्ष पहले की बात है कि नन्द-उपनन्द आदि गोपों के पास लाख २ गायें रहा करती थीं यहबात भी भागवत में ही है। महाभारत के विराट पर्व से भी यह

पशुनांरक्षणं दानमिज्या ध्येन मेवच।
वणिक् पंथ कुसीदंच वैशस्य कृषीमेचव ॥

अर्थात् वैश्यों का धर्म पशु पालन करना, दान, देना, यज्ञ करना शास्त्र का अध्ययन करना व्यापार और कृषि द्वारा आजीविका चलाना है। यहां यह भी बात ध्यान में रखना है कि कृषी कर्म करने वाले सभी वैश्य के तुल्य है अतः उन सबके लिये भी पशु पालन करना धर्म का एक अङ्ग है, किन्तु आज इस भारतवर्ष में बहुत कम ऐसे वैसे वैश्य और कृषि के करने वाले हैं जो ऐसी धार्मिक और आर्थिक दृष्टि से उपयोगी बात का ध्यान रखते हों। वैश्य और किसान पशुओं के द्वारा भूमि को जोतकर अन्न उपजाते हैं इसी प्रकार जैनाचार्य ने ऋषभनाथ भगवान ने अपने महा पुराण में लिखा है कि:—

क्षत्रियाः शास्त्रजीवित्वम् अनुभूयतदा भवन्।
वैश्याश्च कृषि वाणिज्य पशुपाल्यो पजाविताः ॥

उस समय जो शस्त्र धारण करके आजीविका करतेथे वह क्षत्रिय थे और जो खेती पशु पालन द्वारा व्यापार के द्वारा जो आजीविका करते थे वह वैश्य कहलाते थे और उनकी जो सेवा सुश्रुषा करते थे वह शूद्र कहलाते थे उस समय यह नियम था कि:—

यथास्वस्वोचितं कर्म प्रजाद् धुरसंङ्करम्।
विवाह जाति सम्बन्ध व्यवहार श्चनन्मतम् ॥१॥
यावता जगती वृत्ति. अपा योप हताच या।
ससर्वास्य मतेनासीत् सहिधाता सनाननः ॥२॥

उस समय प्रजा अपने २ कर्मों को यथा योग्य रूप से करती थी अपने वर्ण की निश्चित आजीविका को छोड़कर दूसरे वर्ण की निश्चित

आजीविका नहीं करता था, इसलिये उनके कार्यों में कभी सङ्कर (मिलावट) नहीं होता था उनके विवाह जाति सम्बन्ध तथा व्योवहार सभी कार्य भगवान ऋषभदेव की आज्ञानुसार ही होते थे उस समय संसारमें जितने पापरहित आजीविका के उपाय थे, वे सब भगवान ऋषभदेव की सम्मति से प्रवृति हुये थे। सो ठीक ही है, क्योंकि सनातना ब्रह्मा भगवान ऋषभदेव ही हैं, वैश्व पशुओं की सहायता से खेत जोत कर उपजाये हुये अन्नसे सम्बन्ध रखते हैं उसकी नस २ में पशुओं के परिश्रम से उत्पन्न हुये अन्न का रक्त दौड़ता है—परन्तु उन पशुओं की दशा सुधारे उनकी वृद्धि हो इस ओर उनका ध्यान बहुत ही कम रहता है—क्योंकि आज कल इस का अर्थ उलटा कर दिया है अर्थात् जीवो जीवस्य भक्षणम्, अर्थात् जीवों का जीवन जीवों से ही है यानी पशुओं को मारकर खाना ही जीवन है, पाश्चात्व संस्कृति के प्रेमियों का कहना है कि जितने जीव उत्पन्न होते हैं। वह सब मनुष्यों के लिये ही है मनुष्य उन्हें भक्षण कर सकता है, भगवान ने इसीलिये बनाया है—परन्तु इसका भाव यह नहीं था यह भाव था कि पशुओं के द्वारा अन्न उत्पन्न किया जाता है, पशुओं के द्वारा खेती की जाती है इसलिये पशुओं के द्वारा ही मनुष्य का जीवन है प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में गौओं की कमी होती जा रही है। तथापि जनता उनकी रक्षा से उपराम सी हो रही है मानो उसे इस बात की खबर नहीं है। इसका भयानक परिणाम यह हो रहा है कि मनुष्यों को अत्यन्त उपयोगी और उत्तम दूध, दही का साधारण मनुष्यों को मिलना कठिन हो रहा है और दूध, दही के अभाव में भारतीय संतान का स्वास्थ्य दिनों दिन गिरता जारहा है, जहां किसी समय इसी देश में शुद्ध दूध एक पैसे सेर और घी चार आने सेर मिलता था। आज दूध बारह आने सेर घी पांच रू० सेर भी शुद्ध नहीं मिल रहा है बल्कि उसमें कुछ मिलावट रहती है यदि समय रहते भारतवासी सावधान नहीं होंगें गौओं की रक्षा न करके कमी होता रहेगा। तो भविष्य में इसका बड़ा ही भयानक दुष्परिणाम होने की सम्भावना है। बहुत से लोग धन के लोभी अधिक दूध देने वाली गायों को खरीदकर उनके बछड़ों को निरर्थक समझकर कसाई के हाथ बेच देते हैं। और फूँके द्वारा उनका सारा दूध निकाल लेते हैं परिणाम यह होता है कि कुछ ही दिनों में वे गौयें निकम्मी हो जाती हैं और कसाई के हाथ बेंच दी जाती हैं मांस भक्षी मनुष्य के लिये और बाढ़, महामारी अकालादि दैवी प्रकोप के कारण प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में गौयें नष्ट हो जाती हैं प्रत्येक शास्त्र यही कहता है कि प्रत्येक प्राणी की रक्षा करना यही मानव धर्म है क्योंकि रक्षा करने का विवेक मनुष्य के भीतर ही है स्वपर कल्याण करने की शक्ति मनुष्य के भीतर ही हैं, मनुष्य को इसलिये उत्कृष्ट माना है कि सम्पूर्ण जीवधारियों को मनुष्य ही सुमार्ग पर लगाकर उनकी रक्षा कर सकता है, पशुओं में तो परस्पर लड़ने भिड़ने की आदत हमेशा से है यह आदत मनुष्यों में यदि आजाय तो फिर रक्षक कौन हो सकता है कोई भी नहीं, इसलिये मनुष्य के

उचित है कि पशुओं की प्रति पालना, और रक्षा करके उनके द्वारा प्राप्त दूध, दही घी अन्न का उपयोग करके सुखी, समृद्धिशाली, बनें, परन्तु आज कल की कूटनीति के कारण धर्म की प्रति दिन ह्रास होकर अधर्म की ओर बढ़ते जा रहे हैं यदि मनुष्य और पशु की दृष्टि से विचार किया जावे तो पशु से मनुष्य श्रेष्ठ माना जाता है पशु तो अज्ञानी ही है वह यद्वा तद्वा आचरण करता है ज्ञान शून्य होने के कारण ही उसे पशु कहा जाता है परन्तु आज मनुष्य पशुवत आचरण करके हजारों लाखों जीवों की हत्या करके अपने मनोरथों को अथवा उदर पूर्ति के लिये कँमर कसकर खड़ा हुआ है मांस खाने वाले भारतवासियों को दूध घी में अधिक लाभ है। यह बात प्रेम से समझा बुझाकर जिसमें गौओं की प्राण रक्षा हो मांस खानेकी आदत छुड़वाना चाहिये, अतिशय तत्परता के साथ फूंक की प्रथा जो कानून के सर्वथा प्रतिकूल है ग्राम २ में समझाकर सरकार के द्वारा बन्द करा देना चाहिये। जिसमें गौओं को निरर्थक मिलने वाला कष्ट न हो—बहुत से मनुष्य पाश्चात्य सभ्यता में रङ्गकर चमड़े का प्रयोग करने लगे हैं, चमड़े की टोपी, चमड़े की सिदरी, चमड़े के बिस्तरबन्द चमड़े के बेग, चमड़े की थैली, चमड़े की पेटी इत्यादि में चमड़े का उपयोग करके लाखों प्राणियों की हत्या के पाप के भागीदार बनते हैं—भारतवर्ष में सूत, रूई की इतनी अधिकता है कि जिससे कम खर्च और सरलता से चमड़े से अधिक टिकाऊ चीजें विना प्राणी हिंसा के प्राप्त की जा सकती है दूध, दही न मिलने और अत्यन्त महँगा होने का एक यह भी कारण है कि मौज शौक के लिये पशुओं की हिंसा करके उत्तम २ पदार्थों के मिलने में अभाव पैदा करते हैं, चमड़े के जूता पहिनना भी ठीक नहीं है अच्छा मुलायम चमड़ा छोटे २ बच्चों को बेंत से मार २ कर उनके खून से उनका चमड़ा मुलायम हो जावे इस तरह जीवित ही उनको मारकर उनकी खाल निकाल कर मुलायम जूते बनाने की प्रथा चलाई है विचार की बात है कि ऐसा घृणित प्रथा के द्वारा जूतों को सुन्दर और मुलायम देखकर खुश होता कितना लज्जाजनक पाप जनक और दुर्गति देने वाली बात है जब कि हमारा थोड़े खर्च में अधिक सरलता से विना किसी प्राणी की हिंसा किये हुये चल सकता है, तो हम क्यों जीवित प्राणियों की निर्दयी हत्या कराने के भागी बनें।

धर्मपत्नी ला० कैलाशचन्द जी जैन टिकैननगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख ७-६-५३ दिन सोमवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि परस्पर में प्रेम कैसे बढ़ सकता है?

प्रेम और समता की जिसमें वृद्धि हो अहंकार का त्याग हो प्राणियों के हितों की चिन्ता जहां हो वही प्रेम बढ़ाने का सर्वोत्तम उपाय है। प्रेम में स्वार्थ की गन्ध भी नहीं आने देना चाहिये। जहां स्वार्थ की भावना आई बस फिर प्रेम का टूटना आरम्भ हो जाता है। वास्तव में अहंकार और प्रेम वे दोनों प्रेम में बड़े बाधक हैं धर्म मार्ग में भी बाधक हैं, मान लीजिये कि हमने किसी के हित का काम किया और फिर कह दिया कि इसके हित साधन में मेरा कोई स्वार्थ नहीं है बस इस अहंकार के उत्पन्न होते ही प्रेम वीणा के तार छिन्न भिन्न होने लगते हैं। आप सेवा करके किसी को रोगादि के संकट से बचाते हैं धन द्वारा किसी की विपत्ति का निवारण करते हैं तो यह सब प्रेम वृद्धि के कारण में अत्यन्त सहायक है परन्तु उन्हें यदि आप किसी के सामने कह देते हैं तो बस मिट्टी में मिल जाता है। इसलिये किसी की सेवा या उपकार करके कभी नहीं कहना चाहिये कह देने से अहंकार आ जाता है और अहंकार कोई भी मनुष्य सहन नहीं कर सकता है देखिये दूध में किंचित भी खटाई पड़ जाने से दूध फट जाता है। उसी तरह से उत्तम सेवा या उपकार करने पर यदि उस दूध में अहंकार रूपी खटाई पड़ जाती है तो वह तत्काल किया धरा नष्ट हो जाता है जब कि सेवा इत्यादि प्रेम के आधार हैं तब उन्हें अहंकार से नष्ट न करना चाहिये। सबकी सेवा और उपकार अस्वार्थ भाव से करना प्रेम बढ़ाने का कारण है। स्वार्थ और परसन्ताप का दृष्टांत—

ला० स्वार्थीमल यथा नाम तथा गुण वाले एक वैश्य थे बीच बाजार में इनकी कपड़े की दूकान थी प्रातःकाल से ही यह दूकान पर डट जाते थे और जब देखते कि ग्राहक लोग जा रहे हैं तो ऊँचे स्वर से राधेश्याम राधेश्याम उच्चारण करने लगते जिस समय ग्राहकों की दृष्टि इनकी ओर पड़ती तो हाथ के संकेत से ग्राहकों को बुला लिया करते थे, जब वे कहते कि कपड़ा

लेना है तो ला० स्वार्थीमल जी कहते, यह तो आपके घर की दुकान है जो लेना हो लेलीजिये इस प्रकार ग्राहकों को मूड़ते और जो दूसरी जगह से कपड़ा लेकर निकलते संकेत से उनको भी बुलाकर खरीदे हुये माल की कीमत में अधिकता बतलाकर उससे दो पैसा गज कम देने के लिये कहते और एकाध बार देकर घाटा उठाकर ग्राहक बना लिया करते थे इस तरह से लाला स्वार्थीमल बहुत धनाढ्य हो गये, परन्तु धर्म शास्त्र में लिखा है किः—

अन्यायो पार्जित विप्तंदश वर्षाणितष्टिति।
प्राप्तेपु एकादशेवर्षे समूलंच विनश्यति॥

अधर्म से जोड़ा धन कभी ठहरता नहीं पापों की पूँजी किसी को नहीं पचतो है। अतः लाला जी के यहां कुछ तो चोरी से कुछ राज दंड से कुछ पुलिस की क्रूर दृष्टि से धन नष्ट हुआ और रहा बचा अग्नि ने स्वाहा कर दिया, अब लाला जी दो २ पैसे की मजदूरी करने लगे ला० स्वार्थीमल जी राधाकृष्णा के उपासक थे। एकबार राधाकृष्ण जी प्रसन्न होकर बोले जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो मांग लो, ला० जी यह मांगने वाले थे कि हम अपने पड़ोसियों से दूने रहें पर भूल से मांग बैठे कि हमसे पड़ोसी सदैव दूने रहें, राधाकृष्णा ने एक घन्टा देकर कहा कि जब २ तुम्हें जिस चीज की आवश्यकता हो यह घंटा सम्पूर्ण पदार्थ तुम्हें देगा और उससे दूने पदार्थ पड़ोसियों को, जब लाल जी को यह ख्याल हुआ कि हमसे दूने पदार्थ पड़ोसियों को मिलेंगे तो उन्होंने कहा कि हम घन्टा बजावेंगे ही नहीं चाहे हम दो २ पैसे की मजदूरी करते रहें पर पड़ोसी कैसे दूने हो जायें, यह विचार घन्टा बांधकर कोठरी में बन्द करके रख दिया और अपनी स्त्री से कहा कि मैं तो परदेश नौकरी के लिये जाता हूँ परन्तु तू कभी घन्टा न खोलना—लाला परदेश चले गये, स्त्री को जब कुछ खाने को न रहा तो दो दिन भूखी रही तीसरे दिन उसने सोचा कि घन्टा पड़ा हुआ है उसे ही दो चार आने में बेंचकर एकाध दिन का निर्वाह करें, स्त्री ने घन्टा खोला तो घन्टा बज गया। बजते ही चार आने इसे मिल गये और आठ २ आना पड़ोसियों को मिले, इस प्रकार स्त्री को दो चार दिन पैसे मिलते रहे तो उसने सोचा कि यह घन्टे में ही गुण है, एक दिन स्त्री ने घंटा लेकर कहा कि घन्टेश्वर। आज हमको दस ग्राम मिल जायें दस इसे मिले बीस २ पड़ोसियों को मिले फिर स्त्री ने कहा कि मेरा मकान तिखंडा बन जाय, इसका तिखंडा और पड़ोसियों के छः खंडे बन गये, स्त्री ने हाथी घोड़े फौज भी मांगी सब मिल गये, उससे दूने पड़ोसियों को मिले अब स्त्री ने सोचा कि जब इतनी सम्पदा घर में है तो मेरा पति क्यों मजदूरी करता फिरे, पति को चिट्ठी लिखा कि आपके घर में सब कुछ मौजूद है आप नौकरी छोड़कर चले आइये, पत्र पहुँचते ही लाला जी को ख्याल हुआ कि जान पड़ता है इसने घन्टा बजा दिया नहीं तो इतना ऐश्वर्य इतने दिनों में कहां से आ गया, फिर सोचा कि चलकर देखें, घर आकर देखा कि हमारा मकान तिखंडा है पड़ोसियों का छः खंडा यह देखकर पत्थर पर अपना सिर दे मारा और कहने लगे कि हमारे देखते २ पड़ोसी दूने हो गये, सिर पटकने लगे स्त्री का बड़ा फजीता किया कि तूने घन्टा क्यों बजाया? अन्त में

ला० स्वार्थीमल इस विचार में पड़े कि इन पड़ोसियों का सत्यानाश कैसे हो सोचते २ ला० जी की समझ में आगया, घन्टा बजाकर बोले या घन्टेश्वर हमारी एक आंख फूट जाय, लाला जी की एक आंख फूट गई पड़ोसियों की दोनों फूट गई, फिर कहा, कि मेरा कान बहरा हो जाय, लाला जी का एक कान बहरा हुआ। पड़ोसियों का दोनों कान बहरा हो गया फिर कहा कि हमारी एक टाँग टूट जाय, इनकी एक टूटी पड़ोसियों की दोनों टाँगें टूट गई, फिर कहा या घन्टेश्वर हमारे दरवाजे पर एक कुंवा खुदजाय, इनके यहां एक कुंवा खुदा पड़ोसियों के दो २ कुंवा खुदगये, प्रातःकाल हुआ तो ला० स्वार्थीमल एक काठ की टांग तथा एक पत्थर की आंख लगाकर पड़ोसियों की दशा देखने चले कि देखें चले ! कैसा आनन्दकर रहे हैं, पड़ोसी विचारे अन्धे, लूले टट्टी पाखाने जाने के लिये घर से निकले तो कुओं में गिर पड़े यह देखकर स्वार्थीमल की छाती ठंडी हुई, किसी जगह का वृत्तान्त है किः |

कस्त्वंभद्र खलेश्वरो हमिहकि घोरे वनेस्थीयते।
शार्दूलादिभिरेव हिंस्रपशुभिःखाद्योऽहम् मित्याशया
कस्मात् कष्टमिदंत्वयाऽव्यवस्थित मद् हमासाशिवः
प्रत्यत्पन्न घृमांस भक्षणधियस्ते घ्नु सर्वान्नरान ॥

इसलिये हम लोगों में स्वार्थ और अहंकार की भावनायें वद्ध मूल हो रही हैं। वास्तव में स्वार्थ और परमार्थ के लिये यह बाधक हैं। मान लीजिये किसी अपने मित्र को आर्थिक सहायता देकर कष्ट से बचायो और अब फिर किसी सज्जन के सामने अपनी सेवा का बखान कर दिया संयोग वश यह बात उस दुःखी मित्र के पास पहुँच गई तो इसका परिणाम क्या होगा। यही कि उस सेवा करने वाले के प्रति प्रेम भाव घट जायगा और विचार करेगा कि हमने सेवा कराकर बुरा किया, वह अपने मन में बार २ यही विचार कर दुःखी होता रहेगा। कि यदि मेरा मित्र मेरी सहायता सेवा, का वर्णन दूसरों से करेगा तो मैं कभी इसकी सेवा कभी ग्रहण नहीं करता, इस तरह अपने एक प्रेमी मित्र की ओर से अपने स्वार्थ की हानि कर बैठते हैं, और इस प्रकार अपनी सेवाओं को गिना देकर अपने परमार्थिक लाभ को भी खो बैठते हैं, किसी समय राजात्रिशंकु ने दूसरे के प्रति किये हुये उपकार की प्रशंसा अपने मुख से की थी। तो वे स्वर्ग से च्युत हो गये थे। इसलिये हम लोग भी भगवान की पूजा, अर्चा, दानादि उत्तम कर्म जो कुछ भी करें उसकी प्रशंसा अपने मुख से कभी नहीं करना चाहिये। कोई प्रसंशा करे तो उस समय लघुता पूर्वक मौन रहे अथवा प्रसंग वश टाल देना ही श्रेयस्कर है, पुरुषों में यह दोष कम है परन्तु स्त्रियों में यह दोष अधिक देखा जाता है। वे सेवा आदि उत्तम कर्मों को गुप्त नहीं रख सकती हैं स्त्रियों में प्राय कोई बात गुप्त नहीं रहती है पुरुष भी इस बुरी आदत के कम शिकार नहीं है इसलिये हम सब इस बात का ध्यान रखें कि अपने किये हुये सत्कर्म, सेवादि को कहीं प्रकाशित न करें किसी के प्रति किये हुये सेवा भाव को निस्वार्थ भाव से करें किन्तु किसी मौके पर उसके कहने से उपकृत मनुष्य का हित होना हो अथवा धर्म की वृद्धि होती हो तो प्रगट करने में कोई हानि नहीं है।

परन्तु आज कल ऐसी भावना बहुत कम है। अभाव सा ही होगया है जिधर देखो उधर ही स्वार्थ का ही बोल बाला है वास्तव में स्वार्थ की भावना निष्काम प्रेम के लिये कलंक रूप है निष्काम रूप से किया हुआ आचरण अमृत स्वरूप है जो काम अपने कर्मों की निर्जरा हेतु या दूसरों की उपकार भावना से किया जाता है वह तो ठीक है परन्तु जो मान बड़ाई और अपनी प्रतिष्ठा के लिये किया जाता है उससे धर्म की वृद्धि कभी नहीं हो सकती है। प्रेम की उत्पत्ति सेवा भाव से होती है सेवा ही से लोक वश, जन वश, स्त्री वश, राज वश, सभी लोग वश हो जाते हैं इससे भगवान की भक्ति और सेवा होती है सेवा तो हर किसी से हो सकती है परन्तु भगवान की सेवा भक्ति हर किसी से नहीं हो सकती है भक्ति सेवा सेवा तो रहती है परन्तु उसमें प्रेम की आवश्यक्ता है प्रेम सदैव साथ में रहना चाहिये प्रेम तो भक्ति से अधिक है सेवा का फल भी प्रेम ही है प्रेम की प्राप्ति भक्ति और उपकार से हो सकती है इसलिये प्रेम के इच्छुकों को चाहिये कि सदैव उनका मन सेवा और उपकार लगा रहे सेवा और उपकार में अन्तर है सेवामें तो विनय की अधिकता और अहँकार का अभाव है मनुष्य को प्राणी-मात्र पर दया करना, सेवा करना उसकी रक्षा करना उपकार करना यही सब सेवा है, उपकार अहँकार का समावेश नहीं है दूसरे के हित में रत रहने वाले को स्वार्थ और अहँकार का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये, निस्वार्थ भाव से निरहँकार होकर सबकी सेवा करना सबके प्रेम को प्राप्त करना है सेवक होकर यदि अपने सेवा भाव को गिना दे उसका एहसान कर दे तो उस सेवा का मूल्य कम हो जाता है और निष्काम भाव में कलंक लग जाता है और उसका दरजा भी घट जाता है हम लोगों को निष्काम भावों को गोपनीय रखना एक गोपनीय निधि है हम लोगों का प्रेम उच्च कोटि का नहीं है साधारण श्रेणी का है जहां प्रेम होता है वहां नियम नहीं होता है संकोच आधारादि को प्रेम के राज्य में कोई स्थान नहीं मिलता है। मान बड़ाई और संकोचादि की वहां गन्ध भी नहीं है इन भावों को जीतना ही अभाव है यही प्रेम महत्व का माना गया है। क्योंकि प्रेम को चाहे कितनी ही खोटी बुरी सुनाई जावे कितना ही उसे तिरस्कार कितनी ही बातें हिचकिचाहट से करें परन्तु उसके मन में कभी दुर्भावना नहीं होती है परन्तु आजकल हमारे परस्पर सहधर्मी भाइयों की ओर देखा जावे तो इनके ऊपर प्रेम का तिल मात्र भी असर नहीं है। सज्जनों की सम्पत्ति परोपकार करने के लिये होती है परोपकार करने वाले मनुष्य अपने प्राणोंकी बाजीलगा कर भी परोपकार करने से कभी नहीं चूकते हैं, अतएव परोपकार सदैव करना चाहिये।

लालचन्द सुपुत्र श्रीबाबूलाल जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख ८-६-५३ दिन मङ्गलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि त्याग से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है
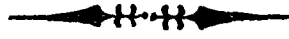
१—गृहस्थाश्रममें रहता हुआ मनुष्य त्यागके द्वारा मोक्ष के साधन का अभ्यास कर सकता है। उसी परमात्मा मोक्ष साधन के लिए त्याग ही मुख्य साधन है। अतएव त्याग के लक्षण संक्षेप में लिखे जाते हैं। गृहस्थ को घर में रहते हुए त्यागने योग्य कर्म नीचे कहा हुआ है कि— चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा अभक्ष भोजन और प्रमाद आदि से मन वचन कार्य पूर्वक नहीं करता यह पहिले श्रेणी का त्याग है।

२-स्त्री पुत्र और धन आदि प्रियवस्तुओं की प्राप्ति के उपयोग से एवं रोग संकट आदि के उद्देश्य से यज्ञ याज्ञादि दान इत्यादि पूजा आदि नहीं करना चाहिए दान पूजा यज्ञादि अपने कर्म की निर्जरा के लिए स्वपर कल्याण के लिए अपना कर्तव्य समझकर रोज करते रहना चाहिए।

३-तृष्णा का त्याग मान बड़ाई स्त्री पुत्र प्रतिष्ठा एवं धनादि अपने कर्म के अनुसार जो मिले उसी में संतुष्ट रक्खे ज्यादा तृष्णा को न बढ़ाना।

४—स्वार्थ सुख के लिए अपने से दूसरे से सेवा करने का त्याग—अपने सुख के लिए अथवा धनादि के लिए दूसरों से सेवा करने की याचना करना एवं बिना याचना के दिये हुए, पदार्थ को ग्रहण करना अथवा बिना किसी के अपने स्वार्थ सिद्ध के लिये मन में इच्छा रखना इत्यादि भावनाओं को त्याग कर देना चाहिये।

५—माता पिता तथा गुरजन आदि की सेवामें आलस्य न करें, माता पिता और गुरू और भी जो पूजनीय जो अपने से बड़े हों उनकी सब प्रकार से नित्य सेवा करना और उनको नित्य प्रणाम करना यह मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य है। हमेशा उत्साह पूर्वक उनकी सेवा करने में लीन रहना चाहिये।

६—सवेरे उठकर भगवान की पूजा में मन लगा करके उनकी स्तुति करना चाहिये कि हे प्रभो आपही दीननाथ बन्धु हैं दीन दुखी

जीवों के बन्धु हैं आपही माता तथा पिता हैं, आपही ब्रह्मा हैं आपही जिन हैं आपही सबही जगत के दुखी जीवों के मार्ग के दर्शक हैं। कहा है कि:—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सका त्वमेव, त्वमेव विद्या द्रविनं त्वमेव, त्वमेव सर्वं ममदेव देव।

आपही माता तथा आपही पिता आपही बन्धु हैं आपही मित्र हैं आपही विद्या और आपही धन हैं और आप ही देवों के देव हैं और आपही मेरे सर्वस्व हैं।

७ इस प्रकार से परमात्म की भक्तिमें लगे हुये पुण्य का जब परमात्मा में अतिशय प्रेम होता है उस काल में उसको अपने शरीर आदि का भी सुध नहीं रहता क्योंकि काव्य है:—

प्रेम लग्यो परमेश्वर सों तब भूल गयो सगरो घरवारा।
ज्यों उनमत्त फिरै जित ही तित नेक रही न शरीर संभारा॥
श्वास उसास उठै सब रोम चलै दृग नीर अखँडित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधा विध, छाकि परयौ रस पीमत धारा॥
न लाज तीन लोक की, नवेदु को कह्यौ करै।
नशंक भूत प्रेत की, न देव यक्ष ते डरै,
सुने न कान और की, द्रसै न और इच्छना।
कहो न मुख और बात, भक्ति प्रेम लच्छना॥
प्रेम अधीनों छाक्यो डोलै, क्यों कि क्यों ही वाणी बोलै।
जैसी गोपी भूली देहा, तैसो चाहे जासों नेहा॥

मन हरन छन्द—नीर विनु मीन दुःखी, क्षीर विनु शिशु जैसे।
पीर की औषधि विनु कैसे रह्यो जात है॥
चातक जो स्वाति बूँद, चन्दु को चकोर जैसे।
चन्दन की चाह करि सर्प अकुलात है॥
निर्धन ज्यों धन चाहे, कामिनी को कन्त चाहे।
ऐसी जाके चाह ताहि, कछु न सुहात है।
प्रेम को प्रवाह ऐसो, प्रेम तहां नेम कैसो सुन्दर कहत यह प्रेम ही की बात है॥

छप्पय छन्द—कबहुँक हंसि उठ नृत्य करे, रोवन फिर लागे।
कबहुँक गदगद कण्ठ, शब्द निकसे नहिं लागे॥
कबहुँक हृदय उमँग, बहुत ऊँचे स्वर गावे।
कबहुँक ह्वो मुख मौन, गगन ऐसे रहि जावे॥
चित्त चित हरि सो लाग्यो, सावधान कैसे रहें।
यह प्रेम लक्षणा भक्ति है, शिष्य सुनहु सुन्दर कहें॥

इत्यादि प्रेम भाव से भगवान की भक्ति स्तुति करने में जो परमानन्द प्राप्त होता है। वह बचन अगोचर है उसका वर्णन कोई नहीं कर सकता है, और न यह ऐसा आनन्द है कि किसी दूसरे को बतलाया जा सके जैसे मिश्री मीठी होती है। किसी ने पूछा कि मिश्री की मिठास कैसी है तो उत्तर यही दिया जाता है। कि मिश्री मीठी है अब मिठास बतलाने के लिये तो कोई शब्द है नहीं, अन्तमें यही कहना पड़ेगा कि मिठास जानना है तो चख करके देखो इसी तरह भगवद्भक्ति में जो परमान्द प्राप्त होता है। वह मुख से बतलाने का विषय नहीं है वह भक्ति मार्ग से प्राप्त करके ही जाना जा सकता है, जबतक मन में क्रोध, मान माया, लोभ, छल कपट, अहंकार, बचना, अदेस्यस का भाव इत्यादि दुर्गुण अपने में मौजूद हैं तब तक न तो भगवान से प्रेम करने की रुचि ही उत्पन्न हो सकती है और न तज्जन्य सच्चा परमानन्द ही प्राप्त किया जा सकता है अतएव दुर्गुणों को त्यागकर सुगुणों का ग्रहण करके देव, गुरु, शास्त्र में भक्ति भावना प्रदर्शित करना चाहिये, और मन, बचन, काय से भगवान की पूजन अष्ट द्रव्य से करके मनुष्य जन्म को सार्थक बनाना चाहिये, संसार में देखा जाता है कि प्रायः सर्व ही प्राणी अपने इष्ट की प्राप्ति के लिये इतस्ततः चक्कर लगाया करते हैं कभी प्रयत्न सफल हो जाता है तो कभी प्रयत्न असफल हो जाता है, जब सफल हो जाता है। अर्थात् इष्ट वस्तु की प्राप्ति हो जाती है तो सुखानुभव करता है और जब असफल होता है अर्थात् इष्ट की प्राप्त नहीं होती है किंतु कभी २ अनिष्ट वस्तुओं का संयोग मिल जाता है तो बहुत दुःखी हो जाता है। परन्तु यह नहीं सोचता है कि जो कुछ मैंने पूर्व में किया था। अर्थात् दीन दुःखी जीवों पर दया किया था, उनको सुख शांति पहुँचाने का प्रयत्न किया था उन दुःखी क्षुधार्त पुरुषों को भोजन दान किया था, रोगी मनुष्यों और पशुओं की सेवा औषधि द्वारा की थी यानी शुभकर्म किये थे तो उसके बदले में इष्ट वस्तु का संयोग होकर सुख की प्राप्ति होगी और इससे विपरीत यदि किसी प्राणी को दुःख पहुँचाया था, दुःखी देखकर उसके दुख दूर करने का उपाय शक्ति रहते भी नहीं किया था, किसी के साथ छल से उसका द्रव्य अपहरण कर लिया था, चोरी जारी जुआ चोरी से किसी के धन को ले लिया था, किसी प्राणी को दुःखी असमर्थ रोगी देखकर उसकी हँसी मजाक उड़ाया था, अपने धनादि के त्याग द्वारा किसी को कुछ सहायता नहीं पहुँचाई थी तो अनिष्ठ वस्तु का संयोग होकर दुःख उठाना पड़ेगा कहा है कि—

आयो है अचानक भयानक असाता कर्म ताके।
दूर करिबे को वली कौन अहरे ॥
जे जो मन भाये ते कमाये पूर्व पाप आप तेई।
अब आये निज उदय काल लहरे ॥
घरे मेरे वीर काहे होत है। अधीर।
यामें कोऊ को नसीरतू अकेलो आप सहरे ॥
भये दिलगीर कछु पीर न विन सिजाय।
नाहीं ते सयाने तू तमाशगीर रहरे ॥१॥

अचानक तेरे ऊपर भयानक दुःखदाई कर्मों का उदय आ गया है तो तू रोता है। और क्लेशित होता है। परन्तु विचार तो कर यह

अशुभ कर्म तेरे ही उपार्जन किये हुये हैं। और इनका प्रति-फल तुझे ही भोगना पड़ेगा। इसमें अधीर क्यों होता है। इससे दुःख घटेगा नहीं इसमें किसी का साझा तूने नहीं किया था इस लिये तू अकेला ही इसे भोग, दुखी होकर भोगेगा तो भी दुःख की निवृत्ति नहीं होती इस लिये सयानापन इसी में है कि तू इन असाता दुखदाई कर्मों को तमाशवीन की तरह देख, समता भाव हृदय में धारणकर परोपकार, त्याग की भावना भरकर अशुभ कर्मों को दूर हटादे। और त्याग दान धर्म के द्वारा शुभ कर्मों का उपार्जन कर सुखी वनने का उपाय करलें आज जो सुख शांति का साम्राज्य तुझे मिला है वह पूर्व में किये हुये त्याग, दान, परोपकार इत्यादि का फल है, अतएव हमेशा त्याग, दान, परोपकार की भावना करो जिससे सदैव सुख और आनन्द की प्राप्ति होती रहे संसार में अनेक प्राणी ऐसे देखे जाते हैं जो हमेशा दुःख उठाते रहते हैं लाख प्रयत्न करने पर उन्हें सुख शांति की किंचित भी प्राप्ति नहीं होती है, जन्म लेते ही उनके माता पिता स्वर्गवासी हो जाते हैं न तो उन्हें कोई पालने वाला है और न उन्हें कोई सम्हालने वाला है, दूसरों के सहारे ही जिनका दिन कटता है, पंगु अपाहिज, रोगी, दरिद्री, जीवों का दुःख देखो कैसे उनके दिन कटते हैं। जहां जाते हैं कोई उनको दुतकारता है, कोई घृणा करता है, कोई गाली देता है इत्यादि नाना प्रकारके क्लेशों को भोगते हैं संसार यात्रा उनकी बड़ी ही दुःख पूर्ण है क्लेश उठाते रहते हैं एक २ दाना अन्न के लिये तरसते हैं, दूसरों की जूठी पत्तलें चाटते हैं, दीन हैं दुखी हैं, न रहने का स्थान है न सोने बैठने की जगह है। सड़क की पटरियों पर वृक्षों के नीचे सर्दी गर्मी की बाधायें सहन करते हैं, समझना चाहिये कि उन्होंने न तो कभी दान दिया था और न कभी किसी को सुख शांति पहुँचाने का प्रयत्न किया था, सदैव अपने भरण पोषण में अपने स्वार्थ में लगे रहते थे, अपने स्वार्थ के आगे किसी के कष्टों की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा था, दान पुण्य पूजा पाठ का तो कभी ध्यान ही नहीं किया था कभी धर्म कथा श्रवण नहीं किया था। बल्कि धर्म कथा को ढोङ्ग, पाखंड, गपोड़ समझा था आज उसी का दुष्परिणाम है, जो जन्म पर्यंत सुख का लेश मात्र भी प्राप्त नहीं है, सारे दिन सारी रात्रि हाय २-करते बीतता है अतएव इन दुःखी प्राणियों की ओर देखकर हमको सोचना चाहिये कि हमें ऐसे दुःख न प्राप्त हो इसके लिये हम सदैव दान, पूजन, परोपकार, दीन दुःखी प्राणियों की सेवा सुश्रुषा इत्यादि करते रहें, इसी से दुख न मिलकर सुख की प्राप्ति होगी। रात दिन हाय २ करने से कुछ नहीं मिलता है, विचार पूर्वक कार्य करने पर ही सुख और शांति की प्राप्ति सम्भव है। जो मिलता है वह तो मिलेगा ही जो नहीं मिलने वाला है। उसे किसी प्रकार का प्रयत्न करने पर भी मिलेगा नहीं।

पदमकुमार सुपुत्र श्री बावूलाल जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

क्रुपया इसे संभाल कर रखिये।

दिल्ली-भार में

सद्गुरु-वाणी

तारीख ६-६-५२ दिन बुधवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि आत्म शुद्धि कैसे होती है
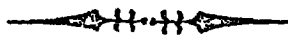
आत्म शुद्धि के बिना मनुष्य का जन्म व्यर्थ है और तीर्थ जप तप संयम शील उपवास तथा अनेकों साधन योग मुद्रा आसन ध्यान पूजा अर्चा नियम इत्यादि साधन एक आत्म शुद्धि के विना निरर्थक है। जब तक आत्म तत्व की रुचि न हो तब जीव को परलोक में सुख नहीं और इस लोक में भी सुख नहीं है। आत्मा का लक्षण ज्ञान दर्शन और उपयोगमई है। यह आत्मा अनादि काल से राग द्वेष वाह्य पदार्थों के मल से लिप्त हुआ है। आत्मा का गुण जो अनन्तानु बंधि क्रोध अन्नतानु बंधि मान अन्नतानु बंधि माया, अन्नतानु बंधि लोभ और मिथ्यात्व सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्व इन सात कर्म की प्रकृतियों के उपशम व क्षयोपशम व क्षय होने से प्रगट होता है उसे सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन गुण कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन दो प्रकार का होता है निश्चय और व्यवहार—निश्चय सम्यग्दर्शन सत्यर्थ स्वरूप अर्थात् पुद्गलादि परद्रव्यों से भिन्न निज शुद्ध स्वरूप का होने को कहते हैं। कहा भी है—

परद्रव्यनते भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भलाहै।
आपरूप को जान पनो सो सम्यक्ज्ञान कला है॥
आपरूपमें लीन रहे थिर सम्यक् चरित्र सोई।
अबव्यवहार मोक्षमग सुनिये हेतु निमतकोहोई॥

व्यवहार सम्यग्दर्शन व निश्चय सम्यग्दर्शन के कारण जीवादि प्रयोजन भूत तत्वों के तथा इनके प्ररुपण करने वाले सच्चे गुरु और शास्त्र के श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं। और स्वशरीर व पर द्रव्य से भिन्न होकर आत्म तत्त्व के ऊपर रुचि करना निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है। यहां पर कारण में कार्यका आरोपण करके उपचारों से कथन किया गया है। व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप जैनाचार्य भगवान उमा स्वामी ने तत्त्वार्थ सूत्र में इस प्रकार कहा है कि—

"तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्,

जीव अजीव आश्रव वन्ध संवर निर्जरा और मोक्ष इन साततत्वों के श्रद्धान को सम्यग्-

र्शन कहते हैं, धर्म संग्रह श्रावकाचारमें कहा है
आप्तात परोनदेवोस्ति धर्मोतभ्द्राषितान्नहि ।
निर्ग्रन्थादि मुसरन्यो क सम्यक्त्व मिनिरोचनम् ॥

सर्वज्ञ, वीतराग हितोपदेश धारण करने वाले देव और उन्हीं का कहा हुआ धर्म, तथा निर्ग्रंथ गुरु सर्व वाह्य अन्तरङ्ग परिग्रह से रहित वीतराग गाड़ी को चलाने वाले के सिवाय अन्य रागी द्वेषी देव, हिंसादि विषय कषाय को पुष्ट करने वाले धर्म और ढोंगी, भेषी, परिग्रही गुरु को कल्याण कारी नहीं मानना और सत्यार्थ देव गुरु शास्त्र का पक्का श्रद्धान होता सम्यग्दर्शन है। जैनाचार्य श्री समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि—
श्रद्धानां परमार्थना माप्तागम तपो भृताम् ।
त्रिमूढापोढ़ मष्टांङ्ग सम्यक्दर्शन मस्मयम् ॥

सच्चे देव, गुरु व शास्त्र के ऊपर श्रद्धान तीन मूढ़ता रहित (पांखंड मूढ़ता, गुरु मूढ़ता व देव मूढ़ता) अष्टांग सहित अर्थात् निःशंकित (सच्चे धर्म के ऊपर शंका नहीं करना) निःकांक्षित अर्थात् धर्मातिरिक्त सांसारिक पर वस्तुओं की घृणा नहीं करना, अमूढ़ दृष्टि अर्थात् मूर्ख लोगोंके बहकाने में न पड़कर मूढ़ता का त्याग करना, उपगूहन अर्थात् धर्मात्मा के प्रति द्वेष न करके उनके दोषों को छिपाना तथा उन्हें उपदेश देकर धर्म मार्ग पर लगाना, स्थिति करण धर्म से चिगते हुये जीवों को धर्म में स्थिति करना, धर्मोपदेश दे करके वात्सल्यांग धर्म और धर्मात्माओं को देखकर गऊवत्सवत् प्रेम रखना धर्म की अथवा धर्मात्माओं की वृद्धि के लिये धर्म की प्रभावना और अनेक प्रकार इतिहास, भजन, पूजनादि का उत्सव करना धर्म को फैलाना इसका नाम प्रभावना है इसी प्रकार सभी धर्मों में भिन्न २ स्वरूप कार्य कारण की मुख्यता से कहा गया है, किसी में गौणता से भिन्न कहा है परन्तु तात्पर्य सबका एकही है अर्थात् स्वस्वरूप के श्रद्धान के लिये जीवादि सप्त तत्वों का श्रद्धान नितांत आवश्यक है। और इन तत्वों के श्रद्धान करने के लिये उनका कथन करने वाले प्राप्त, गुरु, शास्त्र, का श्रद्धान होना आवश्यक है—क्योंकि ऐसे गुरु के बिना जीव का कल्याण होना, ठीक मार्ग मिलना कठिन होता है इसलिये कार्य में कारण का आरोपण करके यह कहा गया है—क्योंकि देव गुरु, धर्मके श्रद्धान से जीवादि तत्वों का श्रद्धान होता है और जीवादि तत्वों का श्रद्धान होने से निज आत्म स्वरूप का श्रद्धान होता है और निजात्मतत्व का श्रद्धान होने से वाह्य पदार्थों में घृणा होती है, वाह्य पदार्थों में घृणा होने से कर्मों की निर्जरा धीरे २ होती जाती है ऐसा होने से जीवों का संसार रूपी भार कम होता है और यह भार जितना २ कम होता है उतना उतना जीवों को सुख मालूम होता है। ऐसा निजात्मस्वरूप का श्रद्धान होना ही सम्यक्दर्शन रूप होना कार्य है और दोनों शेष लक्षण उत्तरोत्तर कारण स्वरूप तथा कारण के कारण स्वरूप है इसलिये इन्हें व्यवहार सम्यक्दर्शन कहा है। तत्व पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को कहते हैं। यथार्थ स्वरूप सहित दृढ़ श्रद्धान करना यही तत्वार्थ का श्रद्धान है, तत्व को वस्तु पदार्थ, द्रव्य इत्यादि अनेक नामों से पुकारते हैं तत्व मुख्यतया दो प्रकार के हैं जीव और अजीव जीव उसे कहते हैं जो दर्शनज्ञान सहित चैतन्य पदार्थ हो यह जीव लोक प्रमाण, असंख्यात

प्रदेशी अविनाशी, अमूर्तीक अखंड एक द्रव्य है लोक में अपने २ सत्तादि गुणों के लिये हुये ऐसे जीव अनन्तानन्त हैं उनमें जो जीव सम्पूर्ण कर्मों को नाश करके मोक्ष को प्राप्त हो गये हैं उन्हें सिद्धजीव कहते हैं वह जीव संसार में फिर कभी लौटकर नहीं आता है वे संसार परिभ्रमण से रहित स्व स्वरूप में लीन हुये लोक शिखर के अन्त में तनु वात वलय में नित्य शुद्ध स्वरूप परमात्म रूप से स्थित हैऔर जो जीव कर्म सहित है वे सँसार में चारों गतियों में नाना रूप धारण किये अपने स्वरूप को भूले हुये हिंडोले की तरह भूल रहे हैं यह सँसारी जीव कहलाते हैं यही सँसारी जीव कर्मों का नाश करके सिद्ध पद अर्थात् मोक्ष पद प्राप्त कर सकते हैं।

अजीव—उसे कहते हैं जो चैतन्य रहित जड़ हो उसके भेद छः भेद हैं अजीव आश्रव बन्ध संवर निर्जरा और मोक्ष अजीव के दो भेद भी हैं, मूर्तीक और अमूर्तीक रूपी पदार्थ अर्थात् जो स्पर्श रस गन्धादि सहित हो इसे मूर्तीक कहते हैं, यह अणु और स्कन्ध रूपसे दो प्रकार का होता है अणु पुद्गल का वह छोटे से छोटा भाग है जिसका दूसरा भाग न हो सके और स्कन्ध दो आदि संख्यात असंख्यात अनंत अणुओं को समुदाय रूप पिंड को कहते हैं। पुद्गल द्रव्य भी लोक में अनंतानंत हैं अमूर्तिक जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण रहित हो यह चार प्रकार का होता है धर्म, अधर्म, आकाश और काल, धर्म द्रव्य वह है जो जीव और पुद्गल को चलाने में सहकारी रूप से प्रेरक न हो जैसे मछली को पानी सहकारी है ऐसा लोक में व्याप्त असंख्य प्रदेशी धर्म द्रव्य एक अखँड है अधर्म द्रव्य वह है जो जीव और पुद्गल को ठहराने में सहकारी कारण हो प्रेरक न हो जैसे पथिक को वृक्ष की शीतल छाया यह भी लोक में व्याप्त असंख्यात प्रदेशी अखँड एक द्रव्य है काल द्रव्य वह है जो पदार्थ की अवस्था बदलने में सहकारी कारण हो, जो पदार्थों की अवस्था बदलने में उदासीन रूप से सहकारी हो ऐसा कालाणु रत्न राशिवत पृथक पृथक सम्पूर्ण लोकाकाश में भरा हुआ है यह निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का होता है निश्चय काल वह है जो केवल वर्तना रूप है, इसके असंख्यात प्रदेश एक दूसरे से भिन्न है जो कभी नहीं मिलते हैं इसे अक्रिय भी कहते हैं व्यवहार काल घड़ी, घण्टा, दिवस आदि की कल्पना रूप है जो निश्चय काल की समय रूप पर्यायसे उत्पन्न होता है एक पुद्गल का परमाणु मन्दगति से जब एक कालाणु के अन्य कालाणु पर जाता है और उसमें जो समय लगता है उसे एक समय कहते हैं जैसे पुद्गल का परमाणु , काल का अणु, आकाश का प्रदेश सबसे छोटा होता है वैसे ही समय काल का सबसे छोटा विभाग है जैसे अन्त समयों की आवली, घण्टा, घड़ी, पल, दिवस, दिवस, पक्ष, मास, वर्ष, युग युगान्तर की कल्पना की जाती है, आकाश द्रव्य वह पदार्थ है जो जीव पुद्गल धर्म अधर्म और कालादि द्रव्यों को अवकाश दे वह भी दो प्रकार का है एक लोकाकाश और दूसरा अलोका काश, जहां उक्त जीवादि पांचों द्रव्य पाये जावें उसे लोका काश कहते हैं और जहां पर केवल आकाश मात्रही है उसी अलोका

काश के मध्य में असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश है यह भी अखंड एक द्रव्य है इसे अलोकाकाश कहते हैं, आश्रव जीवों के राग द्वेषादि विभाव भावों के द्वारा योगों की प्रवृत्ति होने से पुद्गल परमाणु का जीव की ओर आना यह शुभ और अशुभ दो प्रकारका होता है शुभ पुण्य रूप है अशुभ पाप रूप है बन्ध योग और कषाय के निमित्त से जीव और पुद्गल कर्म परमाणुओं का एक क्षेत्रावगाह रूप सम्बन्ध होना यह दो प्रकार का शुभाशुभ रूप होता है।

संवर—आते हुये कर्म परमाणुओं को योगों को निरोध करके आने से रोकना यही आश्रव बन्ध की तरह दो प्रकार का है।

निर्जरा—पूर्वकाल में बन्धे हुये कर्म परमाणुओं को तपश्चरणादि के द्वारा आत्मा से छुड़ाना।

मोक्ष—बन्धे हुये सम्पूर्ण द्रव्य कर्म, भाव कर्म और जो कर्मों का सम्बन्ध सदा के लिये छूट जाना।

इस प्रकार संक्षेप में तत्वों का स्वरूप कह दिया, सत्यार्थ देव का स्वरूप कहा जाता है नियम से जो वीतराग अर्थात् क्षुधा, तृषा, बुढ़ापा रोग, जन्म, मरण, भय, राग द्वेष, मोह, चिंता, अरति स्वेद, खेद, निंद्रा और आश्चर्य इत्यादि दोषों से रहित सर्वज्ञ अर्थात् अलोक सहित तीनों लोकों के पदार्थों की त्रिकाल पर्यायों को एक समय में जानने वाला, हितोपदेशी अर्थात् वस्तु स्वरूप को यथार्थ कथन करने वाला देव हो सकता है अन्यथा देव नहीं हो सकता है।

सत्यार्थ गुरू—जो पांचों इन्द्रियों की विषयाशा से रहित हो जो दश प्रकार की परिग्रह धन, धान्य, दासी, दास, इत्यादि परिग्रह और चौदह प्रकार की भीतरी परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभादि हास्य, रति, अरति शोक, भय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद से रहित, ज्ञान ध्यान तप उपवास इत्यादि तपश्चरण में लीन हो वह तपस्वी अर्थात् गुरू प्रशंसा करने योग्य है।

सच्चा शास्त्र—जो भगवान का कहा हुआ हो वादी प्रतिवादी के द्वारा खँडन न हो सके प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणों से विरोध रहित हो पूर्वा पर विरुद्ध न हो दोष रहित हो वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन करने वाला सब जीवों का हितकारी हो मिथ्या मार्ग का खँडन करने वाला हो वही सद्शास्त्र है।

धर्मपत्नी ला० सुखपालदास जी जैन दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख १०-९-५३ दिन गुरुवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि जीव माया मोह में पड़कर कुगति में पड़ता है।
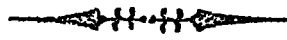
संसारी जीव माया—मोह में पड़कर जिन कुटुंबियों को अपना मानकर पालन—पोषण करते हैं तथा जिस स्त्री के प्रेम-पाश में फँसकर उसका उपभोग करते हुये अपने को परम धन्य समझते हैं, उनकी बहुत बड़ी भूल है। जिस स्त्री का रूप लावण्य परम रम्य, उसकी जंघा कदली की उपमा से सुशोभित की जाती है तथा जो स्त्री चन्द्रमुखी कहलाती है, वह रक्त—मज्जा तथा मल मूत्रादि अपवित्र वस्तुओं की खानि है। यह शरीर पंच भौतिक तत्त्वों से बना हुआ है और हड्डियों के इसमें स्तम्भ लगे हुये हैं। जिस शरीर की शोभा इत्र व चंदन आदि सुगंधित द्रव्यों से की जाती है उस शरीर पर देहावसान काल में मक्खियाँ भिन भिनाती हैं। इस पर एक दृष्टान्त दिया जाता है। एक मंत्री की लड़की परम सुंदरी थी। उसका सौंदर्य इतना बढ़ा चढ़ा था कि मानों चन्द्रमा का ही उदय काल हो रहा हो। यौवनावस्था में प्रवेश करने पर उसकी सुन्दरता की प्रशंसा सर्वत्र होने लगी। अकस्मात् एक दिन राजकुमार की दृष्टि उस कमल नयनी पर पड़ गई। वह कन्या को देखते ही अचेत हो गया। कुछ समय के पश्चात् शीतोपचार आदि से सचेत करने पर जब वह सावधान हुआ तो उसने निश्चय किया कि जब तक यह कन्या हमें नहीं मिल जायगी तब तक "मैं अन्न-जल नहीं ग्रहण करूँगा" उसकी यह दशा देखकर राजा "किं कर्तव्य विमूढ" हो गये। परन्तु पुत्र स्नेह बहुत बड़ा होता है। अन्त में मंत्री जी से राजा ने कुमार की प्रतिज्ञानुसार कन्या देने के लिये कहा। घर में जाकर अपने कुटुम्बियों तथा पुत्री से विमर्श करने लगा। पुत्री जितनी सुंदरी थी उससे कहीं अधिक सुशीला व धर्मात्मा थी। दुराचार के सामने उसका शील व्रत मेरु पर्वत के समान अचल होकर खड़ा हो गया। उसने पिता जी से कहा कि पिता जी! आप हमारे लिये १०० मिट्टी के घड़े व १०० रेसमी रूमाल तथा कड़ा से कड़ा जुलाब लाकर दे दिजिये और राजकुमार जी से कह दीजिये

कि आज से तीसरे दिन आकर हम से मिलें। "मैं राजकुमार पर राजी हूँ। अतः उनसे कह दीजिये कि भोजन आदि ठाट बाट से करें। पिता जी ने ऐसा ही किया। लड़की जुलाब लेकर सो गई और उसे दम पर दम टट्टी आने लगी। वह प्रत्येक घड़े में टट्टी करती थी और उसके सिरहाने में रेशमी रूमाल बाँध दिया करती थी। जब सभी घड़ों में टट्टी कर चुकी तब उसका शरीर शिथिल एवं पीला पड़ गया। उसकी आकृति एक दम बिगड़ गई। वह चारपाई पर लेटकर उच्छ्वास लेने लगी। अब राज कुमार के आने का तीसरा दिन आ गया। इस लिये संदेशा दिया गया और राजकुमार सज धज कर बड़े चाव से मंत्री के घर आ गये। घर में प्रवेश करने पर जब राजकुमार कन्या के पास पहुँचे तो उसकी विकृति आकृित को देखकर आश्चर्य चकित हो गये राजकुमार ने प्रश्न किया कि क्यों जी उस दिन तो तुम्हारा सौंदर्य अत्यन्त मनोहर था; पर आज वह सुन्दरता कहाँ चली गई? आज तो तुम्हारे सर्वांगों पर मक्खियाँ भिनक रही हैं धर्मात्मा कन्या ने उत्तर दिया कि नाथ! यदि आप का प्रेम मुझसे है तो मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। आप हमें जो चाहें सो करें; किन्तु यदि आप हमारी सुंदरता को चाहते हैं; तो वह उस कमरे के अन्दर घड़ों में रखी हुई है। आप उसे ले सकते हैं। राजकुमार कन्या की रहस्य पूर्ण बात को नहीं समझ सके। अतः वे जाकर उस घड़े को देखने लगे एक घड़े को देखते ही उनकी नाक दुर्गन्धि से भर गई। उन्होंने समझा कि सुन्दरता दूसरे घड़े में होगी। अतएव वे एक एक करके सभी घड़े को देख गये; परन्तु दुर्गन्धित मल--मूत्र के सिवा उन्हें अन्य कोई वस्तु उपलब्ध नहीं हुई निदान में राजकुमार के ज्ञान नेत्र खुल गये। वे सोचने लगे कि वस्तुतः यह शरीर अत्यन्त अपवित्र वस्तुओं से भरा हुआ है। इसमें कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो कि स्थायी सुख दे सके। अतः इसके प्रेम--पाश में फँसकर अपना नर रत्न नष्ट करना बहुत बड़ी मूरखता है यह सोचकर राजकुमार सर्व परिग्रहों को छोड़ कर बन में चले गये और वहाँ जाकर उन्होंने बड़ी घोर तपस्या करके आत्म कल्याण कर लिया।

संसारी प्राणी इस घृणित शरीर और इंद्रियों में लोलुप होकर इसके संयोग और वियोग में सुख और दुःख हमेशा मानते हुए अपने आत्म स्वरूप को तथा धर्म भूल कर हमेशा अगले जन्म में दुःख के प्राप्ति के लिये ही रोता है परन्तु सच्चा सुख के लिये नहीं रोता है; परन्तु जिन्हें अपना आत्म कल्याण अभीष्ट है वे धर्म को ही अपनाते हैं; क्योंकि धर्म कठिन से कठिन वस्तुओं को भी सरल बनाता है। कहा भी है कि:—

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्न मनसः किं वा बहु ब्रूमहे
धर्मो यस्य नभोऽपि तस्य सततंरत्नैः परैर्वर्षति॥

जो मनुष्य धर्मात्मा हैं उनके धर्म के प्रभाव से भयंकर सर्प भी मनोहर हार बन जाते हैं तथा पेनी तलवार भी उत्तम फूलों की माला बन जाती है और धर्म के प्रभाव से ही प्राण घातक विष भी उत्तम रसायन बन जाता है तथा धर्म के ही माहात्म्य से बैरी भी प्रीति करने लग जाता

है और प्रसन्न चित्त होकर देव धर्मात्मा पुरुष के आधीन हो जाते हैं ग्रन्थकार कहते हैं कि विशेष कहाँ तक कहा जाय जिस मनुष्य के हृदय में धर्म है अर्थात् जो मनुष्य धर्मात्मा है उनके धर्म के प्रभाव से आकाश से भी उत्तम रत्नों की वर्षा होती है। इसलिये भव्य जीवों को धर्म से कदापि नहीं विमुख होना चाहिये और कहा भी है कि:—

श्लोक—उग्र ग्रीष्म रवि प्रताप दहन ज्वालाभि तप्तश्चलन्।
यः पित्तप्रकृतिर्मरौ मृदुतरः पान्थो यथा पीड़ितः॥
तद्वाग्लब्ध हिमाद्रि कुञ्ज रचित प्रोद्दाम यन्त्रोत्त्त्स-
द्धारा वेश्म समो हि संसृति पथे धर्मो भवेद्दिहिनाम्॥

अर्थ—जो बटोही ग्रीष्मकाल में भयंकर सूर्य की संताप रूपी अग्नि की ज्वालाओं से अत्यन्त तप्तायमान है, पित्त प्रकृति वाला है, कोमल शरीर का धारी है और मारवाड़ की भूमि में गमन करने वाला है। अतएव जो अत्यन्त दुखित है यदि वह दैव योग से हिमालय पर्वत की गुफा में बने हुये फव्वारों सहित मनोहर धारा गृह को प्राप्तकर लेवे तो वह परम सुखी होता है उसी प्रकार जो जीव अनादि काल से इस संसार में जन्म मरणादि दुःखों को सहता है तथा निरन्तर नरकादि योनियों में भ्रमण करता है, यदि वह धारा गृह के समान इस धर्म को पा लेवे तो सुखी हो जाता है। तत्पश्चात् वह शांति का अनुभव करने लगता है। इसलिये जो मनुष्य शांति चाहते हैं उन्हें अवश्य धर्माराधन रहना चाहिये।

धर्म से विमुख संसारी जीव अनेक संसार की आपत्तियों को अपनी उपाधि मान कर स्वयम् गड्ढे में गिर जाता है और दूसरे को भी गड्ढे में गिरा देता है। इसलिये सज्जन मनुष्यों को चाहिये।

रागादि दोष संयुक्ता प्राणीनां नैवतारकाः
पतन्नास्वयमेव अन्येषां नहिहस्तावलम्बनम्।

अर्थात् जो देव रागादि दोषों से युक्त है। वह दूसरे जीवों का हितकारी कभी नहीं हो सकता है जैसे जो स्वयम् किसी गड्ढे में गिर रहा हो वह उसी में गिरते हुये किसी अन्य जन को नहीं बचा सकता उसी प्रकार जो रागादि दोषों के कारण संसार समुद्र में डूब रहा है तो वह अन्य डूबते हुये मनुष्य को कैसे बचा सकता है। इसलिये जबतक सच्चा देव का अवलम्बन नहीं करेंगे संसार रूपी गड्ढे से निकलने का उपाय कोई नहीं है, कहा है।

वोधिलाभात् परा पुसः भूतिकावा जगत्त्रये।
किं पाकफल संकाशै किं परैरुदयच्छलै॥

मनुष्य के लिये तीनों लोकों में एक सच्चाधर्म ही अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्र से बढ़कर और कोई विभूति नहीं है। इससे भिन्न जिन वस्तुओं को यह अपनी विभूति मानता है वह सब विषफल के समान देखने में सुन्दर, खाने में मीठा मालूम देता है। परन्तु अन्त में प्राणों को नाश कर देता है उसी प्रकार परिपाक काल में दुःखदायक है, जैन

विख्यात सहस्त्र कूट शिखरवन्द जिन मंदिर था द्वारपर पहुँचकर अनेक प्रकार स्तुति करने लगे—

भगवन्दुर्णयध्वान्तैराकीर्णे पथिमे सति।
सज्ज्ञान दीपिका भूयात् संसारा वधिवर्धिनी॥

जिस प्रकार अहंकार के व्याप्त होने पर मार्ग पर पड़ी हुई वस्तुयें पथिक को दृष्टिगोचर नहीं होती है, किन्तु दीपक मिल जाने पर स्पष्ट हो जाती है उसी प्रकार हे भगवन् मेरा यह मार्ग मिथ्यात्त्व अधंकार से वेष्ठित हो रहा है अतएव मुझे आपके प्रताप से सम्यक्ज्ञान (सच्चा धर्म की रुचि) दीपक प्राप्त हो जिससे मुझे अपना हित मार्ग सूझ सके—

जन्मजीर्णाटवी मध्ये, जनुषान्धस्य में सती।
सन्मार्गे भगवन्भक्ति-र्भवंतान्मुक्ति दायिनी॥१॥

जैसे किसी गहन बन में जन्मांध पुरुष को रासता मिलजावे तो वह अभीष्ट स्थान में पहुँचकर संतुष्ट होता है। वैसे ही हे भगवन् सन्मार्ग को भूलकर मैं इस संसार बन में भटक रहा हूं। अब आप से यही प्रार्थना है कि मुझे वह समीचीन मार्ग प्राप्त हो जिससे मैं परम्परा मुक्ति को प्राप्त कर सकूँ। अन्त में पुनः २ यह प्रार्थना करता है कि जैन मत के अनय नेता सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ के प्रसाद से मेरे मन की चंचलता हटे तो पाप बन्ध रुकजाने से सांसारिक दुःखों का सामना न करना पड़े। उस सहस्त्रकूट जिनालय के किवाड़ बहुत समय से बन्द थे, अनेकों प्रयत्न किये जाने पर भी नहीं खुले थे, किंतु जीवधर राजा के उपरोक्त स्तोत्र पढ़े जाने पर अनायास ही खुल गये। ठीक ही है भक्ति पूर्वक किये हुये स्तोत्र से मोक्ष मिल जाने की सम्भावना है उससे किवाड़ों का खुल जाना कोई आश्चर्य जनक बात नहीं है। जैसे सम्पूर्ण संसार के अधंकार को (जिसे अन्य कोई नहीं दूर करसकते) अकेला सूर्य उसे नष्ट कर देता है, और कुछ गर्व नहीं करता है, जीवधर कुमार भी स्तोत्रों द्वारा बज्र कपाट खुलजाने पर कुछ गर्वान्वित नहीं हुये। इसलिये संसारी जीवों को सांसारिक कष्टों को दूर करने के लिये अन्य कोई उपाय दुःखों को दूर करने का नहीं केवल एक सच्चा देव की आराधना मनन करने पर सुख की प्राप्ति होना दूर नहीं है अतएव मनुष्यों को सदैव धर्म का सहारा सच्चा रुचि पूर्वक लेने से जन्म मरण के दु:खों से छुटकारा मिलने में देरी नहीं है, क्षणमात्र भी यदि सच्चे धर्म की रुचि उत्पन्न हो जावे जो अनेकों जन्म के पाप नष्टकर सुख की प्राप्ति हो सकती है संसारी जीवों! यदि तुम्हें अपने दुःखों को मिटाना है। तो जैसे अपने कुटुम्बियों के लिये तुम रात दिन चिंतातुर रहते हो, सच्चे धर्म की भी किसी समय थोड़ी भी चिंता करो तो तुम्हें दुःख न मिलकर सुख की सामग्री सदैव प्राप्त हो सकती है। इस समय अगले समय में जितने महानुभाव, सुखी समृद्धि शाली हुये हैं, वह सब धर्म के धारण करने से हुये हैं, धर्म ही कल्याणकारी, हितकारी, सर्व का रक्षक, है इसे ही सेवन करना चाहिये—

ला० पुत्तीलाल ज्ञानचन्द जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख ११-६-५३ दिन शुक्रवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि संयम धारण करने में आत्म शुद्धि ही मुख्य है।
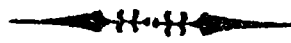
निर्मल आत्म शुद्धि होने के लिए मुख्य चार बातें है, प्रशम संवेग अनुकम्पा और आस्तिक्यता। प्रशम-अर्थात् कषायों की मंदता होने से विषयों में अरुचि होना, तथा उत्तरोत्तर विरकता होते जाना सच्चे धर्म की तरफ दृढ़ता होना। संवेग—संसार के दुःखों से भयभीत होना तथा धर्मानुराग सहित यथा शक्ति संयम धारण करना। कहा भी है—

सम्यग्दर्शन शुद्धा संसार शरीर भोग निर्विन्नः।
पंचगुरु चरण शरणों दर्शन कस्तत्व पथ गृहः॥

जिसको अपने आत्मापर पूरा रुचि उत्पन्न हुआ है वे ज्ञानी मनुष्य संसार और शरीर भोग से हमेशा विरक्त रहता है, और अपने मन में हमेशा अरहंत सिद्ध आचार्य, उपाध्याय सर्व साधु इन पांचों की अपने हृदय में प्रेम पूर्वक भावना करता है, क्योंकि इन पांचों के अतिरिक्त संसार में मेरे को दूसरा कोई शरण नहीं है इस प्रकार मन में श्रद्धा के साथ भजता हूँ। और संसार से भयभीत रहता हूँ।

अनुकम्पा—सर्व प्राणीमात्र पर दया करना उन्हें दीन दुःखी समझकर मन में करुणा भाव होना। जैसे कि—

भूतवृत्यनु कम्पादान सराग संयमादि योगः।
क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य॥

भूतानुकम्पा, वृत्यनुकम्पा दान सराग संयमादि क्षान्ति और शौच ये साता अर्थात् शुभ गति को करने वाले हैं। चारों गतियों के प्राणियों में दया का भाव होता भूतानुकम्पा है, अणुव्रत व महाव्रत के पालने वाले श्रावक व मुनियों पर दया करना वृत्यनुकम्पा है। परोपकार के लिये अपने द्रव्य को त्यागना दान कहलाता है। पृथ्वी कायिक जल कायिक वायु, कायिक अग्नि कायिक बनस्पति कायक और त्रस कायिक इन षट् कायिक जीवों की हिंसा न करना और पांच इन्द्रिय व मन को वश में करना संयम है। राग सहित संयम का नाम सराग संयम है। क्रोध मान व माया की निवृत्ति क्षान्ति है। सभी प्रकार के लोभों का त्याग करना शौच है।

आस्तिक्य—धर्म व धर्म के फल में श्रद्धा होना अर्थात् कठिन से कठिन अवसर आने पर (रोग आदिक होने पर) भी मन में इस प्रकार की शंका न करना कि धर्म करने से धर्मात्मा को कष्ट व पापियों को आनन्द मिलता है" यह तो पंचम काल है इसमें धर्म का फल कहां मिलता है ? हमें अधिकांश में यही देखने में आता है। कि धर्मात्मा दुःखी व पापी सुखी रहते हैं परन्तु उन्हें देखकर हमें ऐसी कल्पना कदापि नहीं करना चाहिये कि धर्म का फल दुःख व पाप का फल सुख होता है। हमेंयह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि धर्म से सुख व पाप से दुःख ही मिलता है (कलयुग का प्रभाव) एक शहर में एक वैश्य की दूकान थी वैश्य विचारा बहुत सीधा साधा और भगवान का भक्त था, प्रातः-काल उठकर अपने नियम धर्मों का पालन करता था, सत्य बोलना धर्म से जीविकोपार्जन करना आदि सेठ में विचित्र गुण थे इस प्रकार के व्योहार से सेठ को पैदा बहुत थोड़ी थी लेकिन सेठ जी संतोष से सुखी रहते थे कुछ दिनों के बाद एक अहीर ने सेठ जी की दुकान के सामने एक दूकान किराये में ली, उसके पास केवल १॥) की पूँजी थी, अहीर उसी दिन दोचार पैसे के बर्तन भांड़े कुम्हार के यहां से लाकर दूध बेंचने लगा, दूध में उतना ही पानी मिलाकर बेंचने लगा, इसप्रकार चौधरी अहीर के उसी दिन दूने हुये—तीसरे दिन २॥) का दूध लाकर उतना ही पानी मिला दिया आज भी दूध बेंच कर लिये इसी तरह कुछ ही दिनों में चौधरी साहेब मालामाल हो गये कुछ दिन पहिले जहाँ एक लँगोटी लगाये फिरते अब उनके ठाठ, निराले हो गये यहां तक कि उस दूकान को मोल लेकर तीन खंडी बनवा लिया और कई नौकर चाकर भी रहने लगे, सेठ जी यह दृश्य देखकर बहुत विस्मय में पड़े मन में कहने लगे कि लोग कहा करते हैं कि कलयुग में अधर्म करने ही से सुख मिलता है ? इसी संकल्प विकल्प में थे। कि एक बड़े महात्मा उसी गांव में पधारे सेठ जी ने सुना तो उनकी शरण में जाकर प्रणाम किया। और पूछा कि, महात्मन् क्या कलियुग में अधर्म से ही सुख मिलता है। हम प्रति दिन नित्य क्रिया करते हैं दान देते हैं, पूजन करते हैं, सत्य बोलते हैं, जाप करते हैं। इत्यादि शुभ अनुष्ठान करते हैं। परन्तु फिर भी हमको खाने भर को कठिनता से पैदा होता है, और एक अहीर ने हमारी दूकान के सामने थोड़े ही दिनों से दूकान रखा है, उसके पास केवल डेढ़ रुपये थे, परन्तु ज्योंही उसने दूध में आधा पानी मिला २ कर बेंचना आरम्भ किया, कि लाखों रु० का धनी हो गया। इससे ज्ञान होता है। कि आज कल अधर्म से ही उन्नति होती है महात्मा ने कहा कि इसका, उत्तर सेठ जी हम आपको ८ दिन बाद देंगे महात्मा ने एक ८ हाथ का गहरा गड्ढा खुदवाकर सेठ जी को खड़ा कर दिया और उसमें पानी डलवाने लगे जिस समय जल सेठ जी के गांठ तक आया, महात्मा जी ने पूछा कहो सेठ जी कुछ कष्ट तो नहीं है, सेठ जी ने कहा अभी तो कोई कष्ट नहीं मालूम होता है अतः महात्मा जी ने उसमें और पानी छोड़वा दिया जब जल सेठ जी की कमर तक आया तब महात्मा जी ने पूछा कहो सेठ जी कोई कष्ट तो नहीं है ? सेठ जी ने कहा कोई

कष्ट नहीं है पुनः महात्मा जी ने और जल गड्ढे में छुड़वाया जल सेठ जी की छाती तक आया, तो महात्मा जी ने फिर पूछा सेठ जी ने कहा कोई कष्ट नहीं है, महात्मा जी ने फिर जल भरवाया अब सेठ जी के कन्ठ तक जल आगया महात्मा जी ने पूछा सेठ जी ने उत्तर दिया कोई कष्ट नहीं है अब आप लोग विचार करें कन्ठ तक डूबे हुये सेठ जी कह रहे हैं कि कोई कष्ट नहीं है, अब महात्मा जी ने और जल भरवा दिया तो सेठ जी अब डुबकियां लेने लगे और बोले महात्मा जी हमें शीघ्र ही निकाल लीजिये हमारा दम निकल रहा है। महात्मा जी ने सेठ को निकाल कर कहा कि आपको अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया ? सेठ जी ने कहा कि नहीं समझ में आया, महात्मा जी ने कहा गांठों तक जब जल आय तब मैंने पूछा कोई कष्ट तो नहीं है आपने कहा कि कोई कष्ट नहीं है इसी तरह कन्ठ तक जल आने पर आपने कहा कि कोई कष्ट नहीं है सिर्फ दस घड़े पानी भरने की देर थी आप डूबने लगे, इसी तरह से पाप करने से पाप ही होता है पाप सदैव डुबाने वाला होता है, धर्म सदैव सुख कारक होता है कहा है कि:

अन्यायोपार्जितं वित्तं दश वर्षाणितिष्ठति ।
प्राप्तेतुएकादशे वर्षे समूलंच विनश्यति ॥१॥
अधर्म नैधतेतावन् तातो भद्राणिपश्यति ।
तथा सप्रतनान् जयति समूमस्तु वितश्यति ॥२॥

इसी तरह धर्म का फल धर्म—सुखमिलता है अधर्म का फल दुःख ही मिलता है—यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि धर्म से सदैव सुख और पाप से सदैव दुःख ही मिलता है, कितने ही मनुष्य इसी धर्म से अधर्म की श्रद्धा से शिथिल हो जाते हैं—कि धर्म करने में कुछ नहीं है यद्वा तद्वा आचरण करने में लग जाते हैं जो महात्मा सूक्ष्म जीवों की रक्षा का उपदेश करें। और मोटे पंचेन्द्रिय जीवों के चित्त को दुखावे, यह बात सम्भव नहीं है इससे मोक्ष कैसे मिल सकता है।

धर्म तो कहीं पड़ा नहीं मिलता है। न कहीं मोल मिलता है यह तो सदाचरण और अहिंसक रहकर ही प्राप्त किया जा सकता है इस लिये हमारी माता और बहिनों और धर्मात्मा पुरुषों को चाहिये कि धर्म का स्वरूप अच्छी तरह समझकर और खोटे विकल्पों को त्यागकर धर्म ग्रहण करना चाहिये, सच्चे देव, गुरु शास्त्र की भक्ति करना चाहिये संयम शीलादि गुणों को अपने में ग्रहणकर रुचि पूर्वक धर्माराधना करना चाहिये जिससे स्त्री लिङ्ग छेदकर पुरुष लिङ्ग प्राप्त कर मोक्ष का साधन अनुक्रम से प्राप्त करले, परन्तु ऐसा न करके लोभ के वशीभूत हो कर संसार में विना विचारे देखा देखी जो लोग अधर्म को धर्म समझकर सेवन करते हैं। उनका कल्याण कैसे हो सकता है, वर्तमान में उलटा फल दृष्टि गत होता है, इसका कारण उनके पूर्वोपार्जित पुन्य और पाप का फल है, न कि वर्तमान के शुभ अशुभ कर्मों का फल, वर्तमान में जो किया जाता है उसका वैसा ही फल शुभाशुभ अवश्य मिलेगा, ऐसा समझकर धर्माचरण पालते हुये उसकी और इच्छा न करना अर्थात् धर्म के फल की इच्छा न करके धर्माचरण करते रहना चाहिये, क्योंकि फल तो अपने २ कर्मानुसार सभी जीवों को स्वयम् मिलता है फिर निदान बन्ध क्यों किया जावे। इत्यादि आस्तिक्य भाव हैं,

मैत्री—जीव मात्र से मित्र भाव (प्रेमभाव) रखना अर्थात् उन्हें सुखी देखकर हर्ष मानना और दुःखी देखकर यथा शक्ति उनके दुःख दूर करने का उपाय करना।

प्रमोद—अपने से गुणाधिक्य पुरुषों में ज्ञान व चारित्र आदि की वृद्धि देखकर प्रसन्न होना न कि डाह करना—

माध्यस्थ—अर्थात् जो जीव विपरीत मार्गी हैं जिन्हें सन्मार्ग में नहीं लगा सकते हैं या जो जीव उपदेशामृत को अपने पूर्वोपार्जित, मोहादि अशुभ कर्मोदय से विषतमान आस्वादन करने अथवा उलटे धर्म व धर्मात्माओं पर कलँक लगा कर उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं, ऐसे विपरीत मार्गी जीवों से कषाय न करके माध्यस्थ भाव धारण करना चाहिये, अर्थात् न तो उनकी अनुमोपनाही करना और न विरोधी ही बनकर उन्हें कष्ट पहुँचाना और न अपने संक्लेशभाव रखना परन्तु यदि हो सके तो उनके सुधारने का प्रयत्न करना अन्यथा समता भाव धारण करना यही माध्यस्थ भावना है। इसके सिवाय और भी अनेक गुण आत्म शुद्धि वाले को प्रगट होते हैं। जैसे समता रखना (हानि व लभ्भ में सुख दुःख में जीव मरण में इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग में भय इत्यादि अवस्थाओं में अपने धैर्य को न त्यागना उनमें रागी द्वेषी न होना कायरता न करना, समभाव रखना) क्षमा भाव प्राणियों के धारा अपने ऊपर किये हुये उपसर्गों को सहन करना क्रोध न करना परोपकारिता, धैर्य पुरुषार्थादि अब प्रश्न यह होता है कि आत्मशुद्धि को प्रधान पद क्यों दिया जाता है। तो उत्तर यह है कि स्वपर कल्याणाभिलाषी मनुष्य कल्याण के सत्यमार्ग की खोज व परीक्षा करके उस पर अपना दृढ़ विश्वास जमा लेता है और फिर यदि वह प्राणी किसी कारण वश उस मार्ग से च्युत हो जाता है किसी उलटेमार्ग को ग्रहण कर लेता है, परन्तु अपना श्रद्धान जैसा का तैसा ही अर्थात् सदाचरण को शुभाचरण, और पापाचरणादि को पापाचरण समझता है। तो सम्भव है कि वह फिर कभी सम्यक् मार्ग ग्रहणकर सकेगा, क्योंकि विपरीत मार्गी होते हुये भी वह आत्मशुद्धि मार्ग से भ्रष्ठ नहीं हुआ है—जैसे स्वामी समन्तभद्राचार्य स्वामी माघनंदि मुन्यादि चारित्र भ्रष्ट होकर दर्शन भ्रष्ट न होने के कारण पुनः कल्याण मार्ग में स्थित हो गये थे परन्तु जो पुरुष चारित्र पर कदाचित दृढ़ हो परंन्तु आत्म शुद्धि अर्थात् दर्शन से (श्रद्धा से) च्युत हो गया है। तो उसका सुलटना दुःसाध्य ही है वह भ्रम में पड़कर भ्रष्ट हो जायगा श्रद्धान न रहने के कारण मोक्ष मार्ग में न टिक सकेगा। अनन्त संसार में भटकता फिरेगा—

———

धर्मपत्नी-अमीरचन्द जी जैन दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख १२–९–५३ दिन शनिवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि अहिंसा धर्म ही परम धर्म है
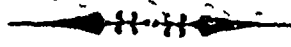
भ्रातः कष्ट महो महान्स नृपतिः
सामन्त चक्रं तत् ॥
पार्श्वे तस्य च सा ऽपि राज
परिषत्ताश्चन्द्र बिम्बाननाः ॥
उद्रिक्तः स च राज पुत्र निव
हस्ते बन्दिनस्ताः कथाः ।
सर्वं यस्य व शादगात् स्मृति
पदं कालाय तस्मै नमः ॥

ऐ भाई! कैसे कष्ट की बात है! पहले यहाँ कैसा राजा राज्य करता था, उसकी सेना कैसी थी, उसके राज्य-पुत्रों का समूह कैसा था, उसकी राज्य सभा कैसी थी, उसके यहाँ कैसी कैसी चन्द्रानना स्त्रियाँ थीं, कैसे अच्छे अच्छे चारण-भाट और कहानी कहने वाले उसके यहाँ थे! वे सब जिस काल के वश हो गये, उसी काल को मैं नमस्कार करता हूँ।

कोई व्यक्ति किसी प्रतापी राजा की राजगिरि को उजड़ा हुआ देखकर शोक करता हुआ कहता था कि यहाँ का राजा बड़ा प्रभाव शाली था, उसकी अगणित सेना थी, उसके पास अनेकों प्रतापी पुत्र थे, उसके यहाँ चन्द्रमा को लज्जित करने वाली अनेकों स्त्रियाँ थीं, उसकी सभा इन्द्र सभा को भी तिरस्कृत करने वाली थी उसकी सभा में एक से एक बुद्धिमान मंत्री चारण भाट प्रभृति थे; एक दिन ये सब थे पर आज न तो वे लोग हैं और न राजा ही। चन्द्र-मुखी अनेक स्त्रियाँ कहाँ चली गईं? इन सब को काल ने इस प्रकार भक्षण कर लिया कि आज उसका नाम निशान तक संसार में नहीं रह गया। उस काल ने सभी को स्ववशवत कर दिया अतः उसे मैं नमस्कार करता हूँ। किसी महात्मा ने कहा भी है कि:—

सातों सब्दन बाजते घर घर होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े बैठन लागे काग ॥
परदा रहतीं पद्मिनी करती कुल की कान।
घड़ी जो पहुँची काल की डेरा हुआ मैदान ॥

जिस मकान में पहले तरह तरह के बाजे बजते थे आज वे खाली पड़े हैं काल के आने

से मैदान में डेरा पड़ा है अर्थात् सबके सामने मरघट में पड़ी है। निश्चय ही संसारकी प्रत्येक वस्तु नाशमान है सदा नहीं रहेगी सबकी बारी आने से सभी का नाश होगा। महाकवि दाग कहता है कि—

जवाले आमदा अजजा आफरीनश के तमाम।
महर गई है चिरागे रह गुजारे वादयां॥

सभी संसार के पदार्थ अनित्य हैं सभी नाशवान हैं जिसे सूर्य कहते हैं वहभी एक ऐसा चिराग दीपक है जो हवा के सामने रखा हुआ है और "अब बुझा अब बुझा" हो रहा है तब औरों की तो बात ही क्या? इस संसार की यही दशा है यह अनन्त जल राशि पूर्ण महान सागर हिमालय इत्यादि भी एक दिन काल की गाल में समा जायेंगे, देवता गन्धर्व पृथ्वी जल इत्यादि को भी एक दिन काल खा जायगा। देवता भी सब इन्हींके आधीन हैं इसमें अज्ञान अवस्था ही होती है। संसारी जीव संसार को मिथ्या और नाशवान, सारहीन समझता है वह तो नित्य अखँड अविनाशी द्रव्य का ही सेवन करता है अज्ञानी मोहांधकार में फँसकर नाना प्रकार कष्ट सहन करता है कोई कोई कहते हैं कि यह जीवन क्षणभर का है। काम तो अनेक हैं पर समय थोड़ा है। क्या क्या करें गङ्गा तट पर जाप करना भी अच्छा है। गुणवती सुन्दरियों के साथ मीठी २ बातें करना भला है। उनके साथ रहना, और रमण करना भी भला है वेदान्त शास्त्र के कर्म को समझना भी और उसका अमृत रस पीना भी श्रेष्ठ है या काव्य रस भी पीना अच्छा है, अच्छे सब हैं। और सभी करने योग्य हैं पर हमारी समझ में नहीं आता है कि एक क्षण भर की जिन्दगी में हम क्या क्या करें मतलब यह है कि यह मनुष्य जीवन बहुत ही थोड़ा है इसलिये जब तक जीवन रहे सब तजकर एक मात्र परमात्मा का भजन करना चाहिये—कबीरदास कहते हैं।

यह तन कांचाकुम्भ है, माहिंकिया रहवास।
कबिरा नैन निहारिया नहीं पलककी आस॥१॥
कबिरा जो दिन आज है सो दिन नाहींकाल।
चेत सके तो चेतिये मीच परी है, ख्याल॥२॥
कबिरा सुपने रैन के उघरि आये नैन।
जीव परा वहु लूट में जागूँ तो लैन न दैन॥३॥
आजकाल कि पांच दिन जंगल हो गया वास।
ऊपर ऊपर हल फिरे ढोर चरेंगे घास॥४॥

तुलसीदास जी कहते हैं

तुलसी जग में आय के कर लीजे दो काम।
देवे को टुकड़ा भला लेवे को हरिनाम॥१॥
तुलसी राम सनेहकर त्याग सकल उपचार।
जैसे घटत न अङ्क नौ नौ के लिखत पहार॥२॥
जगतें रहु छत्ती से ह्व राम चरण छःतीन।
तुलसी देख विचार हिय है यह मनौ प्रवीन॥३॥

यह शरीर मिट्टी के घड़े जैसा है इसके भीतर जीवात्मा रहता है, कबीर दास जी कहते हैं। आंखों से देखा है एक क्षण की भी आशा नहीं खुलाशा है कि जिस तरह कच्चे घड़े को फूटते देर नहीं लगती उस तरह इस कच्चे घड़े के समान शरीर को नाश होते देर नहीं कौन जाने किस समय यह कच्चा घड़ा रूपी शरीर फूट जाय, और इसमें से जीवात्मा निकल जावे इसकी आशा उतनी देर भी नहीं जितनी की पलक मारने में लगती है, जो आज है वह कल न होगा। चेत सके तो चेत मौत सर पर सवार

है। जो वरसों जी ने की आशा करते हैं। वह भूल है आज हो कल हो किसी समय भी मरण हो सकता है इसलिये चेत करो सम्भालो आगे का प्रवन्ध करो यदि संसार जंजाल में फँसे ही रहे इस क्षण से अगली यात्रा प्रबन्ध न करोगे। वहां मिलने के लिये यहां के ईश्वरीय बैंक द्वारा रुपये, पैसे, गाड़ी घोड़े महल मकान बाग बगीचों का बन्दोबस्त न करोगे, इस दुनियां में परायां दुःख न दूर करोगे। और ईश्वर का नाम स्मरण न करोगे तो तुम्हें उस लम्बी सफ़र में बड़ी २ तकलीफें होंगी यहां बोलोगे तो वहां काटोगे यहां अच्छा करोगे तो वहां अच्छा पावोगे यहां गरीबों को दोगे तो वहां मिलेगा। जीवन सपने के समान है। स्वपने में देखा कि लूट पड़ी है; आंख खुली तो देखा कुछ नहीं संसार में आकर दो काम करो दान करो और भगवान का भजन करो सम्पूर्ण आडम्बर त्याग कर परमतमा में स्नेह करो, जैसे नौका पहाड़ा लिखने पर नौका अङ्क कहीं छूटता नहीं है। परमात्मा के स्नेह में छःतीन अर्थात् एक में कहो कर रहो उसी का ध्यान हमेशा रखो और संसार से छत्तीस अर्थात् अलाहिदा २ होकर रहो इसी से तुम्हारा उद्धार होगा और कल्याण की प्राप्ति होगी।

आचार्य कहते हैं कि स्वकर्म वश से दुःख की निवृत्ति के लिये जो दुःख रूपी व्यापार करते हैं वे मूर्ख हैं ही किन्तु जो अपने पुत्र कलत्रादिकों के वियोग में रोते हैं वे मूर्ख शिरोमणि अर्थात् वज्र मूर्ख हैं इसलिये बुद्धिमान् पुरुष को पुत्र पौत्र तथा कलत्रादिकों के देहावसान काल में कदापि नहीं रोना व शोक करना चाहिये।

यह समस्त संसार बिजली के समान क्षणिक तथा केले के स्तम्भ के समान नाशवान् है। इसलिये हे भव्य जीवों! तुम करुण क्रन्दन अवश्य करो पर भगवान के नाम व उनके जप व कीर्तिन में मग्न होकर। आचार्य कहते हैं कि ऐ धर्म वन्धुओं! तुम सब नश्वर पदार्थ के पीछे जितना रुदन करते हो, यदि उतना प्रेम परमात्मा से करके रुदन किये होते, तो तुम्हारा जीवन सफल होता। जो जीव पैदा हुआ उसका मरण एक दिन अवश्य होगा जो वृक्ष उत्पन्न हुआ है उसका नाश अवश्य होगा तीन लोक में ऐसा कोई नहीं है जो इसकी रक्षाकर सके—

किसी नगर का राजा १ किला बनवा रहा था किला बनाते थे किंतु बार २ गिर जाता था तब राजा ने एक ज्योतिषी को बुलवाया उसने कहा कि एक मनुष्य की जीवित बलि दी जावे बालक ७-८ वर्ष का हो तब किले का गिरना बन्द हो जावेगा। राजा ने सोचा अपना बालक कोई कैसे दे सकता है। फिर विचारा तो जान पड़ा कि धन के बदले में पुत्र मिल सकता है। एक स्वर्ण मूर्ति रथ में स्थापितकर राज्य भर में कहलवाया जो अपना १ लड़का दे देगा तो उसे सम्पूर्ण स्वर्ण राशि मिलेगी एक ब्राह्मण ने सुन कर विचार किया कि मेरे ७ पुत्र हैं एक दे देने से विशेष हानि नहीं है स्त्री भी सहमत हो गई एक लड़का जो खेलने गया था उसके लिये कहा कि इसको पकड़ ले जाओ, लड़के को पकड़ने लगे तो भागकर पिता के पास आया पिता ने फटकार दिया माता के पास गया उसने भी नहीं रोका निदान लड़के को ले जा रहे हैं परन्तु बालक हंस रहा है नगर वासी सब स्त्री पुरुष

रो रहे हैं। राजदरबार में ले जाया गया। परन्तु वहाँ वह बालक अधिक हँसने लगा। राजा ने पूछा थोड़ी देर में तुम्हारी मौत होने वाली है। परन्तु फिर भी तुम हंस रहे हो इसका क्या कारण है बालक ने कहा कि बालक पर कोई आपत्ति आवे तो पिता के पास या माता के पास या राजा के पास जावेगा। माता पिता तो फटकार दिया आश्रय नहीं दिया राजा के पास अब आया हूं परन्तु वह भी न रक्षा करें तो फिर कोई क्या करे, निदान सभा में वहां एक देवी आकर बोली कि राजन् इसे छोड़ दो मैं अब बलि नहीं मांगती हूँ। किला अब नहीं गिरेगा सुनकर सब लोग हवाक् रह गये बालक और राजा वैराग्य धारण कर गये संसार से विरक्त हो गये सब लोग अपने स्वार्थ के लिये निंदनीय कार्य भी कर डालते हैं स्त्री पुरुष के लिए शोक करना वृथा है क्षणिक वस्तु के लिये शोक करना बेकार है, आचार्य कहते हैं तेरे स्त्री पुरुष इत्यादि का संयोग पूर्व कर्मानुसार होता रहेगा इसे कोई टाल नहीं सकता है, एक समय रावण ने पूछा था ज्योतिषी से तो उसने कहा था कि तेरी लड़की के हाथ से तेरी मृत्यु होगी निदान जब लड़की पैदा हुई तो निर्जन स्थान में छोड़दी गई लड़की सुन्दरी थी इसलिये चांडाल को दया आगई उसने एक बक्से में बन्द करके गाड दिया हलचाहाहल चला रहा था उसको वह मंजूषा मिली उसने राजाजनक को दे दिया राजाजनक ने राम के साथ उसका विवाह कर दिया, और सीता हरण का संयोग होकर रावण की मृत्यु हुई इसलिये जो होनहार है वह कभी टल नहीं सकता है ऐसा काम करो जिससे इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग जो परम्परा से लगा हुआ है इससे छुटकारा मिल जावे।

रोना अच्छा है, पर जब अविनाशी पद अर्थात् मोक्ष पद प्राप्त हो जाय तो अन्यथा दुःख दायिनी वस्तुओं के लिये रोना नितान्त मूर्खता है। नष्ट हुई वस्तु यदि प्राप्त हो जाय तो शोक करना युक्त है, किन्तु जब यह निश्चय है कि गई हुई वस्तु कदापि नहीं मिल सकती तब शोक करने से क्या लाभ है?

श्लोक-एक द्रुमे निशि वसन्ति यथा शकुन्ताः
प्रातः प्रयान्ति सहसा सकला सुदिक्षु।
स्थित्वा कुलेव्रत तथान्यकुलानि मृत्वालोका
श्रयन्ति विदुषा खलु शोच्यते कः॥

रात्रि के समय जिस प्रकार एक ही वृक्षपर नाना देशों से पक्षी आकर विश्राम करते हैं और प्रातःकाल होते ही वे लोग पृथक् २ अपने २ स्थानों पर उड़कर चले जाते हैं उसी प्रकार बहुत से मनुष्य एक ही कुल में जन्म लेकर मरने के पश्चात् यथा स्थान - अर्थात् नाना कुल में जन्म लेते हैं। अतः विद्वान् लोग किसी के वियोग में शोक नहीं करते। यह संसार सघन वन के समान है तथा इसमें घोर अज्ञानाधंकार चारों ओर से अच्छादित हो रहा है जैसे चारों ओर के लोग विचार करने के लिये बाजार में इकट्ठा होते हैं और बाजारमें चीज खरीदने तक अपने भाई बन्धुओं से मिलाकर इधर-उधर चले जाते हैं उसी प्रकार संसारी जीव इस जगत् रूपी बाजार में सदसत् कर्म करके पाप व पुण्य की गठरी लेकर अपने कर्मानुसार गतियों में पहुँच जाते हैं।

धर्मप० श्यामलालजी व धर्मप० रतनलालजी जैन दरियाबाद नि० ने जनताप्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख १३-६-५३ दिन रविवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि मनुष्य जन्म का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है
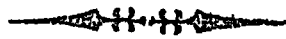
प्राप्तेऽपि दुर्लभतरेऽपि मनुष्य भावे ।
स्वप्नेन्द्र जाल सदृशेऽपि हि जीवितादौ ॥
ये लोभ कूप कुहरे पतिताः प्रवक्ष्ये ।
कारुण्यतः खलु तदुद्धरणाय किञ्चित् ॥

अर्थ—अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर तथा स्वप्न के समान और इन्द्रजाल के समान जीवन यौवन आदि के होने पर भी जो मनुष्य लोभ रूपी कुएँ में गिरे हुये हैं उनके उद्धार के लिये आचार्य कहते हैं कि मैं दया भाव से कुछ कहूँगा ।

श्लोक-कान्तात्मज द्रविण मुख्य पदार्थ सार्थ ।
प्रोत्थाति घोर घन मोह महा समुद्रे ॥
पोतायते गृहिणि सर्व गुणाधिकत्वा—
द्दानं परं परमसात्त्विक भाव युक्तम् ॥

स्त्री—पुत्र धनादिक जो मुख्य पदार्थ का समूह है उससे उठा हुआ जो अत्यन्त घोर तथा प्रचुर मोह के विशाल समुद्र स्वरूप इस गृहस्थाश्रम से पार होने के लिये परम सात्विक भाव से दिया हुआ तथा सर्व गुणों में अधिक ऐसा उत्कृष्ट दान ही जहाज स्वरूप है । आचार्य कहते हैं । कि संसारावस्था में पड़े हुये जीव लोभ के वशीभूत होकर संसार सागर में डूबते के समान प्रतीत हो रहे हैं । अतः उन्हें शास्त्र दान, विद्यादान अभयदान और आहार दान रूपी नौका का आश्रय लेना चाहिये जिससे कि डूबने का भय न रह जाय । इस पर एक दृष्टांत दिया जाता है कि एक सोमश्री नाम की विप्र-वधू अपने सहेलियों के साथ घड़ा लेकर जल भरने गई । वहां जाकर, देखा कि अनेक सौभाग्यवती स्त्रियां मंगल कलशों को भर भरकर भगवान का अभिषेक कर रही हैं । सोमश्री का अज्ञान पटल नष्ट हो गया । इसके हृदय में बड़ी श्रद्धा हुई कि मैं भी भगवान का अभिषेक करूँ । अतः उसने अपने कलश का विशुद्ध जल भक्ति पूर्वक भगवान् के ऊपर अभिषेककर दिया तत्पश्चात् रिक्त हस्त से अपने घर में चली गई, यह समाचार जानकर उसकी सास ने उसे बहुत डाँटा फटकारा और कहा कि मैं कुछ नहीं

जानती। तुम चाहे जहां से घड़ा लेकर पानी ले आओ। उसके पास हाथ में स्वर्ण कंगन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। अतः वह रोती कलपती हुई कुम्हार के पास जाकर कहने लगी कि आप हमारे हाथ का कंगन ले लें और हमारा घड़ा लाकर दे दें, अन्यथा हमें घर में लोग परेशान करेंगे। कुम्हार भी भक्त था। इस लिये उसने कहा कि ऐ पुत्री! हमें तुम्हारा स्वर्ण कंगन नहीं चाहिये। तुमने अपना घड़ा भगवान् के अभिषेक में लगाया है, यह तुमने बड़ा अच्छा किया। मैं तुम्हें पुनः एक दूसरा घड़ा देता हूँ, तुम इसमें पानी भर कर अपने घर ले जाओ। तत्पश्चात् वह पानी लेकर अपने घर गई और अन्त में उसने अपना जन्म सुख पूर्वक व्यतीत कर देहावसान होने पर राजा के यहां जन्म लिय और उसका नाम कुम्भश्री पड़ा। अनुमोदना देने के कारण कुम्हार ने भी आनन्द पूर्वक दिन विताकर राजा के यहां जन्म लिया।

अगर यह जीव भाव पूर्वक एक बार भी मन वचन काय से भगवान की पूजा चार प्रकार की आहार शास्त्र, औषधि, और अभय भक्ति पूर्वक अपने शक्ति के अनुसार रुचि पूर्वक संयमी या धर्मात्मा अन्य दीन दुःखी को करुणादान देकर अपने मानव जन्म का सफलता क्यों नहीं बना लेते ? केवल अन्न दान देने से दीन अज्ञानी मिथ्यादृष्टि भी पुण्य बन्ध कर लेता है। और बस पुण्य बन्ध के कारण स्वर्ग मोक्ष दोनों ही प्राप्त कर लेता है। फिर मनुष्य को उत्तम कुल उत्तम जाति को प्राप्त कर भी और उत्तम सभी तरह का पुण्य साधन करने योग्य अपने को प्राप्त होने पर भी उसके साधन के विलकुल ख्याल न करके केवल पशु के समान आचरण करके अन्त में आर्त रौद्र ध्यान परिणाम के साथ अपने शरीर को त्याग करके फिर अनन्त दुख से भरा हुआ चारो गति में भ्रमण करता है। संसारी जीव धर्म से विमुख रहने के कारण क्या २ अनर्थ नहीं करता है अर्थात् सभी अनर्थ करता है एक दृष्टांत है—इसी जम्बूद्वीप में अयोध्या नगरी में अनन्त वीर्य नाम का एक राजा था उसी नगर में कुबेर के समान सुरेन्द्र-दत्त नामक वैश्य था जो कि बड़ा धर्मात्मा था न्यायवान था देव, गुरु शास्त्र की भक्तिमें भ्रमर-वत मग्न रहता था उन्होंने दस स्वर्ण मुद्रा खर्च करके अर्हंत भगवान की नित्य पूजा में और अष्टमी की पूजा बीस स्वर्ण मुद्रा अमावस्या के दिन चालीस चतुर्दशी के दिन अस्सी इसप्रकार भगवान के चरण कमल की पूजा में तथा पात्र दानमें खर्च करता था वह सुरेन्द्रदत्त धर्म विशेष करने के कारण "धर्मशील" कहलाने लगा था और इसकी ख्यातिचारों ओर फैल गई थी कुछ दिन के पीछे विचार किया कि समुद्र मार्ग से गमन करके बारहवर्ष पर्यंत धनोपार्जन करके पीछे लौट आऊँगा, बारहवर्ष पर्यंत जोधन पूजा में खर्च की आवश्यता थी उतना धन रुद्रदत्त ब्राह्मण को देकर कहा कि जैसे मैं पूजन करता उसी रीति से तुम पूजनादि करना—सुरेन्द्रदत्त के चले जाने के पश्चात् रुद्रदत्त ब्राह्मण समव्य-सनों में तल्लीन हो गया। और सम्पूर्ण उन्हीं विषयों के सेवन में खर्च कर डाला, जब धन नही रहा तो चोरी इत्यादि करने लगा एक दिन रात्रि में चोरी करने के लिये भ्रमण कर रहा था तो सैनिक कोतवाल ने उसे पकड़ लिया पूछा तुम कौन हो रुद्रदत्त बोला ब्राह्मण हूं, इस पर कोतवाल ने कहा कि ब्राह्मण होने के कारण मैं

तुम्हें मार नहीं सकता इसलिये तुम मेरे नगर से चले जाओ यदि कभी दिखलाई पड़े तो यमराज के पाहुना अपने को समझ लेना इसप्रकार डांटकर नगर से निकाल दिया, उस रुद्रदत्त ब्राह्मण ने उल्कामुखी नामक गांव में जहां डाकुओं का अड्डा था उनके निवास स्थान में गया और उन डाकुओं का सरदार बन गया। किसी दिन उस डाकू सरदार ने अयोध्या नगर में आकर गायों की चोरी किया और उसी चोरी में उसी कोतवाल द्वारा पकड़ा जाकर मारा गया और अधोगति में गया वहां से चलकर क्रम से महामत्स्य हुआ फिर सिंह हुआ फिर महा भयानक सर्प हुआ फिर व्याघ्र हो गया, फिर गरुड़ पक्षी होकर पुनः सर्प हुआ और क्रम से नीच गतियों के दुःखों को भोगकर इसी भरत क्षेत्र में कुरुजांगल देश में धनंजय नाम का राजा हस्तिनापुर में राज्य करता था उस गांव में गौतम गोत्तोत्पन्न कपिष्ट नाम का ब्राह्मण अनुधरी पत्नी सहित दरिद्रावस्था में थे उन्हीं की कुक्षि में जन्म धारण किया जब उत्पन्न हुआ उसका सम्पूर्ण वंश नष्ट हो गया, माता पिता सभी मर गये अन्न के बिना शरीर उसका कृश हो गया हड्डी पसली दिखाई पड़ने लगी रूपकुरूप हो गया सिर में जुवां पड़ गया यत्र तत्र घूमा करता था, सबसे तिरस्कृत होता था। कहीं कोई सहायक नहीं मिलता था, न कोई पात्र उसके पास था अपने हाथ में ही भिक्षा मांगकर खाता था, न तो शरीर पर वस्त्र था शीत की बाधा भी सहता था स्नान करने का तो ठिकाना ही नहीं था जो झूठाअन्न फेंक दिया जाता था। उसी से अपनी उदराग्नि शांत करता था और इधर उधर भटकता फिरता था मालूम होता था कि यह जीव सातवें नरक का जीव है क्योंकि उसका रूप ही ऐसा घृणित था सब लोग यही समझते थे कि यह नरक का जीव है महा भयानक कुरूप आकृति थी जो देखता था वही तिरस्कार करता था कहीं भी जावे लेकिन पूर्ण उदर भोजन नहीं मिलता था फटे चीथड़े दुर्गन्धयुक्त पहिने जिसपर मखियां भिनभिनाहट करती थीं मलूम होता था कि कोई सड़ा हुआ मुर्दा हो छोटे २ बच्चे ईंट पत्थर उसके ऊपर फेंकते थे। और उपहास करते थे। तब वह उन बच्चों के पीछे पड़ जाता था, इस तरह समय व्यतीय करता हुआ किंचित काल लब्धि के उदय से एक दिन समुद्रसेन मुनिराज चर्य्या के निमित्त जा रहे थे यह भी उनके पीछे चल दिया, मुनिराज ने एक वैश्य के यहाँ आहार लिया—वैश्य ने मुनिराज के पीछे आया हुआ जो दरिद्री था, उसको भी आहार भर पेट दिया तब उसने सोचा अब दूसरे स्थान पर क्या करने जाऊँ मुनिराज से कहने लगा कि हे भगवन् मुझे भी अपने समान बनालो तब समुद्रसेन मुनि जो कि अवधिज्ञानी थे अपने अवधिज्ञान से। जाना कि यह जीव भव्य है और कहा कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो करलो कई दिनों तक देखकर इसके पश्चात् उनको संयम धारण करा दिया एवम् कठिन उग्रतर तप करने के कारण ब्राह्मण को एकवर्ष के बाद ऋद्धियां प्राप्त हो गई और श्री गुरु गौतम पद प्राप्त किया। इसके गुरु आयुष्य के अन्त में शरीर त्यागकर मध्यम ग्रैवेयक के ऊपर विशाल विमान में जाकर देव पद प्राप्त किया और गौतम भी अन्त समय में

आराधनाओं को आराधकर ग्रैवेक के ऊपर विशाल विमान में अहिमिंद्र पद प्राप्त किया। पूर्व ब्राह्मण का जीव और मुनिपद धारणकर उसी विमान में अनेक प्रकार के सुखों को भोग कर वहां से चलकर अन्धकवृष्टि हुआ, इसप्रकार जीव कर्म संयोग से ब्राह्मण का जीव अधर्म को ग्रहणकर सप्तव्यसन में रत होकर अनेक खोटी पर्यायों में गया और फिर धर्म के प्रभाव से अन्त में वही जीव पापी होने पर भी लब्धि आने पर देव पर्याय को प्राप्त किया इसलिये धर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिये पापी-से-पापी जीवों का उद्धार धर्म धारण करने से ही हो सकता है धन की शोभा धर्म करने से ही है। कहा भी है—

जल की शोभा कमल है, दल की शोभा फील।
धन की शोभा धर्म है कुल की शोभा शील ॥१॥
साध साधवस नाम हैं आप आप की दौड़ ॥
पांचौ इन्द्रिय वश करें तौ माथे का मौड़ ॥२॥
साधु बड़े परमार्थी मोटो जिनको मन ॥
भर भर मुट्ठी देत ही धर्न रुपयो धन ॥३॥
साधु संगति जब हुवै जागै पुन्य अँकूर ॥
कोई कौ रसायन उपजै तो जाय दरिद्र दूर ॥४॥
साधु सन्त का सूपड़ा सत्यैसत्य भासंत ॥
छाड़ पचाडै नूतड़ा कन ही कन राखंत ॥५॥
जो तो कूं कांटा बोवे ताहि बोवै तू फूल ॥
तो को फूल के फूल हैं वाको हैं तिरशूल ॥६॥
ऐसी बानी बोलिये मनका आपा खोल ॥
औरन को शीतल करे आपो शीतल होय ॥७॥
जहां दया तहां धर्म है जहां लोभ तहां पाप ॥
जहांक्रोध तहां कलह है जहां क्षमा तहांआप ॥८॥
झूठ कबहूँ नहि बोलिये झूठ पाप को मूल ॥
झूठे को कोऊ जगत करै प्रतीनित भूल ॥९॥
संयम करिबो है भलो सो आवै बहु काम ॥
पाप न संचय कीजिये जो अपयशको धाम ॥१०॥
श्रम से विद्या पाइये श्रम ही से धन होय ॥
श्रम हीसे सुखहोत है श्रमबिन सहै नकोय ॥११॥
आलस कबहूँ न कीजिये आलस अरिसमजान ॥
आलससे विद्या घटै सुख संपति की हान ॥१२॥
फल कारण सेवा करै तजै न मन से काम ॥
कहै कबीरा सेवक नहीं अछे चौगुना दाम ॥१३॥
जोगी जंगम सेवड़ा सन्यासी दर वेश ॥
बिना प्रेम पहुँचै नहीं दुर्लभ सतगुरु देश ॥१४॥
जिस जीवन के कारणे इतना करै गरूर ॥
वह जीवन फल मात्र है अन्त धूर की धूर ॥१५॥
अन्यायी राजा मिला जैसे पेड़ खजूर ॥
प्रजा को छाया नहीं फल लागै अति दूर ॥१६॥
पर घर कबहुँ न जाइये गये घटत हैं जोत ॥
रविमंडल में जातशशि हीन कला छविहोत ॥१७॥
एक दशा निउहै नहीं जनि पछिता बहु कोय ॥
रविहूकीं इक दिवसमें तीन अवस्था होय ॥१८॥
होय बुराई सो बुरो यह कीनो निरधार ॥
खांड खनैगो और को ताको कूप तयार ॥१९॥
बहुत निर्बल मिलि बल करें करें जोचाहै सोय ॥
मृणगन की डोरी करै हस्ती हूं बंधन होय ॥२०॥
खाय न खरचै सूम धन चोर सबै लेजाय ॥
पीछे ज्यौं मधुमक्खि का हाथ मलै पछिताय ॥२१॥
धन अरु योवन को गरब कबहुँ करिये नाहीं ॥
देखतही मिटिजात है ज्यौं तरुवरकी छाही ॥२२॥
बड़े २ को विपति में निश्चय लेत उबार ॥
ज्यों हाथी को कीच से हाथी लेत निकार। २३॥

धर्मपत्नी निहालचन्द जी जैन लखनऊ निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख १४-९-५३ दिन सोमवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में धर्म की महिमा को बतलाते हुये कहा कि:—
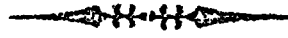
श्लोक—उह्यन्ते ते शिरोभिः सुरपतिरपि स्तूय मानाः सुरौवेर्गीयन्ते ।
किन्नरीभिर्ललित पद लसद्गीति भिर्भक्ति रागात् ॥
बंभ्रम्यन्ते च तेषां दिशि दिशि विशदाः कीर्तयः काल वास्या ।
लक्ष्मीस्तेपु प्रशस्ता विदधति मनुजा ये सदा धर्म केमम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य सदा एक धर्म को ही धारण करते हैं अर्थात् जो धर्मात्मा हैं, उनको इन्द्र भी मस्तक पर धारण करते हैं, बड़े २ देव उनकी स्तुति करते हैं, उन धर्मात्मा पुरुषों के गुण बड़ी शान्ति से किन्नरी जाति की देवी गाती है, उनकी कीर्ति समस्त दिशाओं में फैल जाती है और उनको उत्तम से उत्तम लक्ष्मी की भी प्राप्ति होती है। इस लिये भव्य जीवों ऐसा महिमायुक्त धर्म अवश्य धारण करने योग्य है। कुछ सांसारिक भोगों में फँसे हुये अभव्यों का प्रश्न है कि जब तक पर्याप्त धन नहीं है तब तक धर्म कहाँ से किया जाय, किन्तु धर्म, धन से नहीं होता। धम संचय करने के लिये श्रद्धा की आवश्यकता है। भाव-श्रद्धा से किया हुआ थोड़ा भी धर्म, बट बीज के समान अंकुरित हो कर महान् वृक्ष बन जाता है और उसकी छाया में सभी लोग विश्रान्ति लेकर परमानन्दित होते हैं किन्तु मूर्ख जन अधिक से अधिक धन पाने पर भी लोभ के वशीभूत होकर कुछ नहीं कर पाते। इस पर एक दृष्टान्त दिया जाता है कि एक निर्धन व्यक्ति धन की कामना से एक महात्मा जी की सेवा प्रति दिन किया करता था। महात्मा जी इसे दुःखी देखकर सोचने लगे कि किसी प्रकार इसकी दरिद्रता छुड़ानी चाहिये। यह सोचकर उन्होंने एक "पारस मणि" की बटिया लाकर उसे दे दिया और कहा कि इस बटिया को तुम आठ दिन तक अपने पास रक्खो और अधिक से अधिक लोहा लाकर इससे स्पर्श कराओ, ताकि तुम्हारे पास अक्षय धन हो जाय। महात्मा जी यह कहकर कहीं चल दिये।

वह व्यक्ति बाज़ार में जाकर लोहे का भाव पूछने लगा तो लोहे का दर आठ आने सेर था। दरिद्र होने पर भी वह इतना कंजूस था कि प्रस्तुत लोहा आठ आने सेर न लेकर चार आने सेर में कलकत्ते से मँगाने के लिये निश्चय किया। कलकत्ते से लोहा आने में लगभग छः दिन बीत गये। मकान के निकट आने पर दो दिन आँगन में जाते लग गये। वह कंजूस अब भी सोच रहा था "कि यदि आँगन में ही सोना बना लूँ तो सभी लोग देख लेंगे। अतः यहाँ से खजाने के मकान में ले चलना चाहिये" कि इतने में ही महात्मा जी आकर अपनी "बटिया" माँगने लगे। उसने कहा कि महाराज अभी तक तो मैं एक रत्ती भर भी सोना नहीं बना सका। महात्मा ने कहा कि अरे मूर्ख! मैंने तो तुम्हें आठ दिन के लिये यह "पारस मणि" की बटिया दिया था। यदि तू चाहता तो इतने समय में असंख्य धन प्राप्त कर लेता, परन्तु जब तुमने इतना लोभ किया तब अपने कर्म का फल भोग, यह कहकर महात्मा जी अपनी "पारस मणि" बटिया लेकर चल दिये और वह कृपण अपना हाथ मलकर रह गया। इसी तरह अज्ञानी प्राणी को यह मनुष्य रूपी पारस मणि बड़ी मुश्किल से हाथ लगा हुआ है। तो भी प्रमादके वशीभूत होकर इस इंद्रिय रूपी क्षणिक लालसा के पीछे अपने अमूल्य महामणि मनुष्य रत्न को यों ही खो बैठ जाता है। क्योंकि इस शरीर रूपी रत्न की मर्यादा खतम होने के बाद एक क्षण भी रखना मुश्किल होता है इस लिये सद्गुरु बार बार समझाते हैं कि हे संसारी भव्य प्राणियों तुम्हारा म्याद खतम होने को कालरूपी डंडा तुम्हारे शिरपर आकर खड़ा हो जाता है। इसलिये कामधेनु कल्प वृक्षके समान इच्छित सुख को प्राप्त कर देने वाला धर्म रूपी कामधेनु को इस मनुष्य पर्याय से क्यों प्राप्त नहीं कर लेते? यही हम को खेद होता है। जैसे जंगली मुरगी मकर संक्राती के दिन को मौका पाकर अपने शरीर के रंगको अपने इच्छानुसार बदल लेती हैं। क्योंकि अगर वह मौका निकल जाय फिर रंग किसी अवसर पर बन नहीं सकता है। उसी तरह मनुष्य प्राणी को अगर इस शरीर से मोक्ष प्राप्ति कर लेना है तो ब्रह्म मुहूर्त के समय को प्रातःकाल को ठीक पाकर एक घंटा अपनी आत्म ध्यान का अभ्यास करके तथा जप ध्यान का साधन के साथ इस आत्मा को अखंड अविनाशी बना ले सकते हैं। अगर यह मौका निकल जाय तो फिर आपको यह समय बार बार प्राप्त होना महा मुश्किल है। जैसे अवसर इस शरीर के द्वारा जहां बने तहां तक धर्म की साधना में जरूर अपने शरीर से साधना कर लेना चाहिये, धर्मात्मा लोग सरवदा इस प्रकार विचार करते हैं कि:—

श्लोक—अर्थापाद रजोपमा गिरि नदी वेगोपमं यौवनम्।
आयुष्यँ जल लोल बिन्दु चपलं फेनोपमं जीवितमे॥
धर्मं यो न करोति निन्दित मतिः स्वगार्गलोद्घाटनेम्।
पश्चात्तापयुतो जरा परिगतः शोकाग्निना दह्यते॥

अर्थ—धन पैरों की धूलि के समान, यौवन पहाड़ी नदी के वेग के समान, आयु जल के बुल्ले के विन्दु के समान चंचल और जीवन जल के फेन के समान है जो कुबुद्धि स्वर्ग के कपाटों के मूसल को उखाड़ने वाले धर्म को नहीं करता है वह वृद्धावस्था प्राप्त करने पर पश्चाप करते करते शोक की अग्नि में जल जाता है। क्योंकि कहा भी है कि:—

श्लोक-उपार्जिनां वित्ताना त्यागेव हिरक्षणं।
तड़ागोदर संस्थानां परिवाह इवांभासाम्॥

सरोवर के पेट में संचित जलों के परिवाह नल के समान संयम किये हुये धन का देना ही रक्षण है।

दधोऽधः क्षितौर्वित्त निचखान मितपचः।
तदधोनिलयंगन्तु चक्रे पन्थानमग्रतः॥

जो धन लोभी ने नीचे गाड़ा है मानो उसने नीचे जाने के लिये आगे से मार्ग किया है अपने सुख को भोगता हुआ जो धन संचय करना चाहता है वह पराये बोझ को उठाने वाले के क्लेश के समान है परन्तु उसको इसमें कुछ शांति नहीं मिल सकती।

दानोप भोग हीनेन धनेन धनिनोयदि।
भवामः किंनते नैवं धनेन धनिनोवयम्॥

जो धन और भोग रहित धन से जो धनी हो तो उस पृथ्वी में गड़े हुये धन से हम भी धनी हैं।

असंभोगे न सामान्य कृपणस्य धनंपरैः।
अस्येद मिति सम्बन्धा हानौ दुःखेन गम्यते॥

सम्भोग रहित होने से लोभी का धन दूसरों के बराबर है फिर इस लोभी का यह धन है। यह बात उस धन के नष्ट होने पर दुःख से जानी जाती है।

दानं प्रियवाक् सहित ज्ञानम गर्व क्षमान्वितंसौर्यम्
वित्तंत्यागनियुक्त दुर्लभमेतत् चतुष्टयम् लोके॥

प्रिय बचन सहित दान, गर्व रहित ज्ञान, क्षमायुक्त शूरता, दान में लगा हुआ धन यह चारों संसार में दुर्लभ है। इस पर एक दृष्टांत है जिससे उपरोक्त वाक्योंका स्पष्टी करण होगा,

कल्याण कटक में रहने वाला भैरव नाम का एक व्याध था एक समय मृग को ढूँढ़ता हुआ विन्ध्याचल के वन में गया मरे हुये मृग को ले जाते हुये भयङ्कर आकार वाला एक सूकर देखा तब व्याध ने सूकर को बाण से मारा, सूकर घोन घोर गर्जना करके व्याध के अन्डकोष में मारा तब वह व्याध छिन्न वृक्ष की भांति पृथ्वी पर गिर पड़ा, इसके उपरांत इन दोनों के पैरों के ताड़न से एक सर्प भी मर गया। इसके पीछे भोजन की इच्छा से घूमता हुआ एक स्याल आया, मरे हुये सूकर व्याध और सर्प को देखा, मन में सोजने लगा आज बड़ा भोजन पाया।

श्लोक-अचिंतानि दुःखानियथैवायन्ति देहिनाम्।
स्वकन्यापि तथामन्ये दैवमात्रानिरच्यते॥

जैसे विना सोचे जीवों को दुःख प्राप्त होता है वैसे ही मैं सुख को मानता हूं, इसे खाते २ तीन मास सुख से व्यतीत करूँगा।

मांस में कंनरोयाति द्वैमांस मृग सूकरौ।
अहिरेंक दिनंयाति अद्यमक्षोधनुर्गुणः॥

एक मास मनुष्य से बीतेगा दो महीने मृग से बीतेगा, और १ दिन के लिये सर्प है आज का भोजन धनुप का प्रत्यंचा है भूखातुर स्वाद-रहित धनुष के प्रत्यंचा को खाने लगा प्रत्यँचा

टूटने से धनुष का एक भाग उसके हृदय में घुस गया और उस गीदड़ (स्याल) की मृत्यु हो गई, कहने का तात्पर्य यह है कि अति संचय न करे, क्योंकिः—

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनोधनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडंति दारै रपि धनैरपि ॥

जो देता है और जो खाता है वही धनी का धन है स्त्रियों के व्यसन में और दुर्व्यसनों में जो धन खर्च करते हैं वह उनका धन नहीं है। इसलिये संसारी जीवों को धन संचय करके अपने धर्म को भूलना नहीं चाहिये धर्मात्माओं को सदैव धर्म का ही संचय करना चाहिये—

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञउत्सृजेत्।
तन्निमित्तो वरंत्यागो विनाशे नियतिसति ॥

ज्ञानी पुरुष को सोचना चाहिये कि धन और जीवन का नाश होना निश्चय है अतएव अपने धन को चारों प्रकार के दान में लगाकर अपना धन और जीवन सार्थक बना लेवें, अपने कल्याणेच्छु मनुष्यों को उचित है कि अपने धन का सदुपयोग करके अपना दोनों लोक सुधार लेवें, दान करना गृहस्थ का एक मुख्य कर्तव्य है बिना दान के घर स्मशान के समान है घर में रात्रि दिन अग्नि इत्यादि के बलने से जीवों का घात होता रहता है। स्मशान में भी जीवों को जलाया जाता है, किंतु दान करने से ही यह जीव वधका पाप जो गृहस्थों को अनिवार्य है। दूर हो जाता है। और कोई उपाय नहीं है अति लोभी मनुष्य के संसार में अनेक बैरी बिना प्रयोजन के हो जाते हैं, लोभी मनुष्य न तो स्वयम् धन का भोग कर सकता है न दूसरों के उपकार में उसे खर्च करके सार्थक बनाता है। प्रत्युत गाड़कर पृथ्वी के भीतर रख देता है, अस्वस्थ होने पर धन खर्च न करना पड़े इस लिये अपने स्वास्थ्य सुधार के लिये वैद्य, डाक्टर को भी नहीं बुलाता है और अन्त में बिना औषधोपचार के मरण को प्राप्त हो जाता है। तब उस लोभी के धन को राजा ले लेता है या किसी दूसरे के हाथ लग जाता है तात्पर्य यह है कि लोभ के कारण धन को सुरक्षित रखना नितान्त मूर्खता है अतः धर्म साधन के जो स्थानक चारों संघ को दान उपकरण देना, औषधालय खुलवा देना, बाचनालय स्वपर कल्याण हेतु चलाना पाठशाला विद्यार्थियों के पढ़ने के हेतु खुलवा देना, भूखों के लिये अन्न शाला (सदावर्त) खुलवाना शीत ऋतु में निर्धन मनुष्यों की शीत से रक्षा करने हेतु वस्त्र वितीर्ण करना, ग्रीष्म ऋतु में प्याऊ खोलना इत्यादि जो स्वपर कल्याणकारी कार्य हैं उसमें अपने गाढ़ी कमाई से उत्पन्न धन को लगा देना अपना मनुष्य जन्म सार्थक करके आगामी के लिये सुख सामग्री साथ ले जाता है—

धर्मपत्नी स्वर्गीय ला० बालचन्द जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबङ्की में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख १५—९—५२ दिन मंगलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि धर्म में रुचि होना ही सम्यग्दर्शन है।
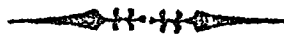
जब तक जीव को शुद्ध सम्यग्दर्शन नहीं प्राप्त होता तब तक अनन्तानन्त योनियों में भटकता हुआ जीव बहुत दुःख उठाता है। मिथ्यात्व भावना दूर हो जाने के पश्चात् धर्म में रुचि होना सम्यग्दर्शन कहलाता है।

श्लोक—विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्
पात्रत्वाद्धनमप्नोति धनाद्धर्मं ततःसुखम् ॥

अर्थ—विद्या विनय को देती है, विनय से (मनुष्य) पात्रता को पाता है, योग्यता से धन प्राप्त होता है, धन से धर्म तथा धर्म से सुख मिलता है। अतः जो लोग सुख चाहते हैं उन्हें विनम्र होना परमावश्यक है। क्योंकि कहा भी है किः—

एक पं० जो राजा को पढ़ाने के लिये नित्य-प्रति राजदरबार में जाया करते थे। राजा का सिंहासन ऊँचा और पं० जी का नीचा रहता था। इस अविनय से अध्ययन करने पर राजा को बहुत दिन बीत गये; पर थोड़ी भी विद्या नहीं मिल सकी। निदान में पं० जी ने कहा कि राजन्! अब आप नीचे बैठ कर शिष्य बनकर अध्ययन करें और मैं आप से उच्चासन पर बैठ कर आप को पढ़ाऊँगा। राजा ने ऐसा ही किया और थोड़े ही दिनों में पंडित बन गये। अतः विद्यार्थी को विनीत होना परमावश्यक है। आज कल हम लोग इस लिये दुःखी होते जा रहे हैं कि हमारी धर्म भावना विलीन होती जा रही है। परन्तु जिनके हृदय में सच्ची श्रद्धा है तथा जिन्हें धर्म में दृढ़ विश्वास है वे अपने प्राण तक देकर धर्म की रक्षा करते हैं और ऐसे ही व्यक्ति इहलोक व परलोक में सुखी होकर अन्त में परमपद प्राप्त कर लेते हैं। ग्रन्थों को अच्छे २ वेष्टनों में वेष्टित करना व झाड़ना पोंछना शास्त्र का विनय कहलाता है। सम्यग्दर्शन को धारण करना, पढ़ना तथा पढ़ाना आदि विनय कहलाता है। ग्रन्थों को वितरण करना तथा शास्त्र का प्रचार करना विनय कहलाता है। अब यहाँ एक दृष्टान्त देते हैं किः—

एक भंगी प्रतिदिन लकड़ी लाकर भोजन

बनाता था। एक दिन लकड़ी समाप्त हो गई। दोनों प्राणियों ने सोचा कि आज चलो जंगल से काफी लकड़ी तोड़ लावें। यह सोचकर दोनों जंगल में चले गये। तत्पश्चात् पति वृक्ष पर चढ़ गया; पर उसकी कुल्हाड़ी नीचे रह गई। पत्नी से जब उसने कुल्हाड़ी माँगा तब उसने कहा कि आप को तो मंत्र आता है। अतः उसके द्वारा कुल्हाड़ी ले लीजिये। भंगी ने ऐसा ही किया। इसी अवसर पर एक राज मंत्री वृक्ष की ओट से यह कौतुक देख रहा था। उसने आकर भंगी से कहा कि यह मंत्र हमें देदो; पर अविनय के कारण उसने नहीं दिया। मंत्री ने बहुत हठ किया; पर उसकी एक भी न चली। लकड़ी काटने के बाद भंगी ने अपनी स्त्री को एक गट्ठर बाँध कर दे दिया और कहा कि तुम चलो हम अभी पीछे से आ रहे हैं। जाते समय उसकी पत्नी ने कहा कि यह सत्पात्र नहीं है। अतः इसे विद्या न दीजियेगा। पत्नी के चले जाने पर राज मंत्री भंगी के पैरों पर गिर पड़ा और विनय पूर्वक कहने लगा कि आप हमें अपना शिष्य बनाकर विद्या दान देने की कृपा करें। उसकी विनीत भावना को देखकर भंगी ने उसे विद्या सिखा दिया। घर पर जाकर उसने अपनी स्त्री से बता दिया कि विनीत होने पर मैंने मंत्री को विद्या सिखा दिया। एक दिन राज भवन में जब उसकी स्त्री टट्टी साफ करने के लिये गई तब उसने सोचा कि आज मंत्री के विनय की परीक्षा लेनी चाहिये। यह सोच कर उसने टट्टी की डलिया खूब भर लिया और उठाने पर जब न उठ सकी तब सभा में बैठे हुये उसी मंत्री (शिष्य) को पुकार कर उसने कहा कि "मंत्री जी आकर ज़रा थोड़ा सा हाथ लगा दीजिये ताकि हमारी डलिया उठ जाय। मंत्री ने इसे गुरुपत्नी समझ कर इसकी डलिया उठा दिया। यह दृश्य देखकर सभी लोग तर्क-वितर्क करते हुये कहने लगे कि इन दोनों का कोई बुरा सम्बन्ध है। अतः राजा ने व्यभिचारी जानकर मंत्री को निकाल दिया। मंत्री सुयोग्य था; पर उसके चले जाने की बात जानकर शत्रुओं ने राजा पर तत्क्षण आक्रमण कर दिया और उनका सारा राज्य छीन लिया। अन्तमें राजा ने अपने पुराने मंत्री को पुनः सादर पूर्वक बुलाया। राज दरबार में आने पर मंत्री ने अपने मंत्र का प्रयोग किया और सारा राज्य लौटा कर शत्रु के राज्य को भी ले लिया। राजा साहब बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने पूछा कि यह कैसे हो गया। मंत्री ने उत्तर दिया कि आपने हमें कैसे निकाल दिया? जिस भंगिन के साथ व्यभिचारी बना कर आप ने हमें राज्य से निकाला था वह हमारी गुरु पत्नी (अर्थात् धर्म माता) है। उसी के पति ने हमें यह मंत्र सिखलाया था जिसके प्रभाव से आपका राज्य वापिस आ गया। यह विनय का ही प्रभाव है। इस लिये विनय करना आत्म कल्याण तथा स्वर्ग मोक्ष के लिये मुख्य कारण है। विनयी पुरुष का संसार में कोई शत्रु नहीं है संसार में विनयवान मनुष्य के ऊपर कोई आपत्ति आजाय तो तुरंत सभी लोग उनकी सहायता करने के लिये तत्पर होते हैं। यहपांच प्रकारका है। ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, तप विनय तथा उपचार विनय। ज्ञान विनय—ज्ञान और ज्ञानी जनों का विनय करना उनका सत्कार करना उच्चासन देना उनके

प्रति नम्रता होकर खड़ा होना उनकी आज्ञा मानना योग्य सेवा पूछना और उनका कृतज्ञ मानना उनकी आज्ञा के अनुसार चलना शाशन अर्थात् धर्म पुस्तक को विनय से पढ़ना विनय से रखना, रोज उसको नमस्कार करना पूजा करना, उसको वेष्टन लगाना जीर्ण सीर्णको ठीक करवा कर उसको धूपमें सुखवाना अगर ज्यादा जीर्ण हुआ हो तो उस को छपवा कर ज्ञान का प्रचार करना यह सभी ज्ञान विनय है।

दर्शन विनय—सम्यग्दर्शन निर्दोष धारण करना तथा सम्यग्दृष्टी जीवों का यथा संभव आदर सत्कार करना।

चरित्र विनय—सम्यक् चारित्र यथा शक्ति रुचि पूर्वक कल्याण कारी जानकर धारण करना तथा सम्यक्चारित्र के धारी पुरुषों में पूज्यभाव रखना, उनकी विनय सुश्रूषा सत्कारादि करना।

उपचार विनय—अपने से गुणाधिक्य पुरुषों में भक्ति भाव रखना, उनके आगे आगे नहीं चलना, नहीं बोलना, उनको आदर सहित उच्चासन देना, नम्रता पूर्वक मिष्ठ बचन बोलना, उनकी आज्ञा मानना इत्यादि। प्राणियों में यह गुण होना परमावश्यक है। विनयी पुरुष सब का प्रीति भाजन होता है, विनयी को शिक्षक गण प्रेम से विद्या पढ़ाते हैं, विनय से कष्ट आने की कोई आशंका नहीं रहती, लोग सदैव उनकी सेवा में तत्पर रहते हैं, परन्तु अभिमानी के तो निष्कारण प्रायः सभी लोग शत्रु बन जाते हैं। इसलिये विनय गुण सदैव धारण करना चाहिये। क्योंकि कहा भी है किः—

देव तथा गुरुराय तथा तप संयम शील व्रतादिक धारी।
पाप के हारक काम के सारक, शल्य निवारक कर्म निवारी॥
धर्म के धीर हरें भव पीर कषाय को चीर संसार के तारी।
ज्ञान कहे गुण सोहि लहे जु विनय गह मन बच काय सम्हारी॥

आज कल हम लोगों में विनय का अभाव सा हो गया है अपने घर में ही देखा जाय तो विनय करने योग्य माता पिता गुरुजन इत्यादि के प्रति विनय करने का रिवाज ही उठ गया है कोई भी पढ़े लिखे या अनपढ़ मनुष्य माता पिता तथा गुरुजनों की विनय नहीं करता है सबसे प्रथम कर्त्तव्य हमारा यह है कि प्रातःकाल उठते ही माता पिताके चरणों की वन्दना द्वारा विनय करें और उसके पश्चात् उनको सुख साता पहुँ-चाने वाले कार्य करने के लिये उनसे बड़े विनय से आज्ञा मांगें जो आज्ञा वह दें उसे बड़ी विनय से ग्रहण कर तदनुसार कार्य सुसम्पन्न करें कोई आगुन्तुक अपने घर पर आ जाय तो उसके योग्य विनय से उसकी कुशल पूछ कर उसका जो कार्य हो उसे पूर्ण करने का प्रयत्न करें। यह सब बातें विनयी मनुष्य से ही हो सकती हैं जो अविनयी अहँकारी हैं उनसे ऐसे शुभ अनुष्ठान होना बहुत दूर की बात है वह तो अपने स्वार्थ में पड़ हुआ रहता है उसे किसी की हानि लाभ से क्या प्रयोजन कोई मरे उसे अपने प्रयोजन को सिद्ध करने का सदैव ध्यान रहता है और ऐसे ही गन्दे विचारों से वह अपना जीवन पूर्ण करता है और संसार में भार स्वरूप रहकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। संसार में कोई उसका नाम भी नहीं लेता है। विनयी सदाचारी परोपकारी जीवों का जीवन

ही परोपकार मय होता है उससे सम्पूर्ण जीवों को सन्मार्ग का रास्ता मिलता है। जिससे उसके दोनों लोक सुधर जाते हैं संसारमें उसका परोपकारी जीवन इतना प्राभाविक हो जाता है कि उसको देखकर ही नत मस्तक लोग होने लगते हैं और उसके बचनों को महर्षियों के समान मानकर उनके अनुसार चलने का प्रयत्न करते हैं, उनके सदाचार निश्छल वर्ताव का इतना प्रभाव मनुष्यों पर पड़ता है कि संसारी जीव जिनका सम्पर्क उनसे हो जाता है वह भी स्वपर कल्याण करने की भावना अपने में पैदा कर लेते हैं और स्वयं सुखी होते हैं तथा दूसरों को सुखकारी हो जाते हैं इसलिये हमको विनय गुण कभी नहीं छोड़ना चाहिये देखो संसार में बड़े २ वृक्ष बनों में बागीचों में जो गर्व से उन्नत खड़े रहते हैं पवन के झकोरे से वे टूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं और वे पददलित किये जाते हैं जो छोटे छोटे वृक्ष, लता, घास मुलायम जाति की होती है वायु के झकोरे उस पर कुछ भी असर नहीं कर सकते हैं न तो वह कभी टूटती है और न उखड़ती है उसमें विनय गुण मृदुलता होने के कारण सुरक्षित रहती है इस लिये विनय गुण सर्वथा उपादेय है इसकी रक्षा सदैव करना चाहिये दृढ़ प्रतिज्ञ मनुष्य ही विनय गुण धारण कर सकते हैं जो चंचल स्वभाव वाले कैसे बैंगन होते हैं उनसे कुछ नहीं हो सकता है उन्हें विनयगुण कैसे प्राप्त हो सकता है। एक बार राजा विक्रमादित्य शिकार खेलने के लिये बन में गये उन्होंने रासते में एक ब्राह्मण को घोर तपस्या करते देखा, कुछ दिनों के बाद राजा फिर उसी स्थान पर शिकार खेलने गये तो देखा कि वही ब्राह्मण उसी स्थान पर घोर तपस्या कर रहा है, राजा ने बड़ी विनय से पूछा कि ब्राह्मण देवता आप क्या कर रहे हैं। ब्राह्मण देवता ने उत्तर दिया कि मैं भगवान सूर्य को प्रसन्न करने के लिये यह तपस्या कर रहा हूं परन्तु भगवान सूर्य देव मुझपर प्रसन्न नहीं होते हैं इस पर राजा विक्रमादित्य ने कहा कि मुझे सब हवन सामग्री दो मैं भगवान की पूजा करता हूँ ब्राह्मण देवता ने सब हवन सामग्री देदी राजा ने बड़े विनय से यह प्रतिज्ञा की कि यदि प्रथम आहुति देने पर भगवान सूर्य ने दर्शन न दिये तो मैं अपनी गर्दन काटकर बलि दे दूंगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा बद्ध होकर बड़ी विनय के साथ मन्त्र पूर्वक आहुति क्षेपण की जैसे ही प्रथम आहुति क्षेपण की सूर्य देवता राजा के सन्मुख आ गये और बोले राजन् क्या चाहते हो जो इच्छा हो वर मांग लो राजा ने उत्तर दिया कि मैं तो आपको केवल दर्शनों के लिये स्मरण किया था। सूर्य देव के चले जाने के पश्चात् ब्राह्मण देवता ने पूछा कि भाई भगवान को तुमने कैसे बुला लिया राजा ने उत्तर दिया कि तुम दृढ़ प्रतिज्ञ और विनयी नहीं थे यदि तुम सच्चे हृदय से विनय सहित दृढ़ प्रतिज्ञ होते तो तुम सूर्य देव को अवश्य बुला लेते शुद्ध सच्चे हृदय और विनय से दृढ़ प्रतिज्ञा करने से भगवान को दर्शन देने ही पड़ते हैं वैसे अविनय से हजारों वर्ष पर्यंत यज्ञ हवन करने से कुछ नहीं होना है अतएव संसार में प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिये विनय गुण होना अत्यन्त आवश्यककीय है इसके बिना एक पल भर भी कोई कार्य नहीं चल सकता है इसलिये विनय गुण को प्राण जाते भी नहीं छोड़ना चाहिये यह उभयलोक में कल्याणकारी है।

धर्मप० पन्नालालजी धर्मप० सन्तलालजी जैन दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाय

क्रुपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख १६-९-५२ दिन बुधवार को
श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में
उत्तम क्षमा का विवेचन करते हुये कहा कि—
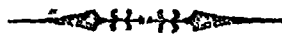
कोप शत्रु का दमन ही क्षमा धर्म तू मान ।
जीव दमन संयम का सर्व गुणों की खान ॥
"उत्तम खम तिहु लोय पसारी ।
उत्तम खम जम्मो दहितारी ॥
उत्तम खम रयणात्तय धारी ।
उत्तम खम दुग्गइ दुह हारी ॥

अर्थात् तीनों लोकों में उत्तम क्षमा ही सर्व धर्मों का सार है । उत्तम क्षमा जन्म मरण रूपी समुद्र से पार कर देने वाली है । उत्तम क्षमा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, और सम्यग्चारित्र इन तीनों रत्नों के धारण करने वाली हैं अर्थात् जहाँ उत्तम क्षमा होती है वहाँ रत्नत्रय होते ही हैं । उत्तम क्षमा नरकादि दुर्गति के समस्त दुःखों को हरण करने वाली है ।

उत्तम खम गुण गण सह यारी ।
उत्तम खम मुणि विन्द पयारी ॥
उत्तम खम बहुयण चिन्ता मणि ।
उत्तम खम संपजइ थिर मणि ॥

अर्थात्—उत्तम क्षमा गुण समूहों के साथ रहने वाली है अर्थात् उत्तम क्षमा के होने से अनेक गुण प्रगट हो जाते हैं । यह उत्तम क्षमा मुनियों को बड़ी प्यारी है । श्रेष्ठ मुनि जन इस का पालन करते हैं । यह उत्तम क्षमा विद्वानों के लिये चिन्तामणि है अर्थात् चिन्तामणि रत्न के समान इच्छित पदार्थों को देने वाली है । इसी तरह विद्वज्जनों को उत्तम क्षमा से इच्छित ज्ञानादिक प्राप्त होते हैं । ऐसी यह उत्तम क्षमा चित्त की एकाग्रता होने से उत्पन्न हो जाती है ।

उत्तम खम महिणिज्ज सयल जणि ।
उत्तम खम मिच्छत तमो मणि ॥
जहिं असमत्थह दोष खमिज्जइ ।
जहिं असमत्थह णउरुसिज्जइ ॥
जहिं आकोसण वयण सहिज्जइ ।
जहिं परदोसण जणि भासिज्जइ ॥
जहिं चेयण गुण चित्त धरिज्जइ ।
तहिं उत्तम खम जिण भासिज्जइ ॥

अर्थात्—उत्तम क्षमा लोक में पूजित होकर मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को दूर करने के लिये

मणि के समान है। जैसे प्रकाश मान मणि से अन्धकार दूर हो जाता है। उसी तरह से मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्व प्रगट हो जाता है जहां असमर्थ जीवों के दोष क्षमा किये जाते हैं, जहाँ असमर्थों के ऊपर क्रोध नहीं किया जाता जहां अक्रोश (गाली गलौज) वचनों का सहन किया जाता है, जहां दूसरे के दोष प्रगट नहीं किये जाते, जहां चित्तमें आत्मा का चैतन्य गुण धारण किया जाता है वहां ही उत्तम क्षमा होती है जैसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है।

जिसका निरूपण ऊपर कर चुके हैं ऐसी उत्तम क्षमा के धारण करने वाले पुरुष को मनुष्य देव विद्याधर सभी नमस्कार करते हैं। और वह अचल केवल ज्ञान को पाकर, अनेक ऋषियों में श्रेष्ठ, संसार के दुःखों से रहित होता हुआ निरञ्जन सिद्ध होता है और वहां के अनन्त सुख अनन्त काल तक भोगता रहता है।

इसलिये सबको उत्तम क्षमा धारण करना चाहिये। यहां विषेश इतना है क्रोध बैरी का जीतना है सो ही उत्तम क्षमा है। क्रोध बैरी इस जीव के निवास करने के स्थान जो संयम भाव, संतोष भाव, निराकुलता भाव को दग्ध करने को अग्नि के समान है अर्थात् सम्यग्दर्शनादि रूप रत्नों के भंडार को दग्ध करने वाला, यश को नष्ट करने वाला, कालिमा को बढ़ाने वाला, धर्माधर्म का विचार मिटाने वाला है। क्रोधी का मन, वच व काय अपने वश में नहीं रहता। वह बहुत काल की प्रीति को क्षण मात्र में बिगाड़ कर महान् बैर उत्पन्न कर लेता है। असत्य वचन, लोक निन्द्य भील चांडालादिक के बोलने योग्य वचन बोलता है। क्रोधी समस्त धर्म को लोप करके माता, पिता, स्त्री, पुत्र, बालक, स्वामी, सेवक तथा मित्रों को भी मार डालता है। तीव्र क्रोधी स्वतः ही विष खाकर शस्त्र से घातकर, मकान तथा पर्वतादिक से नीचे गिरकर प्राण दे देता है। यहीं तक नहीं बल्कि क्रोधी पहले तो अपना नाश करता है। तत्पश्चात् क्रोधावेश में आकर ऐसा देखा जाता है कि महा तपस्वो दिगम्बर मुनि तकभी क्रोधी होने के नरक पथि के पाथिक बने हुये हैं। क्रोध दोनों को नष्ट करता है। क्रोध महा पाप का बन्ध करके नरक को पहुँचा देता है। जो लोग पुण्यशाली हैं, जिनका दोनों लोक सुधरना होता है, उनको क्षमा नामक गुण प्राप्त होता है। क्षमा-पृथ्वी को सहने के स्वभाव को क्षमा कहते हैं। स्वपर को हिताहित जानकर आये हुये उपद्रवों को जो सहन करता है वही क्षमावान है। उत्तम क्षमा त्रैलोक में सार है, संसार सागर से तरने वाली है, रत्नत्रय को धारण करने वाली है, दुर्गति के दुःखों को हरने वाली है। क्षमावान मनुष्य नरक व तिर्यंछ में गमन नहीं करता उत्तम क्षमा मुनीश्वरों को अति प्यारी है। उत्तम क्षमा के लाभों को ज्ञानीजन मणि रत्न माने हैं। क्षमा बिना मन की उज्वलता व स्थिरता कदापि नहीं होती। बांछित सिद्ध करने वाली एक क्षमा ही है। यदि कोई मनुष्य बिना गलती के ही "चांडाल, पापी, अन्यायी, दुराचारी, दुष्ट, नीच दोगला चांडाल व कृतघ्नी आदि अशुद्ध एवं कुबाच्य शब्द कहे तो ऐसा समझकर उसे भूल जाना चाहिये, कि शायद पूर्व भव में हम इसके साथ ऐसा व्यवहार किये हों, तो हमें नीच कहकर फटकारना न्याय

है जिससे कि हमारा प्रायश्चित हो जाय। और दुर्वचन कहने वाले को चाहिये कि विनम्रता पूर्वक प्रति वादी के पास जाकर अपने अपराध को क्षमा कराले।

यदि कोई दुर्जन दुर्वचन कहे या अकुलीन कहे तो उसमें तुम्हारा नाम नहीं है; क्योंकि अपना स्वरूप जातीय तो है नहीं। वह तो परम पवित्र अखंड अविनाशी है। यदि कोई अपने को चोर, अन्याय, कपटी, अधर्मी तथा व्यभिचारी आदि कहे तो मन में ऐसा विचार करना चाहिये कि हे आत्मन्! तुम अनेक जन्म में चोर जार, जुवार तथा कूकर शूकरादि होकर तिर्यंच, पापी व अधर्मी आदि नीच पर्याय को धारण करके आये हो, तो कूकर शूकर व चांडालादि कहने से दुःखी क्यों होते हो? क्योंकि जो जीव इस प्रकार के कुवाच्य कहने से संक्लेशित होता है उसे पुनः चतुर्गतियों में पड़कर नाना प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं। अतः जब हम सब उपरोक्त अशुद्धाशुद्ध संपूर्ण योनियों में जन्म ले चुके हैं तब हम शोक क्यों करें? निन्दक लोगों को हमें यह समझना चाहिये कि ये हमारे आभ्यन्तरिक मल को विना रुपया पैसा व साबुन के ही स्वच्छ कर रहे हैं। ऐसे उपकारियों के साथ यदि हम ईर्ष्या-द्वेष करें तो हमारे ऐसा अधम अन्य कौन होगा? इसने तो केवल दुर्वचन ही कहकर हमारा मल साफ किया, मारा तो नहीं। इस लिये इससे अधिक हमारा लाभ और क्या होगा? कोई नहीं। यदि कोई दुष्ट आप को मारे तो ऐसा विचार करना चाहिये कि इसने केवल बाह्य शरीर को ही मारा हमारे आत्मा (प्राण) को तो इसने नहीं ले लिया और यदि प्राण भी ले ले तो यह सोचना चाहिये कि अन्त में एक बार मरना ही पड़ेगा और इस मरण से हमें कर्म ऋण से मुक्त कर दिया। हमारा धर्म तो नहीं नष्ट हुआ इससे हमारा लाभ ही हुआ। प्राण जाने पर भी यह सोचना चाहिये कि इससे हमारा केवल नश्वर शरीर ही नष्ट हुआ। हमारा आत्मा तो अविनाशी है। उसका नाश तो कभी हो ही नहीं सकता क्योंकि श्रीमद्भगवद् गीता में अर्जुन से कृष्ण भगवान ने कहा है कि:—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

यदि ऐसा विचार नहीं किया, तो हमने अब तक जो तत्त्वज्ञान प्राप्त किया है उसे व्यर्थ ही समझना चाहिये। न्याय मार्ग से उन्होंने मेरे कर्म को निर्जरा किया, तो इसमें हमारा लाभ ही हुआ इसलिये उस समय ऐसा सोचना चाहिये कि हे आत्मन्! जो तुमने पूर्व जन्म में असाता कर्म किया था वह बिना परिश्रम व औषधि के स्वतः नष्ट होगया, पर यदि इस भव में तू पुनः किसी से राग द्वेष करेगा तो फिर से नया कर्म बन्ध करलेगा! इसप्रकार विचार कर समता पूर्वक क्रोध नहीं करना चाहिये। यदि इस समय हम क्षमा को छोड़ देंगे तो हमारा समता भाव नष्ट होकर धर्म का नाश हो जायगा अतः हमें सोचना चाहिए कि कैसा भी कष्ट क्यों न हो पर मैं अपने उत्तम क्षमाको कदापि नहीं छोड़ूँगा क्योंकि कहा भी है कि:-

क्रोध शत्रु का दमन हो क्षमा धर्म तू मान।
जीव दमन संयम का सर्व गुणों की खानि॥

गुण सम्पत्ति युत पति मिले, तदनुकूल हो सभ्य,
मन इच्छित अनुरागमय क्षमा धर्म है लभ्य।
कला विशारद कुल शीलवती मतिमान्,
गृहलक्ष्मी सी कामिनी मिले बहुत धीमान् ॥
श्रेष्ठ भवन धन सम्पदा शय्या भोग महान्,
क्षमा धर्म ते जग मिले इच्छित सर्व समान।
विकृत नर सुन्दर बने क्षमा धर्म आधार,
नन्दिसेन मुनि इन्द्र से हुये प्रशंसितसार ॥
जनक जननि सुत बन्धु जन नहीं करे उपकार,
क्षमा धर्म के आचरे हो जग भूतोद्धार।
क्षमा रहित गुण गण सभी नहिं शोभा को पाय,
उडु गण युत पिन शशि बिना रजनी ज्यों देखाय
लोचन बिन आनन जहां पंकज बिन तालाब,
क्षमा बिना नर देह पर नहीं रहे कछु आब ॥

इस प्रकार विचार कर जो भव्य जीव उत्तम क्षमा को धारण करता है, वही जीव इस व पर लोक में सुखी होता है। यदि क्षमा भाव नहीं रहा तो धर्मोपासना नहीं किया, तप नहीं किया दान नहीं किया और यदि किया भी तो क्षमा के बिना सभी व्यर्थ है। जो लोग आत्म कल्याण करना चाहते हैं उन्हें सभी जीवों पर क्षमा भाव रखना परमावश्यक है। इस प्रकार सज्जनों को सोच विचार कर कर्म से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिये। अपने अन्तःकरण में इस प्रकार की सर्वदा सद्भावना रखना उत्तम क्षमा है।

क्षमा ही आत्मा का स्वभाव है और क्षमा मनुष्य का इह पर दोनों गति में सुख देने वाला है। इस आत्म हित की इच्छा रखने वाले मानव मात्र को क्षमा रखना ही एक परम कर्तव्य है।

धर्मपत्नी नानिकचन्द जी जैन दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया।

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख १७-६-५३ दिन गुरुवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में उत्तम मार्दव का विवेचन करते हुये कहा कि—
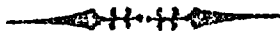
मृदुत्वं सर्व भूतेषु कार्यं जीवेन सर्वदा ।
काठिन्यं त्यज्यते नित्यं धर्म बुद्धिं विजानता ॥

अर्थ—जो जीव धर्म बुद्धि को जानते हैं। ऐसे जीवों को उचित है कि वे समस्त जीवों में सर्वदा मृदुता रक्खें अर्थात् अपने परिणाम सर्वदा कोमल रक्खें और कठोर परिणामों का सदा त्याग करें। जिनके भावों में कोमलता है, उनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। मृदु भाव स्वर्ग मोक्ष को देने वाला और संसार का नाश करने वाला है मान कषाय से अनेक प्रकार की हानि हो जाती है मानी पुरुष सदैव चिंतित रहता है कि किसी तरह से मेरा मान नष्ट न होने पावे मान कषाय की चिंता रहने के कारण जीवों का कल्याण नहीं हो सकता है। उसके सामने किसी दूसरे की बड़ाई की जावे। तो उसे सहन नहीं कर सकता है, उसे सदैव अपमान हो जाने का भय लगा रहता है और वह किसी से अच्छी तरह से नहीं बोलता है मान कषाय स्वर्ग और मोक्ष से दूर रखने वाली समझना चाहिये कि जिनके पास मान कषाय है उनके पास कोई गुण नहीं है। मार्दव धर्म जिनके पास है उन्हीं का व्रत नियम सभी सफल हैं। और जिनके पास मृदु भाव नहीं है उसका जप; तप सब वृथा है वह अपनी ही प्रसंशा करता है कहता है कि मैंने ऐसा किया वैसा किया इन्होंने कुछ नहीं किया मान कषाय से आत्मा में कठोरता आ जाती है, डन्डे के समान जो सख्त बना रहता है वह मान कषायी है और जिनके भीतर मान कषाय नहीं है वे बेंत के समान मृदु भाव वाले हैं वे जहां जाते हैं। मुलायम होने के कारण झुक जाते हैं अर्थात् विनम्र हो जाते हैं सूखे बांस के समान जो मानी हैं उनका टूट जाना सम्भव है पर झुकना नहीं मानी जीव ऊँट की योनि में जाता है वह सदैव ऊपर ही देखता है लेकिन चलते समय जब सामने पर्वत आ जाता है तो उसे मुख नीचा करना पड़ता है। कोई सम्पति के बारे में रूप, यौवन इत्यादि के बारे में मान करना

वृथा है जब तक युवा रहता है अपने समान अहंकार के वश किसी को नहीं समझता और न किसी को मस्तक नहीं नवाता है अपने को बड़ा समझता है कभी भगवान को भी झुककर नमस्कार नहीं करता है मन्दिर का दरवाजा छोटा होता है। तो उसको मन्दिर जाने में भी दिक्कत होती है। पहिले मन्दिर का दरवाजा इसीलिये छोटा बनाया जाता है कि भगवान के यहां जाने में तो मान कषाय न करके झुककर जाना चाहिये, जिस समय यौवन नष्ट हो जाता है कमर टेढ़ी हो जाती है तो नीचे की ओर झुक जाता है किसी ने पूछा ऐसा क्यों है तो उत्तर मिलता है कमर झुक गई है इसलिये नीची दृष्टि हो गई है आत्मा का स्वभाव मृदु भाव होता है और सदैव रहने वाला है, और सांसारिक धन यौवन इत्यादिक विनाशीक है इसमें अभिमान करना वृथा है मार्दव गुण दया धर्म का कारण है सूखे हुये वृक्ष कड़े रहते हैं। उसको तोड़ने के लिये कुल्हाड़ी से काटने की जरूरत पड़ती है आंधी में वृक्ष कड़े होने के कारण टूटकर गिर जाते हैं घास मुलायम होती है वह झुक जाती है इसलिये चाहे जितने जोर की आंधी चले वह नहीं टूटती है, यदि सख्त होती तो वह भी टूट जाती मार्दव गुण कषाय का नाश करने वाली है मृदुता के कारण सभी प्रसन्न होते हैं शत्रु से भी हाथ जोड़कर जैजिनेंद्र करने से शत्रु भी नम्र होकर शत्रुता छोड़ देता है राजा वालि ने देव, गुरु शास्त्र को छोड़कर किसी को नमस्कार नहीं करूँगा—रावण को यह बात मालूम हो गई रावण ने वालि के पास दूत भेजा कि तुम चलकर महाराजा रावण को नमस्कार करो, वालि ने उत्तर दिया कि मैं सिवाय देव, गुरु शास्त्र के सिवाय मैं और किसी को नमस्कार नहीं कर सकता हूँ रावण के युद्ध के भय से वालि मुनि होकर कैलाश पर्वत के ऊपर तपस्या करने चले गये एक समय रावण मंदोदरी सहित आकाश मार्ग से चला आ रहा था—पर्वत पर ऊपर आने से विमान स्वयमेव रुक गया, रावण ने समझा किसी शत्रु ने मेरा विमान रोक लिया है नीचे आकर देखा कि वालि मुनिराज तपस्या कर रहे हैं। देखकर कहा कि इसने मेरा मान नहीं माना अब मैं इसे निरमद करूँगा—रावण ने विचार कर कैलाश के नीचे घुस कर कैलाश पर्वत को उठाने लगा, वालि मुनिराज ने सोचा मेरा तो कुछ बिगड़ना नहीं है परन्तु कैलाश स्थित सम्पूर्ण जिनालय नष्ट हो जावेंगे वालि मुनिराज ने अपने पैर का अँगूठा जरा सा दबा दिया तब रावण दबने लगा और रोने लगा मन्दोदरी मुनि महाराज के पास आकर (पति भिक्षा मांगने लगी, मुनिमहाराज ने अँगूठा ढीला कर लिया तब रावण निकलकर आया और अपना मान कषाय छोड़कर मुनि महाराज समक्ष के आकर क्षमा माँगा और बड़ी भक्ति से कैलाश पर्वत स्थित जिनालयों में पूजा की और उससे तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया जिन्हें आत्म कल्याण करना है उन्हें मान कषाय कभी नहीं करना चाहिये आगन्तुक के प्रति सदैव वह नम्र रहता है, सभी जीवों के साथ विनया रहने वाले को कभी हानि नहीं उठानी पड़ती है। कोई चीज संसार में स्थित नहीं है तो फिर मान किस लिये किया जावे, जब देव गति में था।

मान करता था और जब नीच गति में जन्म लिया तो फिर मान कषाय कहाँ चली गई पशु पर्याय में डन्डों से पीटते हैं अतएव संसार में किस बात में मान किया जाये क्षणिक वस्तु में मान करना व्यर्थ है आत्मा का स्वभाव जो मृदुता है वही धारण करना चाहिये भगवान के प्रति प्रीत होना चाहिये शास्त्र में देव में गुरु में सदैव विनय रखना चाहिये विनय से विद्या आती है विद्या से नम्रता मिलती है नम्रता से धन प्राप्ति होता है धन से धर्म होता है शास्त्रों का विनय के साथ सुनना पढ़ना जीर्णोद्धार करना नवीन शास्त्रों का प्रकाशन करना यह शास्त्र विनय है अपने से बड़ा कोई विद्वान आजाय उसका यथोचित मान सन्मान करना चाहिये, श्रीमान् पैसे से नहीं होता है जिनके पास धर्म है श्रीमान कहा जा सकता है, धर्मात्माओं की सभी विनय करते हैं और उनकी टहल सेवा के लिये तत्पर रहते हैं, उनको खाने पीने की व्यवस्था सुचारु रीति से सभी करते हैं, विनय गुण देखकर वह धर्मात्मा प्रसन्न हो जाता है, और जहां कहीं जाता है, उसकी प्रशंसा करता है हर जगह उनकी कीर्ति फैल जाती है, इसी लये वे सदैव सुखी रहते हैं जो पत्थर के समान कठोर हैं उन पर चाहे जितना उपदेश रूपी जल पड़े परन्तु वह कभी नरम नहीं होता है मिट्टी का ढेला पर जरा सा पानी पड़ने पर मुलायम हो जाता है। इसी तरह मृदुता भाव धारी जरासी विनय से प्रसन्न हो जाता है किंतु स्वार्थ वश विनय नहीं होना चाहिये, संसार में स्वार्थी जीव सदा विनय करते हैं परन्तु यह उनका दिखावा मात्र है। ऐसी विनय से कुछ अपना आत्मीक हित नहीं हो सकता है, बड़े मनुष्य अपने मुंह से कभी अपनी तारीफ नहीं करते है। हीरा कभी भी अपने मुख से नहीं कहता है कि मेरा बड़ा मूल्य है। उसका मूल्य उसके गुण को देखकर दूसरे आंकते हैं इसी तरह से विनयी पुरुषों का गुण दूसरे लोग देखकर प्रशंसा करते हैं, कठोर परिणामी के पास कोई जाने के लिये तैयार नहीं करता है, अनादि काल से मान कषाय के वृक्ष पर चढ़ा हुआ है जो पुरुष वह जीव किसी समय अवश्य नीचे गिरेगा। यदि जोर से गिरा तो हड्डी पसली सभी टूट जायगी जो नीचे है वह कभी गिरेगा नहीं मृदु भाव ही आत्मा का स्वरूप है संसारी जीवों को मिथ्या भाव अनादिकाल से रहने के कारण कठोर हो रहा है पर्याय बुद्धी होने के कारण दुःख उठा रहा है, कुल, रूप, विद्या, धन, तप जाति इत्यादि का मान करना व्यर्थ है क्योंकि यह सब विनाशीक है अभि मानी जीव अपने अभिमान के वश में चार आदमियों के सामने खूब खर्च करता है और दूसरों से पूछता है कि यह काम कैसा किया। किसी ने तारीफ कर दिया तो बहुत प्रसन्न हो जाता है, मान कषायी की पुजा प्रतिष्ठा सभी निष्फल है ऐश्वर्य का मद न करो यह तो विनाशीक है, आत्मा का स्वरूप अष्टमद से रहित हैं अनादि काल से अनेक योनियों में जन्म धारण किया तिर्यंच-पर्याय में कूकर, सूकर गधा हो गया मान कहां रहा ज्ञानी पुरुष सोचता है कि संसारी वस्तुयें विनाशीक हैं इनमें मान कभी न करना चाहिये, जब तक पुन्य का उदय है तब तक जीव अभि-

मान करता है। पुन्य क्षीण हो जाने पर फिर दरिद्री दुःखी होकर रहता है। चक्रवर्ती चौदह रत्नों का स्वामी सुभूमि चक्रवर्ती मरकर एक में सप्तम नरक का नारकी बन गया तो दूसरों की कौन कहे जिनके हजारों देव रक्षा करते थे पुण्यक्षीण होने पर पानी पिलाने वाला भी कोई नहीं मिला पुण्य रहित जीव कैसे मदोन्मत्त हो जाता है यह बड़ा आश्चर्य है जो बहुत दानी हैं उत्तम तपस्वी हैं। वह कभी भी अपने दान तप का अभिमान नहीं करता है सम्यग्दर्शन को प्राप्त करना चाहते हो तो आठों मदों को त्याग करो अभिमानी सदा निंदा का पात्र है उसकी सभी निंदा करते हैं। अभिमानी को गुरुजन विद्या नहीं देते हैं अभिमानी मालिक को नौकर भी त्याग देता है। पुत्र का शिष्य का सेवकपना, विनय पना ही प्रशंसा के योग्य हैं अतएव पुत्र व शिष्य का कर्तव्य है कि जो कुछ कार्य करें माता पिता गुरुजनों की आज्ञा प्रमाण बड़ी विनय से अङ्गीकार करे, भोजन पान भी बड़े प्रेम और विनय से देना चाहिये अन्यथा दान निरर्थक है, घर में स्त्रियां अभिमानी और अविनयी होने से घर वालों को महान कष्ट उठाना पड़ता है एक मनुष्य रसोई खाने के लिये घर आया पूछा रसोई नहीं बनाया उसने उत्तर दिया कि नहीं फिर पूछा कहा गई थी तो बरतन उठा उठाकर फेंकने लगी, कारे करारी कलहे नयारी रूपे विकारी क्रोधी पुमारी क्षमासु अग्नि कलिकाल नारी ॥ ऐसी कलिकाल की स्त्रियों का वर्ताव कठोर हो रहा है प्रेम नहीं है विनय नहीं है इसलिये घर नरक के तुल्य है प्रेम होने से ही माता के स्तनों में दूध होता है।

इस दश लक्षण धर्म में अपने आत्मा को स्वाभाविक गुण मृदुता को प्राप्त करने का अभ्यास करो रागद्वेष परिणाम के द्वारा आत्मा कठोर हो रहा है, जो कड़ा है वह सदैव चोट खाता है जो मुलायम होता है, वह चोट नहीं खाता है, जो आत्म कल्याण के इच्छुक है, उन्हें उचित है कि वह संसार में सभी प्राणियों के प्रति मृदुता की भावना रक्खें मान कषाय का त्याग करके मार्दव धर्म का ग्रहणकर सुखी बनें मार्दव गुण संसार का नाश करने वाला है, सास्वत सुख का देने वाला है—जीवन धन जल बुदबुदा के समान अस्थिर है इसका अभिमान क्योंकर रहा है न कोई तेरा है और न तू किसी का है यह स्थान राजा रङ्क का कोई थिर नहीं है सभी समयानुसार नष्ट हो जाते है घड़ी पल की भी खबर नहीं कब सबेरा होता है। कब शाम होती है, लोभ, राग, द्वेष, अज्ञान इत्यादि का त्याग कर मार्दव का आश्रय ले इसी में तेरा कल्याण है।

———

धर्मपत्नी लखनीचन्द धर्मपत्नी रूपचन्दजी जैन दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया।

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख १८–९–५३ दिन शुक्रवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में उत्तम आर्जव का विवेचन करते हुये कहा कि—
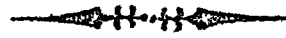
आर्जव क्रियते सम्यग् दुष्ट बुद्धिश्च त्यज्यते ।
पाप चिंता न कर्तव्या भव्ये नार्पिच सर्वदा ॥

ऋजोर्भावः इति आर्जवः – आर्जव सरल भाव रखना यही आर्जव है आत्मा का स्वभाव ही आर्जव है श्रावकों को उचित है कि सदा सरलता रखें कपट रहित होना कपट भावों को निकाल देना दुष्ट बुद्रि का त्याग करना माया चार का त्याग करना मायाचारी को तिर्यंच गति का बन्ध होता है समस्त पापों को दूर करने वाला समस्त सुखों को देने वाला आर्जव धर्म है जब तक मनुष्य अपना परिणाम शुद्ध सरल नहीं रखता तब तक उसे उत्तम आर्जव धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है, संसार में देखा जाता है कि कपटी मनुष्य का व्यवहार ठीक नहीं समझा जाता मायाचारी होने के कारण एक जगह विश्वस्त बनकर नहीं कर सकता जिस समय मायाचार प्रगट हो जाता है व्योहार छूट जाता है मायाचार को त्याग करके सरल परिणाम धारण करना चाहिये, सत्यघोष एक ब्राह्मण राजा का पुरोहित था शास्त्र पढ़ता था कि मायाचार, झूठ, कपट करना बहुत बुरा है अपनी जनेऊ में चाकू बांध रखा था और अपने लिये कहा करता था कि यदि मैं झूठ बोलूँ कपट करूँ तो मेरी जिह्वा इस चाकू से काट डाली जाय, एक दिन ऐसा हुआ कि एक सेठ बाहर जाने वाला था उसके पास पांच बेश कीमतीरत्न थे सोचा कहीं रख देना ठीक है साथ ले जाना उचित नहीं है विचार करके सत्यघोष पुरोहित के पास अपने पांचों रत्न रखकर विदेश व्योपार के लिये चला गया वापस होने पर समुद्र में तूफान उठा और उसमें सेठ का जहाज डूबगया सारा धन नष्ट हो गया, सेठ ने सत्यघोष को पत्र लिखा कि मेरा सारा धन नष्ट हो गया है। हमारे रत्न भेज दीजिये पत्र पहुँचने पर सत्यघोष ने कहना आरम्भ किया कि मैंने एक स्वप्न देखा है। कि एक पागल मनुष्य आवेगा और मुझसे रत्न मांगेगा निदान सेठ जी के पास रत्न नहीं पहुँचे इसलिये सेठ जी रत्न घोष के पास आकर

रत्न मांगने लगा सत्यघोष कपट करके कहने लगा कि देखो तो मैंने पहिले कहा था वही पागल मनुष्य आगया—सेठ रोज रत्न रत्न चिल्लाने लगा राजा ने इस पर ध्यान दिया रानी चतुर थी उसने सोचा यह पागल तो नहीं मालूम होता है क्योंकि एक ही बात रोज रटता है। राजा से रानी ने निवेदन किया कि राजन् आज मुझे पुरोहित के साथ जुवा खेलने की इजाजत दीजिये निदान राजा ने आज्ञा दे दी रानी पुरोहित के साथ जुवा खेलने लगी। और जुवा में पुरोहित की अँगूठी जीत ली, और सम्पूर्ण वस्त्रादि जीत लिये यह सब चीजें पुरोहित के घर भेजकर रानी ने कहला भेजा कि जो रत्न सेठ के रखे हैं वह दे दो नहीं तो राजा ने जुवा खेलते पुरोहित को पकड़ा है इनको राज-दन्ड दिया जायगा पंडितानी घबराकर रत्न दे दिये रानी ने रत्न पाकर राजा को दिखलाया और कहा कि देखिये आप कहते थे कि यह मनुष्य पागल है परन्तु वह पागल नहीं है। अपने रत्न मांगता है, राजा ने परीक्षा के लिये उन रत्नों को अपने यहां के और रत्नों में मिला कर सेठ को दिखलाया सेठ ने रत्नों को देखकर अपने रत्न पहिचानकर निकाल लिये तब राजा पुरोहित को बुलाया और कहा कि पुरोहित जी जो मनुष्य मायाचारी से किसी की कोई वस्तु हरण करले तो उसे क्या दंड दिया जाना चाहिये पुरोहित ने कहा कि उसे मुष्ठिका प्रहार से ताड़ित करना चाहिये और गोबर खिलाना चाहिये ताकि उसे देखकर कोई मनुष्य मायाचारी करने का साहस न कर सके इस तरह पुरोहित जी से सब बातें पूछकर अन्त में राजा ने सेठ के रत्नों को दिखलाकर पुरोहित से कहा कि यह रत्न तुम्हारे यहां से आये हैं इन्हें तुमने क्यों हड़पने का प्रयत्न किया और इतना प्रपंच रचा पुरोहित देखकर लज्जित हो गया और भय से कांपने लगा। राजा ने कहा पुरोहित जी जो तुमने दन्ड विधान बतलाया है बतलाओ तुम उसमें कौन सा दन्ड लेना चाहते हो पुरोहित विचारने लगा मुष्ठिका प्रहारसे तो मेरा प्राणान्त ही हो जावेगा गोबर खाने की स्वीकारता दी। गोबर लाया गया परन्तु उसे अधिक खा न सका निदान उसने मुष्ठिका प्रहार की स्वीकारता दी मुष्ठिका प्रहार करने वाले बुलाये गये और मुष्ठिका प्रहार के लिये राजा ने आज्ञादी मुष्ठिका प्रहार होते ही सत्यघोष मृत्यु प्राप्त हो गया। सत्यघोष मर कर राजा के खजाने में जाकर सर्प हुआ। मायाचारी बहुत निंद्य है मायाचारी का कोई विश्वास नहीं करता है उसे सदैव राज दन्ड पंचदंड भोगना पड़ता है हुन्डी इत्यादि का व्योपार सच्चाई पर ही निर्भर है, किसी ने किसी चीज का भाव पूछा उसने मायाचार से कह दिया कि अमुक वस्तु का भाव बहुत घट गया है उस पुरुष ने सोचा बेंच लेना अच्छा है— मायाचारी मंदिर जा रहा था मंदिर में जाकर जल्दी २ यद्वा तद्वा करके जल्दी मकान लौटकर कम कीमत में उसकी वस्तु खरीद लेता है जब भेद खुलता है तो मर्यादा घट जाती है, नकली चीज को असली कहकर बेचना मायाचार है। मायाचार से बिल्ली, कुत्ता, स्त्री पर्याय इत्यादि खोटी पर्यायों में जन्म होता है, मायाचारी करने वाले कौवे की क्या दशा हुई एक कौवे ने देखा कि जंगलमें मोर नाच रहा है सभी लोग उसका

नाच बड़े प्रेम से देख रहे हैं, कौवे ने सोचा मैं भी मोर बनूँ तो मेरा भी सन्मान होने लगे कौवे ने मोर पंख इकट्ठा किये अपने शरीर पर मोर पंख लगा लिये और मोरों के झुन्ड में जाकर रहने लगा परन्तु जब बोला तो उसका भेद खुला मोरों ने उसे अपने झुन्ड से निकाल दिया कहा यह मायाचारी है निदान वह कौवा अपने झुन्ड में आया कौवों ने कहा यह मायाचारी है, अपने झुन्ड से निकाल दिया इस तरह दोनों जगह से निकाला गया न इधर का रहा न उधर का रहा मायाचारी जहाँ जाता है मायाचार करके किसी को ठगता ही रहता है. ऊपर से बड़ी मीठी २ बातें करता है और मन में सोचा करता है कब मौका मिले इस की धन सम्पदा हरण करलूँ बिल्ली आंख मूदकर म्याऊँ २ करके जब दूध मिल जाता है यों चुपके से उसे पीकर भाग जाती है। एक ब्राह्मण बहुत भूँखा था सेठ जी ने कहा कि मेरे घर जाकर भोजन ले आवो भोजन लेने के लिये घर भेजा सेठानीने कुछ ध्यान नहीं दिया ब्राह्मण ने आकर सेठ से कहा कि सेठानी तो किसी से बातें कर रही है सेठजी स्वयम् ब्राह्मण को लेकर आये सारा हाल देखकर आश्चर्य चकित हो गया- वह बड़े दुःख के साथ कहने लगा कि अहो ! किसी ने कहा कि "त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः" स्त्रियों का चरित्र और पुरुषों का भाग्य जब देवता नहीं जानते तब मनुष्य कैसे जान सकता है ? सो सत्य ही है; क्योंकि जो स्त्री इतनी पतिव्रता बनती थी कि हमारे सामने स्तन पान करते हुये अबोध भोले भाले नन्हें बच्चे के दोनों हाथों को बाँध देती थी और इसका कारण पूछने पर उत्तर देती थी कि मैं पतिव्रता हूँ। अतः स्तन स्पर्श होने के कारण हाथों को बाँध देती हूँ, सो आज पर पुरुष को चाहती है। यह सोचकर उसने एक श्लोक का एक चरण बनाया "बालक हस्तौबध्नाति नारी" वह ब्राह्मण काशी के नजदीक जा रहा था वहाँ पर उसने देखा कि एक सत्यघोष नामक ब्राह्मण बड़े सत्यवादी रहते थे उनकी सत्यता पर विश्वास करके एक सेठ ने अपना डंडा उनके पास रख दिया। उसके पोल में हजारों रूपये थे वह लेकर चल दिया तब उसने दूसरा चरण बनाया "काशी ब्राह्मण चोरकः एक तालाब के किनारे बगुला एक टाँग से खड़े २ ध्यान कर रहा है इतने में बगुला ने मछली देखा और उसको पकड़ लिया तब तीसरा [illegible]च कि 'बक पक्षी करोति ध्यानं"

सेठ जी को पकड़ कर शूली चढ़ाने के लिये सेठ को लिये जा रहे हैं सेठ जी श्लोक पढ़ते और हँसते जा रहे हैं एक वेश्या ने जो बड़ी चतुर थी शूली पर चढ़ने के लिये जाते हुये सेठ को प्रसन्न और श्लोक पढ़ते देखकर राजा से कहा कि इन्हें मुझे दे दीजिये तो मैं इससे बात चीत करके कुछ भेद खोलूँगी-राजा ने वेश्या को सेठ जी को दे दिया वेश्या ने सेठ जी से पूछा कि श्लोक का अर्थ बतलाइये सेठ जी ने सब हाल अपनी स्त्री से लेकर अन्त तक चोरी का सब हाल बतला दिया, चोरी का माल जो राजाके यहाँ से चोरी गया था सब सन्यासियों के यहाँ से निकलवा कर राजा के पास भेजवा दिया और श्लोकका अँतिम चरण उसने बनाया

अनेक प्रकार के दुःखों को भोगना है; मनवचन कार्य की कुटिलता का त्याग करना आर्जव धर्म कर्मक्षय के लिये धारण करना चाहिए कोई कहते हैं कि बिना कुटिलता के व्यौपार नहीं चलता है। यह बात बिल्कुल झूठ है जिसकी कुटिलता खुल जाती है उसकी पोल खुल जाती है थोड़े ही दिनों में उसका व्यौपार विश्वास न होने के कारण नष्ट हो जाता है। सरल सच्चे व्यौपारी की दूकानदारी सदैव चलती रहती है कभी घटती नहीं है। अतएव सरलता सच्चाई ही करना चाहिये एक अहीर दूध का व्यापार करने लगा दूध में आधा पानी मिला मिला कर बेचने लगा ड्योढ़ रुपये से उसने लाखों रुपये पैदा कर लिये उसके सामने एक सदाचारी दूकानदार था वह बहुत दिनों तक व्यापार करने पर भी अधिक धन नहीं एकत्र कर सका दूकानदार ने सोचा कि धर्म से कुछ नहीं होता है मायाचारी से देखो ग्वाल ने कितना धन एकत्रित करलिया मैं जैसा का तैसा ही रहा। एक साधू के पास जाकर पूछा साधू ने एक गड्ढा खुदवाकर दूकानदार को खड़ा कर दिया और उसमें पानी भरवाने लगा जब कण्ठ तक पानी आगया तब तक दूकानदार को कोई कष्ट नहीं बोध हुआ साधू ने और थोड़ा पानी भरवा दिया अब तो दूकानदार डूबने लगा और चिल्लाया महाराज मैं मरा मैं मरा साधू ने कहा अभी उसको डूबने में थोड़ी देर है जैसे ही पाप एकत्रित होजावेगा डूब जायगा। मायाचारी का धन बिजली के समान क्षणिक है सदाचारी की कमाई से उसकी कोई तुलना नहीं है। अतएव आर्जव धर्म ही सरलता पूर्वक ग्रहण करना चाहिये यही कल्याणकारी है।

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख १६-६-५३ दिन शनिवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में उत्तम सत्य का विवेचन करते हुये कहा कि—

असत्यं सर्वथा त्याज्यं दुष्ट वाक्यं च सर्वदा।
पर निन्दा न कर्तव्या भव्येनापिच सर्वदा॥

अर्थ—भव्य पुरुष को असत्य सर्वथा त्याग देना चाहिये और गाली गलौज आदि दुष्ट बचनों को कभी नहीं बोलना चाहिये। सत्य वचन दया धर्म का मूल है, समस्त दोषों को दूर करने वाला है, इस भव तथा पर भव में सुख देने वाला है। बचनों में उत्कृष्ट बचन सत्य ही है। सत्य बचन संसार में निरुपमेय है। अर्थात्-सत्य बचन की तुलना किसी के भी साथ नहीं कर सकते। अतः विश्वास के स्थान भूत सर्वदा सत्य बचन बोलना चाहिये। सत्य धर्म ही सर्व धर्मों में प्रधान है। इस भूमंडल में सत्य धर्म का विधान ही उत्कृष्ट कहा है, सत्य धर्म ही संसार समुद्र से पार होने के लिये पुल है अर्थात् संसार सागर से तरने के लिये प्रधान कारण है और सत्य धर्म ही समस्त जीवों के चित्त को सुख देने वाला है। यह मनुष्य जन्म सत्य से ही शोभायमान होता है और सत्य से ही पवित्र पुण्य कर्मों का संचय होता है। इस सत्य धर्म से अन्य समस्त गुणोंका समूह पूज्या जाता है अर्थात् सत्य धर्म के होने से अन्य गुणों की महिमा बढ़ती है और इस सत्य धर्म से ही स्वर्ग निवासी देवगण मनुष्यों की सेवा करते हैं। इस सत्य धर्म के होते हुये अणुव्रत और महाव्रत पालन हो सकते हैं और सत्य धर्मसे ही समस्त आपत्तियाँ नाश हो जाती हैं। कहा भी है कि:—

सत्यस्य बचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम्।
यत्तु लोके सुदुर्ज्ञेयं तत्ते वक्ष्यामि भारत॥

अर्थ—सत्य बचन बहुत सुन्दर है इससे बढ़कर कोई भी वस्तु संसार में दूसरी नहीं है। हे भारत! जो वस्तु संसार में कठिनाई से जानने वाली है, वह मैं तुम्हारे लिये कहूँगा। इस सत्य से बढ़कर संसार में कोई तपस्या नहीं है। सत्य से ही मनुष्य विजयी होता है। कहा भी है कि "सत्यं जयति नानृतम्" सत्य ही विजयी होता है इस पर एक दृष्टान्त दिया

जाता है:- एक लकड़िहारा जंगल में नदी के किनारे के एक वृक्ष पर बैठा बैठा लकड़ी काट रहा था। अचानक उसकी कुल्हाड़ी नदी में जा गिरी। बेचारा लकड़िहारा फूट-फूट कर नदी के किनारे बैठकर रोने लगा। इतने में इस दुःख भरी आवाज़ को सुनकर नदी का देवता निकल कर बाहर आया और उसने दुःखी होने का कारण पूछा। लकड़िहारे ने कहा कि महाराज मेरी कुल्हाड़ी नदी में गिर गई है, देवता यह जान कर नदी में गया और वहाँ से एक सोने की कुल्हाड़ी ले आया तत्पश्चात् उसे लकड़िहारे को दे दिया। लकड़िहारे ने कहा कि महाराज! यह मेरी कुल्हाड़ी नहीं है। देवता पुनः नदी में गया और दूसरी चाँदी की कुल्हाड़ी ले आया। लकड़िहारे ने इस कुल्हाड़ी को देख कर इसके लेने से भी मना कर दिया। अब की बार देवता उसकी वही लोहे की कुल्हाड़ी ले आया। तब लकड़िहारे ने कहा कि महाराज! यही हमारी कुल्हाड़ी है। देवता ने प्रसन्न होकर सोने तथा चाँदी दोनों कुल्हाड़ी उसे देदी। यह सारा वृत्तान्त लकड़िहारे ने अपने साथी को सुनाया। साथी बड़ा चालाक था। वह भी वहीं जाकर लकड़ी काटने लगा और जान बूझकर अपनी कुल्हाड़ी नदी में डाल दी। तत्पश्चात् चीख मार मार कर रोना प्रारम्भ कर दिया। देवता नदी से निकल कर बाहर आया और उसने सारा वृत्तान्त उससे पूछा। लकड़िहारा बोला कि हमारी कुल्हाड़ी नदी में गिर गई है। देवता नदी में गया और सोने की कुल्हाड़ी ले आया। लकड़िहारा कुल्हाड़ी को देखते ही कहा कि हाँ महाराज! यही हमारी कुल्हाड़ी है। देवता उस पर नाराज होकर अँतरध्यान हो गया और इस प्रकार से वह झूठा लकड़िहारा अपनी गाँठ की कुल्हाड़ी भी खो बैठा। इस लिये सत्य बोलना चाहिये। सत्य से व्यवहार (रोजगार) भी खूब चलता है। सत्य वादी मनुष्य विदेश में जाकर अपरिचित होने पर भी चिर परिचित-सा हो कर थोड़े ही दिनों में करोड़ो अरबों रुपयों तक का हिसाब किताब करने वाला मुनीम बनकर पुत्रके समान आदर सत्कार प्राप्त करता है; पर मिथ्या वादी अपने पुत्र को भी लोग अनादर दृष्टि से देखते हुये उसे शत्रु समझते हैं। न्याय व सत्यका द्रव्य न्याय में ही जाता है इस पर एक दृष्टान्त है कि:- एक राजा ने पं० जी से पूछा कि हम एक मंदिर बनवाना चाहते हैं। पं० जी ने ज्योतिष खोलकर मुहूर्त्त देखा तो पता चला कि अन्यायोपार्जित द्रव्य से मंदिर नहीं बन सकता यह बात पं० जी ने राजा से कह दिया। राजा ने धार्मिक व्यक्ति का पता लगवाया तो मालूम हुआ कि यहाँ पर जिनदत्त नामक सेठ बहुत बड़ा धर्मात्मा है अतः उससे धन बदल कर मंदिर बनवाना चाहिये। यह निश्चय होने के बाद राजा ने इस बात की परीक्षा लेने के लिये सेठ जी को साथ में लेकर भ्रमण करने के लिये प्रस्थान कर दिया। कुछ दूर जाने पर एक उच्च-कोटि के महात्मा घोराघोर तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्या से इन्द्रासन व सकल ब्रह्मांड डगमगा रहा था। राजा ने एक रत्न महात्मा जी के पास रखकर प्रणाम किया उस रत्न के रखते ही राजा का उत्कृष्ट ध्यान ऐसा विगड़ गया कि उनके मन में ऐसी कुभावना उत्पन्न हुँई कि यह कितना सुन्दर रत्न है" इसे

लेकर एक बार भोग-भोगना चाहिये। यह सोच कर महात्मा जीने उस रत्नको लेकर अपने घरकी राह लिया और वहां जाकर वे भोग-भोगने लगे। कुछ दूर और आगे जाने पर एक नदी मिली। उसमें एक व्यक्ति जाल फैलाकर मछली मार रहा था जिनदत्त सेठ ने पूछा कि क्या तुम रोज मछली मारते हो? उसने उत्तर दिया कि हाँ सेठ जी, हमारी जीविका यही है। इसी जीविका से हम अपने कुटुम्बियों का भरण-पोषण करते हैं। सेठ जी ने पुनः पूछा कि तुम्हें इस हिंसा से प्रति दिन कितने रुपये मिल जाते होंगे? उसने कहा कि सेठ जी ३) (तीन रुपये) सेठ जी ने कहा कि यदि तुम्हें हम १०) (दश रुपये) दे दें, तो क्या तुम आज के दिन मछली मारना (हिंसा करना) छोड़ सकते हो? उसने कहा हाँ आज हम किसी जीव को नहीं सतायेंगे। सेठ जी ने उसे १०) दश रुपये दे दिया। वह व्यक्ति रुपये को लेकर घर चला आया और उन्हीं रुपयों का अन्न खरीदकर भोजन बनवाया तत्पश्चात् प्रेम पूर्वक सकल कुटुम्बियों के साथ उसने भोजन किया। सेठ जी के सात्विक धन से भोजन करते ही उन हिंसकों की भावना ऐसी बदल गई कि उन्होंने सर्वदा के लिये हिंसा (मछली मारना) छोड़ दिया। इससे सिद्ध है, कि सात्विक द्रव्य से अपना आत्म कल्याण करते हुये मनुष्य दूसरे का भी आत्मकल्याण कर सकता है। सत्य के ऊपर निम्नांकित श्लोक दिये जाते हैं:—

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपेतरविः,
सत्येन वायवो वान्ति सर्वसत्ये प्रतिष्ठितम् ॥१॥
सदयं हृदयं यस्प, भाषितं सत्य भूषितम्,
काय पर हिते यस्य, कलिस्तस्य करोति किम् ॥२॥
विश्वासायतनं विपत्ति दलनं देवैः कृताराधनं।
मुक्तेः पथ्यदनं जलाग्नि शमनं व्याघ्रोरग स्तंभनम्,
श्रेयः संवननं समृद्धि जननं सौजन्य संजीवनम् ॥
कीर्तेः केलि वनं प्रभाव भवनं सत्वयं वचःपावेनम्,

अर्थ—सत्य से पृथ्वी स्थित है, सत्य से सूर्य व चन्द्रमा अपना २ प्रकाश देकर दिन-रात्रि में सुशोभित होते हैं, सत्य के तेज से पवन (हवा) चलती रहती है अर्थात् सभी वस्तुओं की प्रतिष्ठा सत्य के ऊपर ही निर्भर है।

दया से युक्त हृदय है जिसका सत्य वचन के आभूषणों से आभूषित है तथा परोपकार में रत रहने वाली भावना है जिसकी उसका कलियुग क्या बिगाड़ सकता है? कुछ भी नहीं सत्य से विश्वास मिलता है, विपत्ति का नाश होता है, देवता लोग सत्य वादी की आराधना करते हैं, सत्य मुक्ति पथ को प्रदर्शित करने वाला है, जल-अग्नि को शांत करने वाला है। व्याघ्र व साँप को स्तम्भन करने वाला है। कल्याण समृद्धि को उत्पन्न करने वाला है। सज्जनों को जीवन प्रदान करने वाला है, पवित्र सत्य वचन कीर्ति का केलि वन तथा प्रभाव का भवन है। इसलिये सत्य का आश्रय करना मंगलों की खानि है। सत्य धर्म दया धर्म का मूल कारण है, अनेक दोषों को दूर करने वाला है, इस भव में तथा पर भव में सुख देने वाला है, सब जीवों के विश्वास करने का कारण है। समस्त धर्म के मध्य में सत्य वचन प्रधान है। सत्य वादी महाराज हरिश्चन्द्र जी को चांडाल के यहां श्मशान पर मुर्दे जलाने पड़े, परन्तु इस के बल से उन्होने अन्त में अपने कुटुम्बियों

तथा चांडाल को साथ में लेकर परम पद प्राप्त किया। सत्य के प्रताप से नष्ट हुई, राज लक्ष्मी भी वापिस चली आती है। इस पर एक दृष्टांत दिया जाता है।

एक राजा बड़ा धर्मात्मा था। उसने प्रजाओं में धार्मिक व्यवहार करते हुये ऐसी घोषणा कर दिया था कि तुम लोग व्यापार करते हुये असत्य कभी मत बोलना किन्तु यदि शाम तक तुम्हारा माल न बिके, तो हमारे दरबार में उसे जमा करके खजाने से उसका मूल्य ले जाना। राजा की परीक्षा करने के लिये एक मन्त्र वादी १ शनेश्चर की मूर्ति लाकर राजा से कहा कि हमारी मूर्ति में यह दुर्गुण है, कि यह जहां रहेगी वहाँ उसे कोढ़ी रोगी दोषी बनाकर दरिद्र बना देती है। इसलिये आपके बाज़ार में इसे किसी ने नहीं खरीदा, किन्तु यदि आप नहीं लेंगे तो हमारा निर्वाह नहीं हो सकता। मन्त्र वादी ने उसका मूल्य एक लाख रू० रक्खा था अतः राजा ने एक लाख रू० देकर उसे खरीद लिया। उसके आते ही राजा कोढ़ी, रोगी व दोषी हो गया। अन्त में रात्रि के वक्त सोते समय राज लक्ष्मी, धृति, कीर्ति तथा दया ने आकर कहा कि अब आप में राज पौरुष नहीं है इसलिये हम लोग जाना चाहती हैं। राजा ने कहा कि हमें कोई हर्ष-विषाद नहीं है, तुम लोग जा सकती हो। तत्पश्चात् सत्य ने भी आकर जाने की आज्ञा मांगने लगा तब राजा उसके (सत्य के) पैरों पर गिर पड़े और रो-रोकर कहने लगे कि हमने तो एक आप के लिये ही सारा सुख छोड़ दिया, तो आप हमें क्यों ठुकराते हैं? राजा की इस वाणी से सत्य ने उन्हें कन्ठ लगाया और सारा राज्य पुनः प्रस्तुत कर दिया। अतः सत्य धन हमेशा हाथ में रखना चाहिए।

आदिनाथ व बनारसीलाल जी जैन दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख २०-६-५३ दिन रविवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में उत्तम शौचधर्म का विवेचन करते हुये कहा कि—
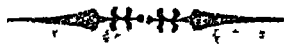
वाह्याभ्यंतरं चापिमनिवक्काय शुद्धिनिः ।
शुचित्तेन सदा भाव्यं पाप भीतैः सुश्रावकैः ॥

जो श्रावक पाप से भीरू हैं उनको शुचिता धारण करना चाहिये मनुष्य को शुद्धि करने के लिये अपने वाह्य और अन्त रङ्ग दोनों को शुद्धि करना चाहिये आत्मा की शुद्धि के लिये शौच कर्म करना चाहिये बहुत से लोग गङ्गा यमुना, गोदावरी इत्यादि नदियों में स्नान करके शुद्धि मानते हैं यदि ऐसा हो तो उनमें रहने वाले मगरमच्छादि स्वर्ग मोक्ष प्राप्त कर लेते परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता है इस लिये अपने आत्मा को शुद्ध करना चाहिये, केवल स्नान मात्र से शुद्धि नहीं हो सकती है, सबेरे मन्दिर में आकर भगवान के सामने प्रार्थना करते हैं कि मैंने गङ्गा यमुनादि नदियों में स्नान किया परन्तु शुद्धता नहीं प्राप्त हुई अब आपके चरण कमलों तीर्थ में स्नान करूँगा जिससे संसार समुद्र से तर-जाऊँ जो आपके तीर्थ में स्नान करेगा उसके कर्ममल नष्ट हो जायेंगे । इसलिये सबसे पहिले भगवान की चरण कमल तीर्थ में स्नान करना चाहिये स्नान करने के पश्चात् फिर भी तो धूलि इत्यादि शरीर पर पड़कर मैला हो जाता है । इस धूलि को दूर करने के लिये अन्त रङ्ग शुद्धि क्रोध, मान, माया लोभादि कषायों को दूर करके करना चाहिये जब तक धर्म रूपी तीर्थ में स्नान नहीं करेगा तो शुद्धि नहीं हो सकती है । केवल जल से शुद्धि करने से कुछ नहीं हो सकता है । शरार हमेशा अपवित्र है इसमें नव द्वारों से हमेशा मल निकलता रहता है । चाहे जितनी बार इसको शुद्ध किया फिर भी अशुद्ध बना रहता है कच्चा मिट्टी में पानी छोड़ा जाय । तो मैल बढ़ता ही जाता है कितना ही शरीर शुद्ध किया जाय परन्तु इसका संसर्ग किसी वस्तु से किया जाय जो वह अशुद्ध हो जाता है इसलिये जो अनश्वर आत्मा है उसे धर्म तीर्थ में स्नान करना चाहिये अन्त रङ्ग शुद्ध वाह्य शुद्धि दोनों ही चाहिये अशुद्धता के लिये हमारी भावना ही मुख्य कारण है । लोभ पाप का बाप

बखाना लोभ से आत्मा मलीन हो जाती है राग द्वेष उत्पन्न हो जाता है। एक पं० जी काशी से विशारद पढ़कर आये और अपनी पंडिताइन को पंडिताई बतलाया पंडिताइन ने पूछा कि पाप का बाप कौन है यह बताओ पं० जी ने शास्त्रों में बहुत ढूँढ़ा परन्तु कहीं नहीं मिला, पं० जी फिर काशी पढ़ाई के लिये गये रास्ते में जाते २ एक वेश्या के दरवाजे पर चबूतरा था उसपर बैठकर विचार करने लगा वेश्या थूकने के लिये चाहा परन्तु एक मनुष्य को देखकर उसे अपने पास बुला भेजा, और पूछा आप कौन हैं और कहां जाते हैं पं० जी ने कहा कि मैं ब्राह्मण और पाप का बाप पढ़ने के लिये काशी जा रहा हूँ। वेश्या ने कहा कि पं० जी आप मेरे अतिथि हैं। आप मेरे यहाँ भोजन कीजिये पं० जी ने कहा कि मैं भोजन अपने हाथ से बनाऊँगा। पं० जी रसोई बनाने लगे वेश्या ने कहा कि महाराज आपकी और अधिक सेवा करना चाहती हूँ। अतएव मैं कुछ इसमें सहयोग देना चाहती हूं। जरा देख लूँ कि भोजन ठीक बन रहा है कि नहीं ब्राह्मण बोला कि नहीं वेश्या ने कहा इसके लिये पांच सौ रू० दूंगी तब ब्राह्मण देवता ने कहा अच्छा दूर से अंगुली से देख लो सब न छूना, वेश्या ने वैसा ही किया और अन्त में अपने हाथ से भोजन कराने के लिये पांच सौ रू० और देने को कहा पं० जी ने स्वीकार करके वेश्या के हाथ से एक ग्रास ग्रहण कर लिया पीछे वेश्या ने ब्राह्मण के मूंड़पर एक चप्पल मारा पं० जी ने कहा कि यह क्या वेश्या ने उत्तर दिया जो विद्या आप सीखने के लिये जा रहे थे उसे मैंने आपको सिखा दिया पं० जी समझ गये कि लोभ ही पाप का बाप है जब तक अन्त रङ्ग बाह्य रङ्ग आत्मा की शुद्धि नहीं की जायगी जीव का कल्याण नहीं हो सकता है मुख्य कारण अन्त रङ्ग है। दो मित्र थे एक वेश्या गामी था, एक भगवान की पूजा करता था। वेश्या के घर जाने पर विचार किया कि मैं निंद्य हूँ मै यहाँ पाप का बंध कर रहा हूँ और मेरा मित्र भगवान की पूजन करके पुन्य का बंध कर रहा हूँ, मैं निंद्य हूं और पूजा करने वाला विचार करता है कि मित्र वेश्या के यहां आनंद कर रहा है मैं यहां पड़ा हूँ, इन दोनों को उल्टा फल मिल रहा है पूजन करने वाला पाप कमा रहा है वेश्या के यहां रहने वाला पुन्य कमा रहा है कहने का प्रयोजन यह है कि फल अन्त रङ्ग भावों के अनुसार होता है, अनादिकाल से लोभ कषायादि जब भरे पड़े हैं तब तक शुचिता नहीं आ सकती है, इनको दूर करना प्रथम कर्तव्य है मोह के द्वारा जो कर्म आत्मा के साथ लिपट जाते हैं यही अशुद्धि हैं हम लोग अनादि काल से अशुद्धि में पड़े हैं लोभ, मोह वलवान हो रहा है इसलिये हमेशा अशुद्धि है, इष्ट संयोग में सुख और अनिष्ट संयोग में दुःख प्राप्त होता है जब तक यह भावना है कभी शुद्धि नहीं हो सकती है लोटा केवल बाहर मांजने से नही शुद्ध होता है भीतर भी मांजना चाहिये तब शुद्धि हो सकता है दूसरे को देखने कलुषित परिणामों का होना अशुद्धि है। एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर ने किसी से कहा कि तुम देखकर आवो कि संसार में मित्र कौन हैं और शत्रु कौन हैं वह मनुष्य अन्त रङ्ग में दोषी था इसलिये उसको सब शत्रु ही शत्रु दिखलाई पड़े

धर्म राजयुधिष्टिर जब देखने को गये तो उनको सब मित्र ही मित्र दिखलाई पड़े कहने का प्रयोजन यह है यादृशी भावना वस्य सिद्धि भर्वति तादृशी जैसी भावना होती है वैसा ही ऊपर से दिखलाई पड़ता है। इसलिये अन्त रङ्ग पहिले शुद्धि करना आवश्यक है। पीछे शरीर शुद्धि करना चाहिये योग मज्जन भोग मज्जन दोनों मनुष्य को करना उचित है भोगों के भोगने के बाद शरीर को शुद्ध करना भोग स्नान है भगवान के मंदिर में पूजा पाठादि करना शास्त्र पढ़ना यह योग शुद्धि है।

शरीर का ऊपरी शृंगार कंकन मुद्रिकादि है किन्तु अन्तरंग शुद्धि के लिये भगवान का नाम जपन करना पूजा करना प्रज्ञाल करना सांसारिक वासनाओं का दूर कर देना केवल भगवान के कहे हुये मार्ग का अवलंबन करना इत्यादि करना चाहिये, जिस समय भोगों को भोगना पड़े उसको भोगना चाहिये किन्तु इससे हटकर भगवान के चरण कमलों में भी मन को लगाना चाहिये दोनों आवश्यक है। हम एक ही बात करते हैं दोनों जब तक नहीं करेंगे शुद्धि नहीं होगी। भगवान के तीथ में एक बार भी डुबकी लगाओगे तो अनादिकाल से लगा कर्ममल दूर हो जायगा। गङ्गा गोदावरी में केवल स्नान करने से कुछ नहीं होगा। गङ्गा नदी तो केवल वाह्य शुद्धि कर सकती है अंतरंग शुद्धि करने के लिये अपने हृदय स्थित स्नान गङ्गा में स्नान करना चाहिये। स्नान गङ्गा में स्नान करने से संचित पापों का मल दूर हो जायगा। अन्तरंग वाहिरंग दोनों शुद्धि करना चाहिये बिना दोनों की शुद्धि के कर्ममल दूर नहीं हो सकता है। भगवान की वाणी गङ्गा जब निकलती है उसमें भव्य जीव स्नान करके शुद्ध हो सकते हैं गङ्गा नदी से तो केवल वाह्य शुद्धि होगी अन्तरंग शुद्धि करके वाह्य शुद्धि कार्यकारी हो सकती है मुख्य अन्तरंग शुद्धि ही है रात्रि दिन कुवां के जलसे न मालूम कितना स्नान किया गया परंतु आज तक कभी शुद्धि प्राप्त नहीं हुई शरीर भी शुद्ध नहीं हुआ अन्तरंग शुद्धि तो बहुत दूर है एक दिन भी कोई वस्त्र पहिन लिया जाय तो वह अशुद्ध हो जाता है शरीर संसर्ग से तो सभी वस्तुयें अशुद्ध हो जाती हैं। कोयलेका कालापन कभी दूर नहीं किया जा सकता कोई चाहै कि साबुन से धोकर शुद्ध करलें परन्तु वह तो काला ही बना रहेगा इस लिये जब तक अन्तरग में मलीनता है ऊपरी शुद्धि से कभी शुद्ध नहीं हो सकता है। शरीर का रूप प्रति समय बदलता रहता है सन्तकुमार चक्रवर्ती का रूप अतयंत सुन्दर था जिस को तारीफ सुनकर एक देव स्वर्ग से आकर देखा कि हाँ वास्तव में शरीर अत्यत सुन्दर है। थोड़ी देर के बाद फिर देव ने देखा तो उसे मालूम हुआ कि वह रूप और सुन्दरता नहीं रहगई। देव ने सिर हिला कर नहीं २ वह रूप अब नहीं है। शरीर में सप्तधातु भरी हुई है महा अपवित्र है मल का भरा हुआ घड़ा पानी से धोने पर कैसे शुद्ध हो सकता है शरीर के भीतरी भाग का निरीक्षण किया जाय तो वह घृणा के योग्य है इसे न तो कोई देख सकता है और न छू सकता है। ऐसा मलीन शरीर भला केवल स्नान से कैसे शुद्ध हो सकता है। परन्तु शरीर से धर्म सेवन करके इसे पवित्र बनालेना चाहिये। इसके भीतर रत्न त्रय रूपी

एक पति देव दूसरा जिन देव सबसे पहिले इन्हें पति देवकी सेवा करनी चाहिये। तभी भगवान की सेवा करने से विशेष लाभ मिलेगा। किन्तु इसके विपरीत स्त्रियां मंदिर में आकर अनेक प्रकार की वृथा बकवाद करती हैं। भगवान की पूजा भक्ति में चित्त नहीं लगाती हैं। तो भला इससे पुण्य कैसे प्राप्त हो सकता है। अपने आचरण से दूसरों का हित हो अपना हित हो तो समझना चाहिये कि हमारी शुद्धता है नहीं तो अशुद्धि ही है। कौवा हजार बार स्नान करे तब भी वह शुद्ध नहीं होता है इस तरह हम चाहे जितनी बार शरीर का स्नान करें परन्तु इससे कभी भी शुद्धि नहीं प्राप्त हो सकती भीतर कषाय रूपी मदिरा भरी हुई है दुर्गंध आ रही है जब तक यह मोह मदिरा भीतर से दूर नहीं की जायगी तब तक शुद्धि नहीं हो सकती है। हृदय शुद्ध और बुद्धि निर्मल करो रागद्वेषमय कपट, लोभ, छल इत्यादि दूर करना चाहिये। किसी ऊँचनीच समझने का त्याग करो सबको समान समझना रोगी शोकी दुःखी दरिद्री को देखकर ग्लान नहीं करना चाहिये। सेवा धर्म अँगीकार कर के अपना प्राण परोपकार में लगा देना चाहिये। इसी से कल्याण भी प्राप्ति होगा और उत्तम शौच धर्म को प्राप्ति होगी।

बोलो उत्तम शौच धर्म की जयः—

...वासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख २१-९-५३ दिन सोमवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में उत्तम संयमधर्म का विवेचन करते हुये कहा कि—
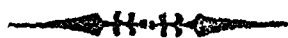
संयमंद्विविधं लोके कथितंमुनि पुङ्गवैः ।
पालनीय पुनश्चित्तो भव्य जीवेन सर्वदा ॥

संसारी प्राणियों के लिये आचार्य ने संयम दो प्रकार का बतलाया है। बाह्य संयम और अन्त रङ्ग संयम सो भव्य जीवोंको पालन करना चाहिये जो संयम धारण करके छोड़ देता है। अथवा नहीं पालन करता है वह पशु के समान है, व्रत हीन मनुष्य हमेशा इस भयंकर संसार में बार २ भ्रमण करता है, उसकी आस्था देव गुरु शास्त्र पर नहीं रहती है निरतिचार संयम पालन करने से चक्रवर्ति इत्यादि के सुख प्राप्त होते हैं पांचों इन्द्रियों को अपने आधीन रखना पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, बनस्पति, त्रस इन छः कायों के जीवों की रक्षा करना वही संयम है। जो संयम लेकर छोड़ देता है वह हमेशा दरिद्र संपति हीन रहता है यदि कुछ संपति मिल भी जावे तो उसका उपयोग वह नहीं कर सकता है सभी प्राणियों में दया रखना प्रेम पूर्वक उनकी रक्षा करना बहुत जरूरी है, शोध करके चलना उठना बैठना लोभ वश अधिक खेती इत्यादि करना अहिंसा धर्म है संयम पालने वाले का इसलोक में कोई शत्रु नहीं होता है परलोक में देवगति इत्यादि ऊँची गतियां प्राप्त होती हैं। जीव हिंसा करने वाला संसार में कभी सुखी नहीं रहता है दश प्राण अर्थात् पाँच इन्द्रिय, मनबल, बचनबल, कायबल, श्वोच्छ्वास, आयु इनका नाश कर देना हिंसा है, एकेन्द्रिय को चार प्राण दो इन्द्रिय को पाँच तीन इन्द्रिय वाले को ७ चार इन्द्रिय वाले को आठ असैनी पंचेन्द्रिय के नौ और सभी पंचेन्द्रिय के दश प्राण होते हैं इस तरह प्राणों की अपेक्षा हिंसा उत्तरोत्तर अधिक होती है प्राणी हिंसा को न पालन करने वाले जीव को सदैव दुःख भोगना पड़ता है किसी जीव को दुःख पहुँचाने की भावना नहीं रखना चाहिये। संयम रहित जीव संसार से कभी पार नहीं हो सकता है, किसान लोग जब धान्य बोते हैं तो खेत की रक्षा के लिये चारों ओर वाड़ लगा देते हैं इसी तरह

मनुष्य शरीर बड़ी मुशकिल से मिला है। इसकी रक्षा के लिये संयम रूपी बाड़ लगा देना चाहिये नहीं तो रागद्वेष रूपी पशु आकर सब चर जायेंगे, जो संयम रूपी बीज बोया है उसे आयु रूपी पक्षी खा न ले, क्योंकि इस शरीर से मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति करना इष्ट है अतएव इसकी रक्षा प्रति समय करना चाहिये नहीं तो बीज बोया हुआ खेत नष्ट हो जायगा, कदाचित वृक्ष उग आये बड़े हो गये बाली भी आगई इस समय यदि चिड़ियां आकर खालें तो कितने दुःख की बात है और सम्पूर्ण प्रयत्न निष्फल हो जावेगा इसलिये फल आने के वक्त बहुत होशियारी के साथ रक्षा करने का प्रयत्न करें, मनुष्य को कुछ बन्धन चाहिये यदि घर में कोई वृद्ध पुरुष नहीं होता है तो उच्छृंखलता आ जाती है इसलिए मनुष्य को आत्महित करने के लिए संयम का बन्धन चाहिए एक २ इन्द्रिय घोर दुःख देने वाली हैं स्पर्शन इन्द्रिय के वशीभूत हाथी का मांध होकर गड्ढे में गिर कर मर जाता है कर्ण इन्द्रिय के वश होकर शिकारी के जाल में हिरण फँस जाता है चक्षु इन्द्रिय के वशीभूत होकर पतङ्ग दीपक के ऊपर अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता है घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत हो कर भौरा कमल पुष्प में सुगन्ध लेता हुआ बैठा रहता है संध्या को सोचता है कि मैं रात्रिभर इसी में रहूँगा। प्रातःकाल कमल खुलते ही निकलकर उड़ जाऊँगा। इसी उधेड़ बुन में भौरा था कि इतने में एक हाथी आया और उस कमल को तोड़कर खा गया, भौंरा मृत्यु को प्राप्त हो गया जिह्वा इन्द्रिय के वश होकर मछली अपने प्राणो को खो बैठता है, कांटे में कुछ भोज्य पदार्थ लगाकर जल में छोड़ देते हैं। मछली उसे खा जाती है। और उसके गले में कांटा फंस जाता है तब उसको पकड़कर मार डालते हैं, इसलिये आचार्य कहते हैं। कि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो इन्द्रिय संयम, और प्राणि संयम को धारण करो जब जीव स्वार्थी हो जाता है किसी के हित का विचार नहीं करता है और वह स्वच्छंद होकर विचरता है एक भील दारू पीकर आ रहा था रास्ते में एक जटा धारी साधु मिल गये रास्ते में आ रहे थे भील नशे में मस्त था भील ने बाबा जी को पकड़ लिया, और कहा तुमको दारू पीना पड़ेगा, मांस खाना पड़ेगा। अथवा मेरी स्त्री जो है उससे समागम करो बाबा जी ने अस्वीकार किया परन्तु भील ने बहुत फटकारा और भय दिखाया तब बाबा जी ने दारू पीना स्वीकार कर लिया जब दारू पिया तो उनको मांस खाना पड़ा और स्त्री संभोग भी करना पड़ा इसलिये इन्द्रिय लालसा को रोककर संयम धारण करना, चाहिये। जब इन्द्रियां काबू में नहीं रहेंगी वह कुछ व्रत नियम नहीं कर सकेगा। कुछ तो बन्धन, नियम अवश्य चाहिये तभी कल्याण हो सकता है, एक ब्राह्मण था और एक वैश्य था, दोनों जुवा खेलते थे फिर चोरी करने लगे, कोतवाल ने पकड़ा तो देश निकाला कर दिया दोनों ने जाकर एक चोरों के गिरोह में प्रवेश किया चोर सरदार ने कहा कि देखो तुमको एक बात करना पड़ेगा यह कि साधु के पास तुमको कभी नहीं जाना होगा, वैश्य पुत्र जाता था। इसलिये उससे कहा गया तुम जाना छोड़ दो नहीं तो कल्याण अपना नहीं हो सकता एक

दिन चोरी करके आ रहे थे प्यास लगी तो एक तालाबके किनारे गये वहां हाथी ने पीछा किया तो एक वृक्ष पर चढ़ गये नीचे उतर कर एक मंदिर में रात को रहना पड़ा वहां साधु के दर्शन हुये देखते ही कान में रुई लगाकर सोरहे साधु ज्ञानी थे उन्होंने प्रातःकाल जोर २ से धर्म का व्याख्यान करने लगे वैश्य पुत्र बाबा जी के पास चला गया और कहा कि मुझे कुछ नियम दे दो बाबा जी ने कहा कि तुम क्या करते हो। उसने उत्तर दिया, चोरी करता हूँ, मांस खाता हूं, शराब पीता हूं उसपर बाबा जी ने कहा कि इसमें से कुछ छोड़ दो चोर ने कहा कि मैं इस का नियम नहीं ले सकता हूं तब बाबा जी ने कहा जो तिलक धारी हो उसका देखकर भोजन करना सोचा कि पड़ोस में कुम्हार रहता है वह तिलक लगाता है उसे देख लिया करूँगा एक दिन वैश्य भूल से खाने के लिये गया लेकिन उसको याद आया कि आज तिलक वाला मुंह नहीं देखा है। उठकर दौड़ा आया कुम्हार मिट्टी खोदने के लिये बाहर गया था वहाँ पहुँच कर उसने कुम्हार का मुँह देखा और बोला मैंने देख लिया और उलटे पांव वापस भाग आया। कुम्हार को एक हँडा मिल गया था कुम्हार ने सोचा कि यह देख गया है इस लिये इस को आधा देना चाहिये जाकर आधा बांट दिया तब वैश्य ने सोचा कि बाबा जी ने बड़ा अच्छा नियम दिया था। अब बाबाजी के पास चलकर कोई दूसरा नियम लेलूँ बाबा जी के पास गया और दूसरे नियम की याचना की बाबा जी ने कहा कि मांस भक्षण न करना वैश्य ने नियम ले लिया कि मांस नहीं खाऊँगा एक दिन चोरों ने मांस भक्षण के लिये इसको बुलाया इसने कहा कि मैं तो मांस भक्षण नहीं करूँगा चोरों ने कहा जाने दो इसको हम लोग भक्षण करें चोरों ने भक्षण किया मांस विषैला था सभी खाने वाले मर गये चोरी का जितना माल था इसके हाथ लगा इसने सोचा जब दो नियम मिले तो इतना फायदा हुआ यदि और पूरे नियम लेलूँ तो बहुत लाभ होगा अतएव उसने बाबा जी से संयमधारण करके धार्मिक ग्रहस्थ बन गया और अपने दुराचरणों को छोड़कर सुख से कालयापन करने लगा। देखो १ सामान्य व्रत के धारण करने से चोरी करने वाला चोर सुधर गया तो हम लोग संयम धारण करके क्यों न सुखी होंगे सभी लोगों को व्रतग्रहण करना चाहिये। लोग व्रत करते हैं परन्तु भूख इत्यादि की बाधा करने के कारण रात्रि में उठ २ कर रात्रिका माप करते हैं। कितनी रात्रि बाकी है। इच्छा होती है कि जल्दी प्रातःकाल हो और मुख यात्रा करूँ इस तरह से व्रत सफल नहीं कहा जा सकता है। हमको अपना मन अपने कंट्रोलमें रखना चाहिये लालसा को रोक कर इन्द्रियों को अपने काबू में रखना चाहिये इन्द्रियों को काबू में कर लिया तो सभी चीजों पर काबू पालिया जावेगा यदि इन्द्रियों को हमने स्वच्छंद छोड़ दिया तो कोई व्रत नियम नहीं पालन किया जा सकता है एक मनुष्य मांस भक्षी था मनुष्य का मांस खाता था। मरघटमें जाकर कब्र खोद २ कर मनुष्य का मांस खाया करता था। भला सोचो तो सही ऐसा नीच मनुष्य क्या संयम पालन कर सकता है जिसकी जिह्वा इन्द्रिय अपने वशमें नहीं है। उसका खान पान सदैव भ्रष्ट रहता है। पहिले

तो मनुष्य जन्म मिलना दुष्कर है। उत्तम कुल मिलना और कठिन है। नीच कुल में जन्म लेकर अनेक कुकार्य करना पड़ता है। उत्तम कुलमें जन्म भी हो गया तो आयु परिपूर्ण नहीं मिली सदैव रोगी रहे घर में खजाना भरा पड़ा है परन्तु अपच रोग के कारण कुछ खा नहीं सकते। शरीर निरोगी मिलना बहुत मुश्किल है जब तक रोग मुक्त शरीर न हो कोई व्रत नियम नहीं धारण कर सकता है। यदि यह सब बातें मिल जावें और कुटुम्बी जन अपने अनुकूल नहीं मिलते इससे महान दुःख होता है बिना पूर्व पुन्योदय के नहीं मिलता है। यह भी मिल जावे तो भगवान की भक्ति में भावना न हुई तो क्या लाभ हुआ। इन्द्रिय विजय करने के लिये साधु पुरुषों की संगति, सत्पात्र दान करना उचित है अधिक धन होने पर मनुष्य अभिमानी बन जाता है। यह पूर्व पुन्यका उदय है और उत्त-रोत्तर इनका मिलना दुर्लभ है इस लिये अगाड़ी भवमें अपना कल्याण करना चाहता है तो तू संयम धर्म धारण कर एक मन्त्री था। रोज राज-दरबार में जाया करता था। एक दिन राजा ने प्रश्न पूछा कि मेरे चार प्रश्न हैं। छे छे छे। छे छे नथी। नथी नथी छे। नथी नथी नथी इन प्रश्नों का उत्तर दो, सुन कर मन्त्री ने कहा कि अच्छा इसका उत्तर आठ दिन में दूँगा। अपने घर चला आया सोच विचार करते कुछ नहीं सूझा अँतिम दिन उसकी छोटी लड़की ने उदास रहने का कारण पूछा मन्त्री जी ने सब बतला दिया लड़की ने कहा पिता जी मुझे साथ ले चलिये। मैं उत्तर दूँगी साथ चलने पर रास्ते में देखा कि एक सेठ जी आ रहे हैं लड़की ने पिता से पूछा यह उत्तम पुरुष कौन हैं मन्त्री ने कहा बेटी यह बड़े धर्मात्मा सेठ हैं। इनके पास अपार धन है, और सदा दान पुन्य करते रहते बेटी ने सुनकर कहा पिता जी पहिले प्रश्न का उत्तर मिल गया पूर्व पुन्योदय से यह सुखी हैं और आगामी भी सुखी होंगे। आगे चलने पर एक सेठ मिले पूछा कि यह कौन हैं मन्त्री जी ने उत्तर दिया कि यह भी सेठ है परन्तु लोभी बड़ा है कुछ दान पुन्य नहीं करता है। इसको सुन कर लड़की ने कहा कि यह आपके दूसरे प्रश्नका उत्तर है पहिले पुन्य किया था अब अगाड़ी के लिये कुछ नहीं कर रहा है। आगे चलने पर एक साधु दिखलाई पड़े लड़की ने पूछा पिता जी यह कौन हैं मन्त्री जी ने उत्तर दिया बेटी यह साधु महात्मा है अपनी धन संपदा छोड़कर अपनी इन्द्रियों को कावू में रखकर परलोक में सुखपाने के लिये तपस्या कर रहे हैं। लड़की ने कहा कि पिता जी यह आपके तीसरे प्रश्न का उत्तर मिल गया। कुछ दूर आगे चलनेपर एक चंडाल मिला लड़की ने पूछा कि यह कौन है मन्त्री ने उत्तर दिया बेटी यह एक चांडाल है यह बड़ा दरिद्री है और प्रति दिन हिंसा करता रहता है इसका जीवन दुःखी है और आगामी के लिये भी हिंसा करके दुःख की सामिग्री इकट्ठा कर रहा है। सुनकर लड़की ने कहा कि पिता जी यह आपके चतुर्थ प्रश्न का उत्तर भी मिल गया। इस तरह मन्त्री को राजा के प्रश्नों का यथोचित उत्तर मिल जाने पर बहुत प्रसन्नता हुई और राज दरबार में जाकर राजा के चारों प्रश्नों का समुचित उत्तर देदिया।

ला० कुन्दनलाल जी जैन गनेशपुर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

टिकैतनगर में

तारीख २२-९-५३ दिन मङ्गलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में उत्तम तप धर्म का विवेचन करते हुये कहा कि—

छाद्शंद्विविधं चैव वाह्याभ्यंतर भेदतः ।
स्वयं शक्ति प्रमाणेन क्रियते धर्म भेदतिः ॥

तप्यतेनितपः जिसके द्वारा तपाया जाता है । उसको तप कहते हैं तप द्वादश प्रकार का है । उसमें दो भेद हैं । अन्तरङ्ग तप और वाह्य तप उसमें वाह्य तप अनशन, अवमोदर्य व्रत परि संख्यात रसपरित्याग विविक्त शय्यासन कायक्लेश हैं, आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित विनय, वैयावृत्य स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान यह अन्तरङ्ग तप हैं, आत्मा के साथ लगा हुआ अनादिकाल से जो कर्म मल उसको इस तप के द्वारा तपाया जाता है तब कर्म मल दूर हो जाता है, अनशन का अर्थ उपवास करना है, आत्मा अनादिकाल से कर्मावद्ध के कारण दूर हो रहा है । उसको सब प्रकार के आरम्भ का त्याग कर के आत्मा को नजदीक करना अर्थात् उसमें रमना आहार करने से शरीर बलवान बनता है इससे एक प्रकार का मद उत्पन्न होता है इसलिये उपवास के द्वारा शरीर कुछ क्षीण होता है, किन्तु आत्मीक शक्ति बढ़ जाती है, ऐसा उपवास ठीक तौर से करना कल्याणकारी है, किन्तु भूख से व्याकुल होना धर्म ध्यान में मन न लगना उपवास नहीं है । रात्रि दिन भूख की वाधा से अपने मन को व्यथित करना लंघन है, उपवास करने वाला अपने आत्मा में रत रहता है उनोदर अर्थात् कुछ कम खाना इसलिये कि धर्म ध्यान, पूजन, भोजन में कुछ वाधा न पड़े अधिक खा लेने से आलस्य और नींद प्रमाद आ जाता है आलस्य और प्रमाद को दूर करने के लिये उनोदर तप आवश्यक है, रसपरित्याग अर्थात् रोज एक २ रस का त्याग करना अपने मन को वश में करने के लिये मन जिस चीज की तरफ विशेष रूप से दौड़ता हो उसी रस का त्याग करना चाहिये, मन और इन्द्रियां चंचल हैं, परन्तु इनके कावू में रखने के लिये भोजन की मात्रा कम करने की जरूरत है, रसपरि त्याग करना आत्म-हित में सहायक है जहां मन दौड़ जाता है । मर्कट के समान कूद फांदकर

।

राजाराणा छत्रपति [illegible]न के असवार मरना सबको एक दिन अपनी २ बार आत्मा इस निंद्य पर्याय के कारण दुःख पा रहा है। इसलिये शरीर का सुखिया पना दूर करने के लिये इससे मोह हटाने के लिये कायक्लेश तप करना चाहिये। वैराग्य भावना करना चाहिये, कोई मनुष्य घर में भगवान का नाम ले रहा था। इतने में एक मनुष्य आया उसने कहा कि कहां आये हो उत्तर दिया की ऊँट ढूँढ़ने आया हूँ। उसने कहा कि ऊँट कहीं घर के भीतर रहता है, तब उस आगन्तुक मनुष्य ने कहा आप घर में क्यों भगवान को ढूँढ़ रहे हैं। यह तो तप के द्वारा बन में ही सम्भव है। उसकी हृदय की आंख खुल गई और वह तपस्या करने के लिये बन में चला गया, सोलह बार तपाने से सुवर्ण शुद्ध होता है उसी तरह बाह्याभ्यंतर तपों के द्वारा आत्मा को तपाकर शुद्ध करना चाहिये, तपश्चरण से यदि डर जाय तो आत्मा कैसे शुद्ध हो सकता है, अनादिकाल से तीन शरीर औदारिक कर्माण और तैजस आत्मा के साथ लगे हुये हैं, इनको दूर करने के लिये ध्यानाग्नि के द्वारा, इसे भस्म करना चाहिये, इससे आत्मा शुद्ध हो जाता है और मोक्ष मार्ग मिल जाता है पर वस्तु के संयोग से आत्मा को भूल गया है। शरीर से ममत्व छोड़कर किसी प्रकार की भी उपसर्ग को सहन करना कायक्लेश है, बाईस परीषहों का सहना आवश्यक है, एक समय बहुत से लोगों में से एक स्त्री ने उठकर कहा कि आज मैं एक ग्रास मात्र खाऊँगी वह स्त्री गरीब थी घर में जाकर कहा कि मुझे सामग्री चाहिये, घी, शक्कर, आटा, दूध सभी चीजें चाहिये, उससे एक बड़ी गुझिया बना ली किवांड़ बन्द करके बाल बच्चों को भी आने से रोक दिया, सम्पूर्ण गुझिया मुख में रख लिया गुझिया बड़ा होने के कारण गले में अटक गई और वह घबड़ाने लगी, लड़कों को भय होने लगा जल्दी से महाराज के पास गये पूछने लगे महाराज आपने कौन सा व्रत दिया है महाराज ने कहा एक ग्रास खाने का नियम करके गई थी बालकों ने कहा कि वह तो बड़ी भारी गुझिया बनाकर मुख में डाल लिया वह कन्ठ में अटकी है न इधर जाती है न उधर जाती है निदान वैद्य को बुलाकर उसे निकलवाया गया, यह तप नहीं है, इससे कुछ फल नहीं मिल सकता है, तप तो वह है जिसमें शरीर से ममत्व कम होता जावे—

आलोचना तपः—आत्मा शरीर के द्वारा जो अनेक प्रकार के आरम्भ करता है और उससे जो पाप बंध होता है। उसको भगवान के सन्मुख जाकर उन कर्तव्यों की आलोचना करना और आगामी उन पाप कर्मों को न करने की भावना करना इसका नाम आलोचना तप है। यत्नाचार पूर्वक कार्य करता हुआ भूल से प्रमाद से जो पाप बन गया हो उसे दूर करने के लिये भगवान के सन्मुख क्षमा मांगना चाहिये गुरु

यदि कोई दंड दें तो सहर्ष ग्रहण करके पाप को दूर कर लेना चाहिये, दूसरे के दोषों को देखना अपने दोषों को न देखना यह समीचीन मार्ग नहीं है अपने अवगुणों को और दूसरे के गुणों को देखने से आत्म हित होता है।

प्रत्याख्यान—जो किये हुये दोषों को पुनः न करने का नियम लेना इसका नाम प्रत्याख्यान है इससे आत्मा शुद्ध होती है।

प्रायश्चित—आत्मा में जो दोष लग गये हों उनको दूर करने के लिये दण्ड लेना, गुरु के पास अथवा भगवान के सामने जाकर अपने दोषों का वर्णन करके दण्ड ग्रहण करना मन में पश्चाताप करना प्रायश्चित तप है।

विनय—विनय तप मुख्य तप है, देव, गुरु, शास्त्र, धर्म, धर्मात्माओं की यथा योग्य विनय करना उनकी सेवा सुश्रूषा करना आवश्यक है। जो विनयवान है उनके समान भाग्यशाली संसार में कोई नहीं है जो विनयवान हैं उनका संसार में कोई शत्रु नहीं है, अहंकार भाव छोड़ कर प्रत्येक बड़े जनों का विनय करना चाहिये।

वैयावृत्य—गुरुजनों की वैयावृत्य करना चाहिये यदि कोई रोगी हो उसको औषधि के द्वारा उठाना, बैठाना, उसको अनेक प्रकार से साता पहुँचाना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है, धर्म से चलायमान होता देखकर उनके योग्य सामग्री का जुटा देना धर्म ध्यान में दृढ़कर देना भी वैयावृत्य है इससे विशेष पुण्य का बंध होता है वैयावृत्य करने वाला अपने को सबसे लघु समझता है इससे उसकी आत्मा उद्धतपना छोड़ कर शांति दशा में आ जाती है। कोई गरीब आदमी धन रहित है उसे धन देकर वैयावृत्य करना चाहिये। अपने माता पिता की सेवा करना वैयावृत्य है आज कलके अंग्रेजी पढ़े लिखे वैयावृत्य का नाम भी नहीं जानते हैं। भला उनके द्वारा किसी का क्या कल्याण हो सकता है इस लिये अपना भी कल्याण नहीं कर सकता है। अन्ग्रेजी भाषा बुरी नहीं है परन्तु धार्मिकता को छोड़ कर बुरी बातों को ग्रहण करलेना बुरा है, एक पिता अपने लड़के को एम, ए, पास कराना चाहता था। धीरे २ पास करते हुये पढ़ने लगा। पिता प्रचुर द्रव्य पढ़ाई के लिये भेजता था। किन्तु लड़का वेश्या-गमन, नाटक सिनेमा देखने में सब व्यर्थ खो देता था कुछ दिनों में वह लड़का पढ़कर बाबू हो गया। और यहां पिता का सब द्रव्य खतम हो गया। लड़के ने अपने मन से विवाह भी कर लिया और शहर में रहने लगा। पिता वृद्ध हो गया। कमाई न रहने के कारण लड़के की तलाश में निकला। और आफिस में जाकर अपने लड़के को पुकार कर कहने लगा कि मैं आ गया हूँ, वहाँ बहुत से बाबू लोगों ने पूछा यह कौन है लड़के ने कहा कि यह मेरा पुराना नौकर है। यह बात सुन कर पिता को बहुत दुःख हुआ, फिर घर आया स्त्री कहने लगी कि यह बुड्ढा कहाँ से आगया। इस को जल्दी से घर से निकाल दो अतएव दूसरे घर में लेजाकर रख दिया। और रूखा सूखा भोजन लाकर दे देता था। यह बात कितनी अनुचित है यह सब धार्मिक भावों की शून्यता का कारण है। वृद्धा अवस्था में अपने माता पिता की आज्ञा-मानना वैयावृत्य करना परमावश्यक है परम-कर्तव्य है।

स्वाध्याय—शास्त्र का स्वाध्याय अपने हित अहित का ज्ञान करने के लिये करना चाहिये। जब तक अपने हित अनहित का ज्ञान न होगा तो हित को पहिचान कर कैसे ग्रहण करैगा और अहित का त्याग कैसे करैगा। स्वाध्याय करने से चित्त की वृत्ति इधर उधर नहीं जाती है मन एकाग्र होता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो कोई बात समझ में नहीं आ सकती है मन, बचन, काय तीनों योग एकाग्र हो जाते है। स्वाध्याय परमतप है संसारीक और पारमर्थिक दोनों बातों का ज्ञान होता है पापसे बच जाता है जो पाप पुन्य कुछ नहीं समझता है उसे शास्त्र स्वाध्याय करके पाप पुन्यका भेद समझना चाहिये। स्वाध्याय में आने वाले विषयों को ठीक तरह से समझना चाहिये। दुःख में शांति समझना शास्त्र स्वाध्यायी का कर्तव्य है। जो दुःख से घवड़ा जाते हैं अनिध्यान करने लग जाते हैं वह मूर्ख हैं पढ़े लिखे नहीं हैं शास्त्र स्वाध्याय करने से धैर्य बंध जाता है। पुराण पुरुषों का कथानक पढ़ कर विवेक आ जाता है आत्मा का परिचय हो जाता है पर वस्तु का मोह छूट जाता है आत्मा स्वरूप का मिल जाना ही स्वाध्याय का फल है, मन को एकाग्र करने का साधन स्वाध्याय से वढ़कर कोई नहीं है। जब स्वाध्याय करने से आत्मीक भावों में रमण करने लगे तो स्वाध्याय का फल प्राप्त होना समझलेना चाहिये। एक राजा था मन माना सुख भोगता था, एक दिन रासते में जा रहा था जंगल में देखा कि एक ऊँट मरा पड़ा है मंत्री से पूछा कि यह क्या है मंत्री जी ने उत्तर दिया कि यह ऊँट है मर गया है। राजा ने कहा कि कैसे मर गया है। ठीक उत्तर दो नहीं तो ठीक नहीं होगा तुम्हें दंड दिया जायगा। मंत्रीने कहा कि महाराज इसके भीतर आत्मा था वह निकल गया अब निर्जीव शरीर पड़ा है राजा ने कहा आत्मा क्या चीज है किस रंग रूप की होती है मंत्री ने कहा कि मैं नहीं बतला सकता हूँ जंगल में दूसरी जगह साधु रहते हैं उनसे चलकर पूछिये वह बतला देंगे निदान राजा तुरन्त उस के पास गया देखा बहुत से साधु बैठे हैं सबसे प्रश्न किया कि आत्मा किस रूप रंगकी है कैसी होती है मुझे शीघ्र बतलाओ नहीं तो तुम्हें कैदखाने में बन्दकर दूंगा कोई नहीं बतला सका सबको कैदखाने में बन्दकर दिया गया। एक दूसरे बाबा जी जो अलग बैठे थे। उनके पास गयो और उनसे भी आत्मा का स्वरूप पूछा साधुसे कहा कि जल्दी बतलाओ नहीं तो तुम्हें कैद भोगनी पड़ेगी साधु ज्ञानी थे कहा कि मैं बतला सकता हूँ किन्तु मुझे आठ दिन का राज्य देदो तो मैं बतला सकता हूं, राजा ने अपना राजपाट आठ दिन के लिये दे दिया। राजग्रहण करके अपने पास एक दिन राजा को बुला कर कहा कि देखो इन रत्नों को, हाथ में लो और देखकर बतलाओ कि इनमें कौन असली है कौन नकली है कौन मूल्यवान है कौन घटिया है यह प्रश्न सुनकर राजा ने कहा कि वह तो मैं नहीं जानता हूँ किसी जौहरी को बुलाओ वह बतला सकता है तब एक जौहरी बुलाया गया और उसने रत्न परीक्षा करके सब बातें बतलादी साधुने पूछा कि मुझे भी रत्न परीक्षा इसी समय सिखादो जौहरी बोला कि इतनी जल्दी नहीं हो सकता है मेरी आयु तमाम हो गई तब मैंने रत्न परीक्षा करना सीख पाया है साधुने राजा से कहा देखो जौहरी क्या कहता है राजा ने कहा ठीक कहता है तब साधुने कहा कि आप तत्काल आत्मा की पहिचान पूछते हो यहकैसे संभव है।

धर्मपत्नी ला० पुद्दनलाल जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख २३-९-५३ दिन बुधवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में उत्तम त्याग धर्म का विवेचन करते हुये कहा कि—
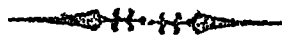
चतुर्विधाय संघय दानं चैवचतुर्विधम् ॥
दातव्यं सर्वदा सम्भिश्च तर्कःपार लौकिका ॥
दानचार परकार चार संघ को दीजिये ॥
धनविजुली उनहार नर भव लाहो लीजिये ॥

चार प्रकार का दान है औषधि, शास्त्र, अभय, आहार, मन पूर्वक इसका त्याग करना दान कहलाता है। दान देकर पीछे पछिताना नहीं चाहिये अथवा बार २ उसका स्मरण करना नहीं चाहिये, परलोक की चिंता करने वाले को चारों प्रकार का दान स्वशक्तियनुसार मुनि अर्जिका, श्रावक, श्राविका चार संघ को देता है अपने पास धन नहीं है तो मीठे बचनो से संतोषित करना यह भी दान है पात्र को आहार दान देना चाहिये, जो रोगी दुःखी दरिद्री हैं उनको करुणा दान देना चाहिये संसार में देखा जाता है कि अपनी नामवरी के लिये जो भूखे नहीं हैं, उनको बुलाकर खिलाते हैं पास पड़ोस में कोई भूखा है तो उसे कोई नहीं पूछता, एक सेठ मन्दिर और अपना मकान बनवा रहा था ईंटा इत्यादिक सामान अलग २ रखता था परन्तु एक दिन शंका हो गई कोई ईंटा मंदिर वाला घर में न लग गया हो इसलिये सेठ ने आया हुवा सम्पूर्ण ईंटा इत्यादि मन्दिर में ही दे दिया, इस प्रकार विचार पूर्वक दान करना चाहिये, अपनी भावना सदा ऊँची रखना चाहिये, लड़का खेलते समय नङ्गा हो जावे तो उसे अपने खेल के आगे नङ्गापना का ख्याल नहीं रखता है इसी तरह जो आज कल देखा जाता है अपने स्वार्थ के आगे दान करने की रुचि ही नहीं होती है। विचार करने की बात है कि पाप का बोझा जीवों के शरीर पर लदा हुआ है उस पाप के बोझे को दूर करने के लिये दान करना थोड़ा २ त्याग अवश्य करके अपने पाप के बोझे को हलका करते रहना चाहिये मनुष्य को कहीं शांति नहीं है एक मनुष्य था जो एक बाबा जी के नजदीक कभी नहीं आता था सोचता था कि कहीं कुछ देना न पड़े थोड़े दिनों में नजदीक आकर शास्त्र श्रवण करने लगा जब साधु का चातुर्मास पूर्ण

हो गया तो सभी लोग शास्त्र में कुछ चढ़ाने लगे इसे देखकर वह मनुष्य सामने आकर पांच रुपया शास्त्र में चढ़ाये इसपर बाबा जी ने उसकी बहुत तारीफ किया और भक्त लोग जो पहिले से आते थे उनके मन में ईर्षा हुई बाबा से शिकवा किया कि महाराज आप इनकी बहुत तारीफ करते हैं क्या हम लोग कुछ नहीं किया है बाबा जी ने कहा कि भाई यह कभी सन्मुख नहीं आता था हमारे शामिल नहीं रहता था। आप लोग तो सदैव साथ हैं। आज यह नया मनुष्य साथी बना है इसलिये इसको धन्यवाद दे रहें हैं। जिनको त्याग करने का अभ्यास है। वह सदैव त्याग कर सकते हैं। जिनको त्याग का अभ्यास नहीं है। उनको मरण समय में भी त्याग उनसे नहीं हो सकता है वह केवल संचय करता रहता है। चार प्रकार का दान सदैव देना चाहिये आहार के समान कोई दान नहीं है किसी को दस रुपया दे दिये जावें तो उतना प्रयोजन सिद्ध नहीं होता किन्तु भोजन देने पर उसे भीतर शांति मिलती है। इससे आपस में प्रेम बढ़ जाता है। यदि भूखे को दान करेंगे तो वह उपकार मानेगा उसकी भूख की ज्वाला शांत हो जावेगी। इसलिये भक्ति अनुसार प्रति दिन भोजन दान अवश्य करना चाहिये, लोभ कषाय जब तक रहता है मन मैला रहता है। इसको शुचि करने के लिये दान देना त्याग करना आवश्यक है—

एक सेठ था कि एक जोड़ी बैल सोने का तैयार करवाकर नल घर में रख दिया था घोड़े भी सोने के बनवाकर रखा था। लोभी था। एक दिन इन्द्र आकर किवाड़े खटखटाये सेठ जी से कहा कि मैं देव हूँ सेठ देव का नाम सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ देव भीतर जाकर बैठगया और बोला जो कुछ मांगना हो मांग लो सेठ शशपंज में पड़ गया। क्या मांगू सोना मांगना तो ठीक नहीं बहुत बिचार के बाद सेठ ने कहा कि देव मैं जिसे छू लूँ सब सोना बन जाय, देव ने कहा एवमस्तु अब सेठ जी जिस चीज को छूते हैं। सभी सोना बन जाती है इस तरह सेठ जी अब आनन्द मग्न हो रहे हैं समय अधिक हो गया है भोजन की भी सुधि नहीं रही, निदान बड़ी देर के बाद स्नान करने गये। सामने पानी था। उसमें हाथ लगाते ही सोना बन गया पुत्र से कहा पानी ऊपर से छोड़ो पानी शरीर पर पड़ते ही सोना हो गया खाने के लिये वस्तु आई उसको जैसे ही छुवा सोना हो गया सेठ जी ने कहा कि अब तुम लोग दूर से मेरे मुख में छोड़ दो दूर से छोड़ने पर भी मुख का स्पर्श होते ही आहार सोना बन गया उस समय देव ने आकर पूछा कि सेठ जी कहिये अब क्या इच्छा है सेठ जी ने कहा कि हमें सोना नहीं चाहिये अपना वरदान वापस ले लीजिये इससे तो हम पहिले ही अच्छे थे जो आधी रोटी खा तो लेते थे अब सब सोना ही सोना है क्या खाऊँ क्या पियूं मैं तो मरा जा रहा हूं मुझे अब कुछ न चाहिए कहने का प्रयोजन यह है यदि हर समय सोना ही सोना मिलने लगे तो किस काम आवेगा उसे तो त्याग करना ही पड़ेगा, अतएव सदैव त्याग करते रहना श्रेयस्कर है, जब यमराज आ जायगा तो जितनी परवस्तुओं से सम्पर्क कर रखा है जबर-दस्ती छुड़ाकर पकड़ ले जायगा तो सिवाय रोने

के कुछ नहीं कर सकता है इसलिये पहिले ही से त्याग करने का अभ्यास करो तो अन्त में सब कुछ त्याग करने में कोई कष्ट नहीं होगा। अन्यथा कष्ट का ठिकाना नहीं रहेगा फिर रोने चिल्लाने से कुछ होगा भी नहीं, एक बागीचे में बहुत से फल लगे थे, एक सेठ वहां पहुँचकर कुछ फल तोड़ लिए माली से छिपाकर माली ने कहा कि सेठ जी क्या कर रहें हो, सेठ जी ने कहा कि नहीं तो मैंने कोई फल नहीं तोड़ा है। माली ने कहा कपड़े लत्ते उतारों मैं तल्लाशी लूँगा तल्लाशी लेने पर जेब में फल निकले माली ने कहा इसका दण्ड भोगना होगा, संसार रूपी बगीचा में तुम आये हो तो परन्तु यह तुम्हारा बगीचा नहीं है इसमें फलों को देख सकते हो खा सकते हो परन्तु यहां से लेजा नहीं सकते हो, परवस्तु को कैसे लेजा सकते हो पहिले जो त्याग हो तब तो यहाँ उसका उपभोग कर सकते हो यहां की चीज सम्पूर्ण यहीं छोड़कर त्याग कर अन्त में जाना ही पड़ेगा। परन्तु तृष्णा वश होकर यह जीव सबको अपना मान कर इनमें रत हो रहा है परन्तु यहाँ एक भी चीज अपनी नहीं है अकबर बादशाह ने कह रखा था जब मैं मर जाऊँ तो मेरे दोनों हाथ खाली निकाल देना। और मुंह भी खाली खुला छोड़ देना। उसका अभिप्राय यह था कि जिस मुख में नाना प्रकार का भोजन था वह आज खाली है लाखों का खजाना भी यहीं पड़ा है दोनों हाथ खाली है। सम्पूर्ण धन वैभव राज, पाठ फौज सिपाही परिवार कोई भी साथ नहीं जाता है सब यहीं पड़ा रह जाता है इस लिये त्याग करना पहिले से ही सीखना चाहिये।

क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि का त्याग करना चाहिये। बिना इन कषायों के त्याग किये बाहेर धनादि का त्याग नहीं बन सकता है। जीव हमेशा परवस्तु में मूर्छित रहता है। श्रीमंत लाखों होने पर अधिक की लालसा करता है। गरीब आदमी के पास कुछ है नहीं वह मिलने की लालसा करता है। दोनों ही लालसा के वशीभूत हैं लालसा मिटाने के लिये दान त्याग करना चाहिये। इससे लालसा मिटती है आहार दान देने से भूखे मनुष्य की भूख मिट जाती है, ज्ञान दान देने की इच्छा से शास्त्र दान देना चाहिये ज्ञान दानके लिये पाठशाला, वाचनालय स्थापित करवा देना चाहिये। रोगी दुःखी के लिये औषधि देना चाहिये। शरीर रोगी होने से धर्म साधन नहीं हो सकता है इस लिये रोगी को हमेशा औषधि दान देना चाहिये कृष्ण जी ने एक समय एक साधु के शरीर में रोग देखकर वैद्य को बुलाकर औषधि दान दिया था। आहार दान के समय औषधि देते थे। अठारह दिनों तक उन्होंने यह दान दिया था जिसके प्रभाव से उनको तीर्थंकर प्रकृति का बंध होगया अभय दानसे मनुष्य को निर्भयपना मिलता है। एक ग्वाल ने एक साधु को शास्त्र दिया था शास्त्राध्ययन साधु ने किया इसके प्रभाव से कुंदकुंद स्वामी विशेष ज्ञान को प्राप्त किया चारों प्रकार का दान स्वशक्तनुसार प्रति दिन करते रहना चाहिये इससे जीवका कल्याण होता है। आत्मा के साथ कर्मरूपी शत्रु लगा है जिससे मलीन हो रहा है उसको पवित्र करने के लिये रागद्वेष का त्याग करो जिससे कर्म शत्रु दूर हो जावे। ज्ञानामृत अन्नका दान करो जिस

आत्म कल्याण हो, अपनी आत्मा अतृप्त हैं इस को तृप्त करने के लिये ज्ञानामृत अन्न का दान करो तो यह सुमार्ग पर लग जावे। शरीर को तृप्त करने के लिये तो भोजन देते हो परन्तु ब्रह्म जो आत्मा है उसे ज्ञानामृत देकर संतोषित करो बार २ अपनी आत्मा को उपदेश देकर धैर्य बंधावो। ज्ञान दान देकर उसे सबल बनाओ। आत्मा जड़ वस्तु के संयोग से दुःखी हो रहा है किन्तु आत्मा अमूर्तीक है यह न कभी मरता है न सड़ता है न गलता है यह अनश्वर है ऐसी आस्था रखो धर्य धारण करो। आत्मा न तो बुड्ढा है न रोगी है न शोकी है किन्तु भ्रम से उसे रोगी शोकी मान रहे हैं इस भ्रम को दूर करके अपनी आत्माको निर्भय दान देकर अभय प्राप्त करो। दान देकर उसे प्रकाशित नहीं करना चाहिये गुप्त दान सदैव करते रहना चाहिये। धर्मात्मा पुरुष दान देकर कभी अपने मुख से नहीं कहता है। आम में बौर बहुत निकलते हैं सब उसे देखते हैं परन्तु धीरे २ वह सब गिर जाते हैं पीछे छोटी २ आमकी अमिया निकलती हैं परन्तु कटहल का फूल किसी को नहीं दिखाई देता है अर्थात् कटहल किसी से प्रकाशित नहीं करता है कि मैं फूला हूँ किन्तु बड़े २ भारी फलों को देता है ऐसे ही दानी पुरुष कभी अपनी प्रशंसा नहीं करता है। अनुग्रहार्थं स्वस्यानि सर्योदानम् अपने और पर के कल्याण के लिये अनुग्रह के लिये जो दिया जाता है उसे दान कहते हैं दान देकर उसे भूल जाना चाहिये दान देकर उसका ढिंढोरा पीटना दान के फल को कम करना है। दान का महात्म्य अचिंत है उसका फल भी अचिंत है परन्तु उसको अपनी मान बड़ाई के लिये प्रकाशित कर देना उसके महत्व और फल को कम करना है दान करने वाला किसी पर कोई उपकार नहीं करता है। वरन स्वयम अपना उपकार करता है। और दान लेने वाले को अपना परम उपकारी मानता है। तृष्णा लगी है पुण्य कैसे मिल सकता है। मंदिर में बैठे हैं भाव दूकान जाने का लगा हुआ है तो भला पुण्य कैसे मिल सकता है एक दिन भी तृष्णा नहीं कम कर सके तो बेड़ा पार कैसे लगेगा। एक दिन भी त्याग भावना मन पूर्वक करो तो पुन्य प्राप्त कर सकोगे, सांसारिक जंजाल में फंसकर धर्म का त्याग तो प्रायः सभी करते रहते हैं परन्तु यह भावना ठीक नहीं है भगवान का धर्म त्याग करने से सुख कैसे प्राप्त कर सकता है। बाहेरी वस्तुओं को संसर्ग, लालसा त्याग करके धर्म धारण करो और चारो प्रकार का त्याग का अभ्यास करो तो सुख प्राप्त कर सकोगे। दान पुण्य करने से लक्ष्मी नहीं घटती है जैसे कूप से जितना २ पानी निकाला जाता है कभी घटता नहीं है। बढ़ता ही रहता है। धर्म घटाये से धन घटता है धन घटे से मन घट जाता है मन घटने से सभी घट जाता है। और घटते २ सब घट जाता है पुन्य घटे से लक्ष्मी विघटित हो जाती है। परन्तु दान देने से लक्ष्मी नहीं घटती है। आपको निरंतर दान देने का श्रद्धान रखना महा सुखदाई है।

———

धर्मपत्नी ला० सन्तलाल जी जैन मोहना निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख २४-६-५२ दिन गुरुवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में उत्तम आकिंचन धर्म का विवेचन करते हुये कहा कि—
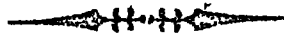
चतुर्विंशति संख्यातोयः परिग्रह भेदतः ।
तस्य संख्या प्रकर्तव्या तृष्णारहित चेतसाः ॥

बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से परिग्रह चौबीस प्रकार की है उसका तृष्णा रहित हो कर त्याग कर देना आकिंचन धर्म है । किंचित मात्र भी मन में तृष्णा नहीं रखना इसका नाम अपरिग्रह अथवा आकिंचन्य धर्म है जहां तृष्णा है वहां परिग्रह है मन में तृष्णा नहीं है तो परिग्रह होते भी कर्म बन्ध का कारण नहीं है । जिनके पास कुछ परिग्रह नहीं है किन्तु मन में लालसा तृष्णा लगी रहती है तो वह परिग्रही है यह धर्म आत्मा का धर्म है जो तृष्णा रहित है । वह सुखी है जो तृष्णा सहित है वह दुःखी है । इसी तृष्णा के कारण दश लक्षण धर्म के दिनों में भी दूकानदारी बन्द नहीं कर सकता है । अपना ज्ञानदर्शन के बिना और संसारमें जितनी वस्तुयें हैं वह हमारी नहीं हैं तृष्णा त्यागी को प्रेम संसार से घट जाता है तृष्णा वाले को चाहे जितना धन सम्पदा मिले पर वह कभी तृप्त नहीं होता है । राजा के घोड़े को अनेक प्रकार के आभूषण पहिनाकर शृँगारित किया जाता है परन्तु उसको वह बोझा ही समझता है उससे वह कभी प्रसन्न नहीं होता है वह रत्न मोती कमखाव इत्यादि से वह सुखी नहीं होता है । जिनके पास धन सम्पदा बहुत है । परन्तु वह इससे उदासीन तृष्धा रहित रहते हैं उन्हें कर्म बन्धन ही होता है तृष्णा का अर्थ है । लालसा इससे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मायाचारी इत्यादि अनेक प्रकार के दोष करता रहता है । लेकिन जब ममता कम कर देता है तो सुखी रहता है जिनके पास धन सम्पदा है वह अकेला कभी घर नहीं छोड़ता है जाते समय ताला बार बार खटखटाकर चलता है फिर भी मंदिर में बैठे २ चित्त घर में ही लगा रहता है परिग्रह रूपी पिशाच जिनको लगा है वह हमेशा बकवाद किया करता है । कानों से उपदेश सुनने पर भी कहता है कि मैंने नहीं सुना किंतु अपने मतलब की बात को तत्काल

समझाने लगी कि आप हम से और अपने सब सेना खजाना इत्यादि से मोह छोड़ दीजिये। और चारों प्रकार का आहार त्याग कर दीजिये मैं चारों प्रकार का आहार त्याग करती हूँ। रानियां इसके प्रभव से मर कर स्वर्ग गईं, किंतु राजा को अन्त समय में अपने खजाना और राज्य की सुधि आ गई इसलिये राजा मर कर सर्प हो गया पुत्र को मालूम हुआ कि मेरे पिता माता सब मर गये तो वे एक साधु के पास जा कर पूछा कि मेरे माता पिता मर कर कहाँ जन्म धारण किया मुनिराज ने सुनकर कहा कि चारों रानियां तो धर्म के प्रसाद से स्वर्ग गईं। किंतु तुम्हारे पिता की तृष्णा नहीं छूटी इसलिये उस गुफा में भयानक सर्प हो गया है। राज पुत्र ने साधु महाराज से कहा कि महराज कोई ऐसी बात बतलाईये जिससे मेरे पिता को कल्याण मार्ग मिल जाये तो ठीक है नहीं तो उन्हें बड़ा कष्ट होता रहेगा मुनि महराज ने कहा कि तुम जाकर समझाओ तो उसे जाति स्मरण हो जायगा और वह सुधर जायगा, तब राज पुत्र अपने पिता जो सर्प हो गया था उसके पास गया और कहा कि हे पिता तुम तो अमृतमय अन्न का भोजन करते थे आज चूहों को पकड़कर खा रहे हो, अनेक प्रकार के सुन्दर २ वस्त्रों को धारण करते थे, इसलिये धर्म धारण करके अपना कल्याण करो परन्तु सर्प को कुछ न अच्छा लगा राजा की स्त्रियां जो स्वर्ग में उत्पन्न हुई थी उन सबों ने भी आकर समझाया परन्तु तो भी उसे कुछ ज्ञान नहीं हुआ राज पुत्र ने फिर साधु महाराज से कहा कि आप स्वयम् चलिये तभी यह कार्य हो सकता है और मेरे पिता को दुःख से छुड़ाओ। मुनि महाराज अपने सात सौ शिष्यों सहित उस स्थान पर ले गये और पांच दिनों तक बराबर उपदेश दिया, किंतु प्रभाव न पड़ा फिर भी गुरु महाराज ने कहा कि अरे सर्प राज तुमको तृष्णा लगी रहने के कारण यह अधमगति तुम्हें मिली है। अब तुम्हारी आयु केवल तीन दिन की रह गई है अब तुम सल्लेखना धारण करो चारों प्रकार का आहार त्याग कर दो तब तुम्हारा कल्याण हो जायगा, सल्लेखना ग्रहण कर लिया चारों प्रकार का आहार भी त्याग दिया, किन्तु मरण समय में विद्याधर

का उपसर्ग स्मरण हो आया और उससे बदला लेने की ठान ली, इससे वह मर कर व्यन्तर देव हो गया एक दिन वह विद्याधर दम्पति कहीं जा रहे थे। पूर्व शत्रुता के कारण उन दोनों को समुद्र में लेजाकर डुबा दिया—और स्वयम् वह व्यन्तर देव अपने स्थान पर चला गया। और समयानुसार वहां से चयकर मनुष्य जन्म धारण किया और किसी महात्मा के सदुपदेश से उसने व्रत धारण कर लिया, धीरे २ वह व्रतो पवास करता हुआ रहने लगा, और फिर कुछ दिनों में वह दिगम्बर मुनि हो गया और अनेक प्रकार के तप करता हुआ किसी दिन एक खेत में योग धारण करके खड़ा हो गया वर्षात समय में कोई एक कृषक खेत जोतने के लिये गया तो देखा कि एक नंगे साधु खड़े हैं उनसे कहा कि आप क्यों खड़े हैं जल्दी चले जाइये अपनी स्त्री को रोटी लाने के लिये भेजा था वह रोटी लेकर आई परन्तु उधर ध्यान नहीं दिया क्रोध में कुछ ख्याल नहीं रखा, भूख के मारे परेशान हो गया किसी दूसरे खेत में चला गया वहां जाकर अपनी स्त्री को मारा पीटा, और फिर खेत में आकर साधु को मारा साधु ने शांति धारण किया विचारने लगा कि मेरी कर्मों की निर्जरा हो रही है साधु ने कहा कि आप तो मेरे बड़े उपकारी हैं कृषक ने कहा कि अच्छा नहीं हटते हो तो मैं तुम्हें जला कर मार डालूँगा घर से कपड़े लत्ते तेल लाकर मुनि के ऊपर तेल इत्यादि छोड़ दिया कपड़े ओढ़ा दिया और अग्नि लगा दी मुनि महाराजको परीषह सहन करने के कारण शुक्ल ध्यानकी प्राप्ति हो गई केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया तब देव-लोग पूजन करने के लिये आये उनको देखकर उसको बड़ी लज्जाबोध हुई और मुनिराज के समीप जा कर अपने वैर का कारण पूछा और दीक्षा लेकर साधु बन गया। देखो किंचित शल्य रहने के कारण कितने समय तक अनेक प्रकार के दुःख संकट भोगना पड़ा। अनादिकाल से इस जीव को तृष्णा लगी हुई है धनी को धन बढ़ाने की और गरीब को धन पैदा करने की तृष्णा लगी रहने के कारण दोनों दुःखी देखे जाते हैं। चाहे जिससे पूछो कोई अपने को सुखी नहीं बतलाता है सभी अपनी २ तृष्णा में लगे रहने के कारण दुःखी ही हैं एक के पीछे दूसरी चिंता सदैव लगी रहती है। चिंता के पीछे भोजन भी नहीं रुचता है एक पेट के लिये नीं चानि नीच काम किया करता है। मायाचारी कपट इत्यादि अनेक पापों को करता है। यह संसार समुद्र में डुबाने वाले हैं। दुर्जनों को संसर्ग से लड़ाई झगड़ा प्राप्त होता है गुरु की संसर्ग से ज्ञान की प्राप्ति होती है इस लिये सदैव सद्गुरुओं की संगति से लाभ उठाना चाहिये। तृष्णावान मनुष्य की रुचि धर्म में नहीं रहजाती है। तृष्णावश ही मनुष्य मरकर सर्पादि नीच योनियों में चला जाता है। आचार्यने चोर को पकड़ने के लिये एक युक्ति बतलाई है संसारी प्राणी रात दिन चोरी करता है किसी तरह से इनको कुछ दंड मिले इस लिये यह दस दिनतक कुछ दंड भोगैं इस लिये दस दिनों तक कैदखाने में छोड़ दिया है कि इन दस दिनों में धर्म दण्ड धारण करके अपनी चोरी करने की आदत छोड़ देवै परन्तु फिर भी कुछ ख्याल नहीं करता है। और तृष्णा में फंसा ही रहता है। एक ब्राह्मण अपने पुत्र के व्याह के लिये कुछ रुपिया इकट्ठा

किया और कमी रहने के कारण राजा के पास गया। और कहा कि दस रु० आप मुझे दे दीजिये तो मैं अपने पुत्रकी शादी करलूँ राजा ने कहा दस क्या मांगता है अधिक मांगो ब्राह्मणने क्रमशः पचास, सौ, दो, सौ, पांच सौ, हजार, दो हजार, पांच हजार, मांगने लगा। फिर राजा ने कहा कि विचार कर लो और मांगो तक ब्राह्मण ने सोचा कि मैं दस रु० मांगने आया था और अब पांच हजार तक पहुँच गया मालूम होता है कि इस तृष्णाका अन्त कहीं नहीं होगा इसलिये राजा से कहा कि अब मैं कुछ नहीं लूगा। अपने घर चला गया। तृष्णा को छोड़ कर धर्म ध्यान करने लगा। एक बुड्ढी स्त्री कुछ रु० अपने सिर-हाने रखकर रोज सोया करती थी और १ बर्तन रखती थी जिससे रात भर बजाया करती थी। जिससे चोर इत्यादि उसके पास कोई नहीं आता था। बुड्ढी मरणासन्न जब होगई तो एक मनुष्य ने सोचा कि इसके पास कुछ द्रव्य है। यदि इसकी सेवा करूँ तो वह द्रव्य मुझे मिल जायगा। किन्तु बहुत दिनों तक सेवा किया न बुड्ढी मरी और न पैसा मिला एक दिन बुड्ढी ने कहा कि बेटा थोड़ा पानी लेआवो मैं पियूँगी। जब वह पानी लेने गया तो उसने अपने पैसों को मुखमें डाल लिया मुख बन्द हो गया और मर गई पानी लेकर जब वह मनुष्य आया तो पहिले पैसा लेलिया फिर पीछे उसे उठा कर जंगल में फेंक आया चील कौवे उसे उठाकर खा गये। कहने का प्रयोजन है कि तृष्णा के पीछे मनुष्य जन्म बिगड़ जाता है यही संसार परिभ्रमणका कारण है तृष्णा के वशीभूत धन कमाना है। धन चोर लेजाते हैं धन के आर्तध्यान में मर कर नरक चला जाता है।

आचर्य कहते हैं:- जो अपना कल्याण चाहते हो तो इस तृष्णा डाकिनी को त्याग करो आर्किचन्य आत्मा का धर्म है इस की भावना सदैव करना चाहिये। जो तृष्णावान है वह किसी पर विश्वास नहीं करता है। धर्म संबंध में कहीं कुछ देना न पड़े इस लिये उससे दूर २ रहता है। पास नहीं आता है साधु भी आकर लौट जाते हैं। परन्तु दान धर्म करने की इच्छा नहीं होती है। तृष्णावान को कभी सुख नहीं होता है उसे नींद नहीं आती हैं सांसारिक पदार्थों की चिंता उसे लगी ही रहती है। उसे कभी शांति नहीं मिलती। एक नाई किसी राजा के यहां जा रहा था रास्ते में लक्ष्मी ने कहा कि मैं आऊँ मैं आऊँ नाईने घर जाकर सलाह किया। और स्वीकारता देदी। और उस स्थान पर आकर ५-७ घड़े जो द्रव्य से भरे थे उठाकर घर लेगया। एक घड़ा कुछ खाली था उसे भरने की चिंता करने लगा। जो कुछ मिलता उसे भरने के लिये उस में छोड़ देता था। परन्तु वह घड़ा कभी नहीं भरा खाली ही रहा जो सुख से आधी रोटी खाता था परन्तु अब वह रात्रि दिन इसी चिंता में रहता है कि किसी तरह से घड़ा भर जावे। चिंतित देख कर राजा ने पूछा आजकल चिंतातुर क्यों हो नाई ने उत्तर दिया आजकल परिवार बहुत बढ़ गया है इस लिये खाने पीने की चिंता रहती है। राजाने द्रव्य दिया प्रबंध यथोचित कर दिया परन्तु फिर भी उस की चिंता नहीं गई। राजा ने तब सोच कर कहा कि एक राक्षस उस जगह रहता है उस के पास ५-७ घड़े द्रव्य है उसे तो तुम ने नहीं लेलिया है। नाई ने कहा कि हाँ महाराज यह द्रव्य मैं ले आया हूँ राजा ने कहा तत्काल इसे वहीं फेंक आवो नहीं तो इसी चिंतामें मर जावोगे निदान वह नाई वह समस्त घड़े फेंक आया और अब चिंता रहित होकर सुख से रहने लगा।

माखनलाल अमृतलाल जी जैन दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख २५-९-५३ दिनशुक्रवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म का विवेचन करते हुये कहा कि—

नवधा सर्वदा पाल्यं शील संतोष धारितिः ।
भेदा भेदेन संयुक्त सद्गुरूणां प्रसादतः ॥

शील और संतोष धारण करने वाले मनुष्यों को सर्वदा ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये ब्रह्म-जाकानि ब्राह्मणः अपने आत्मा स्वरूप को जानना और उसमें रमण करना इसका नाम ब्रह्मचर्य है और इन्हीं को ब्राह्मण कहते हैं और इनके भीतर सर्व साधु गर्भित हैं ब्रह्मचर्य के दो भेद हैं। एक व्यवहार ब्रह्मचर्य, दूसरा अन्तरङ्ग ब्रह्मचर्य अपने से छोटी और बड़ी स्त्रियों को पुत्री माता के समान मानना और बराबर वाली स्त्रीको बहिन मानना यह व्यवहार ब्रह्मचर्य है, मनुष्य के भीतर एक शील ही शोभा को प्राप्त कराता है, बाहर यदि कोईमाल भेजाजाता है उस पर सील न हो तो उसे प्रबन्धक नहीं लेते हैं इसी तरह मनुष्य के भीतर सदैव शील रहना चाहिये जिसकी चीज है वही उसका मालिक बन सकता है दूसरे की चीज का अधिकारी दूसरा ही हो सकता है तीसरा नहीं। सीता जी को रावण ने छः महीने अपने घर में रखा था परन्तु सीता जी परम शीलवती थी जब वे अयोध्या आई तो जनता अपवाद करने लगी एक दिन एक धोबिन कहीं रास्ते में कुछ देर तक अटक गई थी घर आने पर धोबी ने पूछा कि इतनी देर कहां रही उसने उत्तर दिया कि सीता जी छः महीना रावण के घर रही परन्तु किसी ने कुछ नहीं कहा मैं तो केवल कुछ घण्टे ही रही इस तरह सीता जी का अपवाद नगर भर में फैल गया और राजा रामचन्द्र जी को यह बात मालूम पड़ी तो उन्होंने सीताजी को देशनिकाला करके जंगल में डलवा दिया सीता जी गर्भिणी थी सीता जी को जब मालूम हुआ कि मुझे जँगल में दोष लगाकर निकाल दिया गया है तो उसने कृतांतवक्र सेनापति से कहा कि मेरा एक संदेशा राजा रामचन्द्र से कह देना कि जिस तरह से मुझे लोगों के कहने से छोड़ दिया है धर्म को न छोड़ दें, थोड़े दिनों में सीता जी के दो पुत्र उत्पन्न हुये दोनों बड़े बलशाली सुन्दर

आकृति वाले थे, संस्कार वश ब्रह्मचर्य धारण गुरू के निकट विद्या अध्ययन करने लगे और सम्पूर्ण विद्याओं में पारंगत होगये, आज कल बच्चों को ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याध्ययन नहीं कराया जाता है यही कारण कि ब्रह्मचर्य के बिना संस्कार हीन होकर विद्या विहीन हो जाता है ब्रह्मचर्य के भीतर इतनी ताकत थी कि तीन तीन मन का पत्थर उठाकर अपने बाहुबल से कोठे पर फेंक देते थे आजकल इतना बल किसी में नहीं दिखाई देता है यह ब्रह्मचर्य के अभाव का ही कारण है जिसके भीतर ब्रह्मचर्य कुछ मौजूद है वह कहीं किसी से रोका नहीं जा सकता है अकलङ्क और निष्कलङ्क ने ब्रह्मचर्य धारण करके ही धर्मोद्योत किया था भगवान नेमनाथ ने अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करके ही मोक्ष प्राप्त किया था भगवान महावीर ने भी व्याह नहीं किया था ब्रह्मचर्य धारण करके ही संसार में पशु बलि को दूर भगा दिया, अन्जना सती को घर से निकाल दिया गया परन्तु उसने शील कर्म को कभी नहीं छोड़ा इसलिये उसके गर्भ से हनुमान जी का जन्म हुआ जो कि अत्यधिक बलशाली थे आज कल लड़कों की माता कहती हैं कि जल्दी हमारे लड़के का व्याह हो जाय और छोटी सा बहू आ जाय उससे एक पुत्र उत्पन्न हो जाय विचार करो ऐसी छोटी अवस्था में व्याह करके संसार यात्रा कैसे निर्वाह कर सकता है ब्रह्मचर्य की रक्षा न करने से कमजोरी के कारण बहू को सन्तान नहीं हुई तो पीर पैगम्बर, सन्यासी, बाबा के पास जाकर पूछते हैं कि हमारी बहू को बच्चा क्यों नहीं होता है ठगिया बाबा जी अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर धन, सम्पदा और इज्जत भी ले लेते हैं परन्तु कोई सफलता नहीं मिलती है तब हाय २ करके रोते हैं और अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं अतएव ब्रह्मचर्य की रक्षा सदैव करना चाहिये एक बहिन अपने भाइयों के आगमन में आरती उतारने के लिये छत पर खड़ी थी सुन्दर शरीर वाली दोनों भाइयों की नजर उस पर पड़ी एक कहता मेरे लिये आरती लाई दूसरा कहता कि मेरे लिये लाई है निदान झगड़ा बढ़ते बढ़ते शस्त्र उठा लिया तब एक वृद्ध मन्त्री ने कहा कि झगड़ा क्या है दोनों भाइयों ने कहा कि यह आरती मेरे लिये लाई है दूसरे ने कहा कि यह मेरे लिये आई है मन्त्री ने सुनकर कहा कि यह तो विचार करो कि यह लड़की कौन है यह तुम्हारी बहिन है तब दोनों ने शस्त्र फेंक दिया और कहा कि मैं जाकर जंगल में तपस्या करूँगा आत्म कल्याण करूँगा माता पिता ने आकर कहा कि यह आपकी बहिन है इससे कोई गलती हो गई हो तो क्षमा करो दोनों भाइयों ने कहा कि दोष मेरा है हमारी नियत बिगड़ गई इसलिये हमलोग जंगल में जाकर तप धारण करेंगे जंगल में जाकर तप धारण कर लिया जंगल में एक राक्षस पूर्व जन्म का वैरी अनेक प्रकार के उपसर्ग करने लगा रात्रि में अनेक प्रकार के उपद्रव करता था, रामचन्द्र और लक्ष्मण जी उस स्थान पर पहुँचे सब लोग डर के मारे भागे जा रहे थे उनको देखकर पूछा कि क्या कारण है कि सब लोग भागे जा रहे हो सबों ने कहा कि एक राक्षस बहुत उपद्रव करता है यहां रात्रि में कोई रह नहीं सकता है रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी रात्रि में वहीं रह कर उस राक्षस के उपद्रव को दूर किया मुनि उपसर्ग को दूर करके सीता जी ने आहार दान

दिया देखो ब्रह्मचर्य का प्रताप कि यक्ष राक्षस भी ब्रह्मचारी के सामने न टिक सके भाग गये आज कल यह बात कहां देखने में आती है। काल का दोष और संस्कार विहीन होने के कारण बालकों को ब्रह्मचर्य व्रत नहीं दिया जाता है इसी से वे घर के रहते हैं न बाहर के उनको किसी काम में सफलता नहीं मिलती है एक सेठानी किसी से फँसी थी अपने पति को मारकर कन्धे पर लादकर कहीं फेंकने जारही थी किसी देव ने यह हाल देखकर उस स्त्री के कन्धे पर कील दी अब वह स्त्री लाचार होगई पति देव की लाश फेंक न सकी देव ने कहा कि यदि तुम गांव भर में यह हाल प्रकट करो कि मैंने ही अपने पति को मारा है तब मैं छोड़ दूंगा निदान उस स्त्री ने सब नगर में कहा कि मैंने ही कुशील वश अपने पति को मारा है तब वह लाश नीचे गिर गई स्त्री का तिरस्कार सब लोगों ने किया, यदि उसे ब्रह्मचर्य की शिक्षा मिली होती तो ऐसा अनर्थ न करती कहने का प्रयोजन यह है कि आज कल की पुत्र पुत्रियां ब्रह्मचर्य की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देती है इसलिये अनेक प्रकार के कुकर्म कर बैठती हैं। धर्म विहीन शिक्षा और कुसंस्कार से हमारे बाल बच्चों का जीवन बर्बाद होरहा है हमारे ऊपर बुरे संस्कारों के कारण हमारी भावना बुरी हो रही है तब हमारी भावना कैसे अच्छी हो सकती है

एक साधु के दो शिष्य थे, कोई क्रोध को जीता बतलाता था और कोई मान को जीता बतलाता था कोई ब्रह्मचारी बननेका दावा करता था। गुरु ने उनकी परीक्षा करने के लिये कहा कि इस गांव में एक पिंगला वेश्या रहती है उस के यहां जाकर चातुर्मास करो। एक को कहा कि जंगल में जाकर सिंह के स्थान में जाकर वास करो और उसे शांत करो एक को पिंगला वेश्या के यहां जाने वाले शिष्य ने जाकर पिंगला के दरवाजे पर ठहर गया वेश्या ने भीतर बुलाया शिष्य का शरीर बड़ा सुन्दर था देखकर कहा कि आप कैसे पधारे हैं शिष्य ने कहा कि मैं गुरु की आज्ञा से यहां चातुर्मास करूँगा। पिंगला सुन्दराकृति देखकर बहुत प्रसन्न हुई और कहा अवश्य रहिये शिष्य ने रहकर अनेक प्रकार के उपदेश दिये वह बड़े ध्यान से सुनती थी प्रत्येक वाक्य में पिंगला को माता शब्द से संबोधित करता था पिंगला शिष्यकी सुन्दराकृतिपर मोहित होगई और उससे संभोग याचना की शिष्य ने कहा कि घबराओ नहीं मैं जाते समय तेरी इच्छा पूरी करके जाऊँगा। पिंगला साथ ही सोती थी शिष्य ब्रह्मचारी था कैसे ही विचलित नहीं हुआ तब पिंगला ने शिष्य की लंगोटी खोल डाली लंगोटी खुल जाने पर उसने लंगोटी फेंक दिया और वेश्या को समझाने लगा कि अरे इस शरीर पर तू इतना मोह करती है यह एक दिन नष्ट हो जाने वाला है भगवान से स्नेह कर जो कभी नष्ट होने वाला नहीं है मेरा शरीर तो किसी काम का नहीं है। इससे वेश्या को कुछ ज्ञान उत्पन्न हो गया और वह सुधर गई शिष्य गुरु के पास गया और सर्व वृतांत कह सुनाया गुरुजी बहुत प्रसन्न हुये। और शिष्य की बड़ी प्रशंसा किया दूसरे चातुर्मास में फिर शिष्यको पिंगला वेश्या के यहाँ गुरूने भेजा अबकी दफे शिष्य वेश्यापर मोहित हो गया। और अनेक प्रकार के हाव भावों में मन उसका फँस गया। शिष्य की इच्छा वेश्या

के साथ में रमण करने की हो गई किन्तु वेश्या नहीं चाहती थी बराबर शिष्य की बात टालती रही और कहती कि जब आप जाने लगेंगे तो मैं आपकी इच्छा पूर्तिकर दूंगी जाने के समय शिष्य ने कहा कि अब तो मेरी कामना पूर्ण करो वेश्या ने कहा कि मैं तो इस समय ऋतु से हूं और देखो यह शरीर नंगा है जो चाहे लेलो। किन्तु इसे लेकर के क्या करोगे भगवान से स्नेह करो तो तुम्हारी इच्छा पूर्ति हो सकती है। यह निंद्य शरीर किस काम का है। इत्यादि बातें सुनकर शिष्य का मन मोहित हुआ था वह स्नेह से हट गया और भगवद्भक्ति में पक्का हो गया। और ब्रह्मचर्य में पूर्ण होकर जप, तप, ध्यान करने के लिये गुरू के पास चला गया। और अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर सकने के कारण अपने को भाग्यशाली मानने लगा। और तपस्या करने लगा अन्तमें सद्गति को प्राप्त किया। आजकल माता पिताओं की सेवा करने के मौका आने पर लड़के कहते हैं कि पिता ने तो अपनी इच्छा पूर्तिके लिये व्याह किया था। मेरे लिये क्या किया था इस तरह वह माता पिता की सेवा से भी वंचित रह जाते हैं। ऐसे संसकार हीन से क्या आशा की जा सकती है अतएव बालकों का ब्रह्मचर्य संस्कार अवश्य करा देना चाहिये। और विद्याध्ययन् पर्यंत उसे ब्रह्मचारी रहना चाहिये। तभी यथोचित विद्याध्ययन करके वह अपना और संसार का उपकार कर सकता है। बिना ब्रह्मचर्य धारण किये संसार में कुछ नहीं कर सकता है। न तो वह कोई व्रतनियम धारण कर सकता है और न अपनी रक्षा कर सकता है। संसार में स्थान २ पर उस का तिरस्कार होता है इस लिये ब्रह्मचर्य धारण करना महान तप है और बहुत ही जरूरी है। स्त्री, पुरुषों को ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके संसार यात्रा को सुखी बनाना चाहिये। स्त्री को पतिव्रता और पुरुष को स्वस्त्री संतोषी बनना चाहिये। ऐसे मनुष्यों के ऊपर संसार में कोई विपति नहीं आती है। वह सदैव सुखी बना रहता है।

हमेशा प्राण जाने पर भी ब्रह्मचर्य को नहीं बिगाड़ना चाहिये यह व्रत बड़े धीरवीर साहसी मनुष्यों के धारण करने के योग्य है निर्बल तो इसे धारण ही नहीं कर सकते हैं वह तो इसकी चपेट में आकर तत्काल बिगड़ जाते हैं इसलिये बड़े यत्न से ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये।

धर्मपत्नी ला० जयचन्दलाल जी जैन जरखा निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख २६-९-५३ दिन शनिवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में उत्तम दश धर्मों का संक्षेप में वर्णन करते हुये कहा कि—

उत्तम क्षांतिमार्दवं ब्रह्मचर्य सुलक्षणम् ।
उत्तमंदशधा धर्ममुतमं जिन भाषितं ॥
उत्तमक्षमा-क्षमाशस्त्रकरे यस्य दुर्जनं किं करिष्यति
अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेव प्रशाम्यति ॥

उत्तम क्षमा यदि धारण न किया जावे तो कोई धर्म नहीं हो सकता है जिनके पास क्षमा रूपी शस्त्र है उनका दुर्जन कुछ नहीं कर सकता है। तृण जहां नहीं है ऐसे स्थानमें अग्नि पड़ने से स्वयमेव शांति हो जाती है अग्नि को थोड़ा भी तृण मिल जाय तो उसे जला डालती है।

क्षमा बलम सक्तानां शक्ताना भूषण क्षमा ।
क्षमा वशी कृतिर्लोके क्षमयार्किं न साध्यते ॥

निर्बलों का क्षमा बल है और सबलों का भूषण है। क्षमा से तीनों लोक वशमें किया जा सकता है। ऐसा कोई कार्य नहीं है जो क्षमासे साधन न किया जा सके। क्षमा से मोक्ष तक मिल सकती है। प्रत्येक मनुष्य को इस की भावना भाय करके सभी लोगों के साथमें क्षमा-याचना करना चाहिये। और स्वयम् क्षमा भाव धारण करे। विनय पर किसी से कुछ मांगने पर

नरस्या भरणं रूपं रूपस्या भरणं गुणः ।
गुणस्या भरणं ज्ञानं ज्ञानस्या भरणं क्षमा ॥

मनुष्य की शोभा रूप रूपकी शोभा गुण गुणकी शोभा ज्ञान और ज्ञानकी शोभा क्षमा है दस दिनों तक जो क्षमा की पूजन की है।

क्षमा शत्रौ च मित्रे च यतिना सेव भूषणम् ।
अपराधिषु सत्त्वेषुनृपाणां सैव दूषणम् ॥

यदि तुझे कल्याण करना है तो क्षमा धारण करो क्षमा से मृदुगुण आ जाता है बिना क्षमा के कोमलता नहीं आ सकती है बेतका स्वभाव नरम होता है। उसका चाहे जिधर से झुकाया जाय पर वह टूट नहीं सकता है। किन्तु बांस सख्त होने के कारण झुकाने से टूट जाता है मनुष्य को बेत के समान कोमल रहने से सर्वत्र आदर का पात्र होता है। और निष्ठुर स्वभाव वाला पद २ पर दुःख पाता है। विनय होने से आर्जव गुण आ जाता है कपट करने से अपनी हानि तो होती है दूसरे की भी हानि करने

वाला हो जाता है कपटी का कोई विश्वास नहीं करता है। असली और नकली में भी फर्क है जैसे बांझ स्त्री किसी दूसरे के बच्चे को प्यार करती है परन्तु भीतर उसके सच्चा स्नेह नहीं रहता है उसी प्रकार कपटी मनुष्य कुछ उपकार नहीं कर सकता है, मायानैर्यग्योनस्य मायाचारी को तिर्यंचगति में जाना पड़ता है। जहाँ अनेक प्रकार के दुःख उठाना पड़ते हैं। उत्तम क्षमा धारण करने से ही मनुष्य की वाणी सुन्दर हो सकती है। सत्यता आ सकती है। सत्य धर्म का पालन किया जा सकता है। कहा भी है कि

दानं पूजा तपश्चैव तीर्थं सेवा श्रुतं तथा।
सर्वमेव वृथा तस्य यस्य शुद्धं न मानसम्॥

क्रोध रूपी विष अपने को भी नष्ट कर देता है और दूसरे को भी नष्ट कर देता है। जिन के क्रोध नहीं है उनको भी क्रोधी मनुष्य क्रोध उत्पन्न करा देता है क्रोधी मनुष्य दुबला कमजोर हो जाता है उसे कोई बात सहन नहीं होती है आपे से बाहेर हो जाता है आंखें लाल हो जाती है। दूसरे से लड़ने को हमेशा तैयार रहता है।

जीवोतापकः क्रोधः क्रोधो वैरस्य कारणम्।
दुर्गतेर्नायक क्रोधः क्रोधः समसुखार्गलः॥

जीवों को जलाने वाला क्रोध है वैर का कारण दुर्गति का नायक और स्वर्ग मोक्ष सुख के लिये आर्गल है (जंजीर) क्रोध के कारण दीपायन मुनि ने सम्पूर्ण द्वारिका भस्म कर दी थी और उसी अग्नि में स्वयम् भी जल गये थे। क्रोधी अपने धन, कुल को नाश कर देता है बुद्धि नाश हो जाती है इससे धर्म का नाश भी हो जाता है यहां तक सभी कुछ क्रोध से नाश हो जाता है क्रोध को शांत करने का अभ्यास करना चाहिये।

सुदुष्ट मनसा पूर्वं यत्कर्म समुपार्जितम्।
तद्विपाके भवेदुग्रं को ऽन्येषां क्रोधमुद्व हेत्॥

क्षमावान मनुष्य विचार करता है कि पर भव में मैंने क्रोध किया था इसलिये उसका उदय आकर मेरे को कष्ट लोग दे रहे हैं। जो कुछ करना हो करले ऐसी भावना करके वह क्रोध नहीं करता है क्रोध अपने शरीर के लिये रिपु है। पहले वह अपने ही ऊपर शस्त्राधान कर लेता है। पत्थर फेंकने वाले को कुत्ता नहीं पकड़ता है। किन्तु पत्थर को पकड़ता है मनुष्य अपने क्रोध को नहीं देखता है अपने को दोष नहीं देता है। दूसरे जो निमित्त कारण है उसके ऊपर क्रोध करते हैं। क्षमावान दूसरे जीवों पर दया करने का प्रयत्न करता है सब जीवों को अपना मित्र समझता है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों के प्रति मेरी क्षमा है पहिले जन्मों का हाल मालूम हो जावे तो सभी से रिश्ता निकल सकता है जब सभी रिश्तेदार हैं तो क्रोध किससे किया जावै यह जीव कितने बार किस २ योनि में नहीं गया है। एक सिंह मुनिराज को खाने के लिये आ गया मुनिराज ने देखकर कहा कि मुझे तुम खाने के लिये आये हो तुम कौन थे विचार तो करो तुम तो मारीच के जीव हो बड़ी मुशकिल से तुमने पंचेन्द्रिय पशु हुये हो और आगामी किस भव में जाने वाले हो सो विचार करो मांस खाना उचित नहीं है इतना उपदेश पाकर वह सिंह मुनिराज के चरणों पर नतमस्तक हो गया और अणुव्रत धारण किया और पूर्व कृतकर्मों पर पश्चाताप करने लगा। क्षमा धारण करना श्रेष्ठ है प्रत्येक

जीवपर क्षमा धारण करना चाहिये । अपकारियों पर भी क्षमा धारण करना ठीक है । क्षमा धारी की कीर्ति साधु के समान त्रैलोक्यमें फैल जाती है। एक सेठ क्षमावान थे लोगों ने सोचा इनको क्रोध उत्पन्न करना चाहिये घोषणा की गई कि जो कोई क्रोध उत्पन्न करा देगा उसे इनाम दिया जायगा। तब लोग धोती, डुपट्टा, टोपी सब छीनने लगे परन्तु सेठ जी ने क्रोध नहीं किया। सभी हार गये और सेठ जी हँसते ही रहे जो क्षमावान हैं उनको कभी क्रोध नहीं आता है क्रोध वह जानतो ही नहीं है ।

एकोधर्मः परमश्रेयः क्षमैका शांति रुत्तमा ।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥

क्षमावान को कोई गाली भी दे दे तो वह विचार करता है ।

ददतु ददतु गाली गालिमंतो भवन्ते ।
वय मिहनद भावाद्गा लिदानेऽसमर्थाः ॥
जगति विदित मेनद्दीयते विद्यमानं ।
तनु शशक विषाणं कोऽपिकस्मैददाति ॥

जिसके पास जो कुछ है वह वही दे सकता है ।

जाके ढिग बहु गाली हुइ हैं सोई गाली दई हैं ।
गाली वालो आप कहइहैं हमरो का घटि जइहैं ॥

मेरे पास गाली नहीं है इसलिये मैं गाली कहां से लाऊँ मै गाली नहीं दे सकता हूँ तुम मुझे गाली दे दो किंतु मैं असमर्थ हूं व्यापारी वही चीज बेच सकता है जो उसके पास है, दूसरी वस्तु कहा से लावेगा खरगोश के पास सींग कहां से लिलेगी। गजकुमार मुनिका व्याह के हेतु बारात जा रही थी रास्ते में नेमिनाथ भगवान का समोशरण जा रहा था उसे देखकर गजकुमार मुनि समोशरण में जाकर दीक्षित हो गया स्त्री ने आकर गजकुमार से कहा कि तुम को वैराग्य लेना था तो मेरे साथ व्याह क्यों किया गजकुमार ने कहा कि यदि मैं व्याह नहीं करता तो मेरा उपकार तुम्हारे द्वारा कैसे होता। स्त्री ने अनेक उपद्रव किये सूखी लकड़ी इकट्ठा करके उसमें अग्नि लगादी और कहने लगी अभी खैरियत है घर चलकर भोगों को भोगकर आवो नहीं तो जला दूंगी किन्तु स्त्री ने जला दूंगी किंतु स्त्री ने जला ही दिया गजकुमार मुनि ने क्षमा धारण किया क्रोध नहीं किया उसको अपना उपकारी ही माना इससे उन्हें केवलज्ञान होगया और मोक्ष पदवी प्राप्त किया क्षमा ही स्वर्ग मोक्ष देने वाली है।

हे आत्मन्! शांत रूपी जल से क्रोध रूपी अग्नि निवारण कर उदार मार्दव परिणामों से मान को नियन्त्रित कर माया को निरन्तर आर्जव से दूरकर और लोभ की शांति के लिये निर्लोभता का आश्रय कर चारों कषायों को दूर करना चाहिये । सत्य बचन धारण करना मनुष्य की श्रेष्ठता है प्रामाणिकता है। जो झूठ बोलता है उसका संसार व्यवहार नष्ट हो जाता है। मनुष्य बचन की शोभा सत्य बचन से ही है क्योंकि कहा भी है कि:—

साँच बराबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप ।
जाके हृदय साँच है ताके हृदय आप ॥

सुन्दर सत्य बचनों की सँसार में कमी नहीं है। सत्य बोलने से जिह्वा को कोई कष्ट नहीं होता तालु नहीं छिदता। सत्य बचन बोलना सभी के लिये हितकारी है। जिस पुरुषने संसार में केवल सत्य का आश्रय किया उसे सभी लोग अपना स्वजन मानकर आदर करते हैं।

शौच—जो महाश्रावक पाप से भयभीत हैं उनको मन वच काय की शुद्धता पूर्वक वाह्य शरीरादि और आभ्यन्तर आत्मा को सदा उज्ज्वल रखना चाहिये यही शौच धर्म है। ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करना, ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, रिद्धि तप और शरीर का मद निवारण करना अर्थात् इन आठ मदों को न करना ही शौच धर्म है। जैन शास्त्रों के पठन पाठन करने से शौच धर्म का पालन होता है। और उत्तमोत्तम गुणों के मनन व विचार करने से शौच धर्म उत्पन्न होता है। क्रोध, मान, माया तथा लोभादिक चारों कषायों के नष्ट होने से शौच धर्म होता है। जिसका हृदय वाह्याभ्यन्तर से बिलकुल विशुद्ध है उसे संसार के सभी प्राणी चाहते हैं और वह अपनी पवित्रता के बल से उन्नति के शिखर (चोटी) पर शीघ्रातिशीघ्र पहुँच जाता है।

उत्तम संयम—गणधरादिक देवों ने जगत् में संयम दो प्रकार का बतलाया है। पहला वाह्य संयम और दूसरा आभ्यन्तर संयम। भव्य जीवों को अपने चित्त में दोनों प्रकार का संयम पालन करना चाहिये। चंचल मन की चपलता रोकने से, अत्यन्त कायाक्लेश करने से, व्रतोपवास करने से तथा मन के परिग्रह का त्याग करने से उत्तम संयम होता है। सूत्रों के पठन पाठन करने से संयम होता। संयम धारण करने के लिये इन्द्रादिक देव भी स्वर्ग लोक से मनुष्य पर्याय पाने की इच्छा करते हैं।

उत्तम तप—वाह्य और आभ्यन्तर भेद से तप दो प्रकार का है। धर्म के जानने वाले भव्य पुरुषों को अपनी अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम तप को करना चाहिये। समस्त तत्त्वों का ज्ञान संपादन, पाँचों इन्द्रिय और मन के व्यापार को निग्रह करना, वैराग्य धारण करना, और अन्त में वन में जाकर घोराघोर तपस्या करना तप कहलाता है। ब्रह्मचर्यावस्था में शास्त्र का अध्यन करना तप है। जिस प्रकार गंदगी में पड़ा हुआ स्वर्ण अग्निमें तपाने से चमकने लगता है उसी प्रकार मन बचन काय से तपस्या करने पर मनुष्य देदीप्य मान हो जाता है।

उत्तम त्याग—परलोक चिन्तवन करने वाले भव्य पुरुष को आहार दान, औषधिदान, अभयदान और ज्ञान दान, मुनि, आर्यिका, श्रावक तथा श्राविका इस चतुःसंघ के लिये श्रद्धा पूर्वक देना चाहिये। दानी पुरुष की प्रशंसा जीवन पर्यन्त याचक बृन्द किया करते हैं।

ऋतु वसन्त याचक भयो डारि दीन सब पात।
ताते नव पल्लव भये दिया बृथा नहिं जात॥

उत्तम-आकिंचन्य—समस्त परिग्रह का त्याग करना आकिंचन्य व्रत कहलाता है इसी व्रत के प्रभाव से तीर्थङ्कर परम देव मोक्ष पधारे हैं तथा अन्य समस्त ऋषीश्वर सर्वदा वंदनीय और पूजित होते हैं गृहस्थाश्रम में भी जिसके पास कुछ धन नहीं रहता वह खा पीकर आनन्द से शयन करता है और धनी को रात भर नींद नहीं आती तथा बहुधा चोर-डाकुओं के शस्त्रों से काल का ग्रास होना पड़ता है।

उत्तम ब्रह्मचर्य—स्मरण, कीर्तिन, केलि आड़ से देखना, गुप्त वार्तालाप करना, संकल्प, अध्यवसाय तथा क्रियात्म रूप से मैथुन न करके ब्रह्म में रमण (आचरण) करना उत्तम ब्रह्मचर्य कहलाता है।

ला० हरिश्चन्द जी जैन खजुरी निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख २७-९-५२ दिन रविवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में क्षमा ही आत्मा धर्म किस प्रकार है इसका विवेचन करते हुये कहा कि—
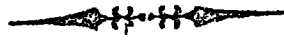
क्षमावतामयं लोकः परश्चै व क्षमावताम् ॥
इह सन्मान मृच्छन्ति, परभव शुभागतिम् ।

जो मनुष्य संसार में क्षमाशील हैं वे इस लोक में सन्मान को प्राप्त होते हैं और पर लोक में शुभगति में भी जाते हैं जैसे कोई कृषक अपने खेत में बीज बोने के पहिले खेत यदि सूखा पड़ा है उसे नरम करने के लिये उसमें पानी से सींच कर फिर हल चलाकर मिट्टी को मुलायम बना लेता है तथा उसमें उर्वरा शक्ति बर्द्धक खाद छोड़कर उसे बलवान बनाकर उसमें बीज बोता है बीज बोने के पश्चात् खेत में बाड लगाकर पशुओं इत्यादि से उसकी सदैव रक्षा करता है। वैसे ही भाद्रपद मास में तुम लोगों ने पूजा, पाठ, स्वाध्याय व्रत नियम, उपवासादि करके अपनी चित्त भूमि को आर्द्रित करके कोमल बनाया है दश लक्षण धर्म का व्याख्यान रूपी बलिष्ठ खाद छोड़ कर बहुत सबल बना लिया है अब इसमें क्षमा रूपी बीज बोकर और इसके चारों ओर क्रोधादि दुष्ट पक्षियों से रक्षा करने के हेतु उत्तम तथा शील संतोष की बाड़ लगाना चाहिये तभी बोये हुये धान्य के उत्तमोत्तम फलों के खाने का अवसर प्राप्त हो सकता है। संसार में स्वार्थी लोग नाना प्रकार के ढोंग रचकर भोले प्राणियों के धनादि हरण करने के लिये उपाय सोचा करते हैं और मौका मिलने पर धन सम्पदादि हरण करते जाते हैं। ऐसे समय में मनुष्य का क्षुभित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है किन्तु जिन मनुष्यों ने उत्तम क्षमादि दश धर्मों का श्रवण, मनन किया है उनके हृदय पर धन सम्पदा के नष्ट हो जाने का किंचित भी प्रभाव नहीं पड़ता है वह विचार करता है कि मेरे शुभ कर्मानुसार जो मुझे धन सम्पदा मिली थी वह तभी तक रह सकती है जब तक मेरे शुभ कर्मों का उदय रहेगा। इसके विपरीत जब पाप कर्मों का उदय होगा अच्छी २ वस्तुओं का वियोग किसी न किसी के निमित्त से हो जायगा फिर वह किसी तरह से रोके भी न रुकेगी। इसलिये किसी के प्रति में क्रोध करके अपने

क्षमा भावों को जिसे मैंने बहुत दिनों तक अभ्यास किया है छोड़ दूं तो मेरे समान संसार में मूर्ख कौन होगा मैंने जो क्षमा भाव धारण किया है, आज उसकी परीक्षा का समय आया है अब मुझे देखना है। कि मैं इस परीक्षा में उत्तीर्ण होता हूँ या नहीं, यदि मैंने क्षमा भाव संतोष भाव धारण न किया तो मेरा बहुत दिनों का सञ्चित किया हुआ क्षमा भाव नष्ट हो जायगा तो मुझे दुर्गति का पात्र बनना पड़ेगा। अतएव मुझे प्राण जाते भी क्षमा भाव का त्याग करना उचित नहीं है क्षमा भाव संतोष भाव धारण करके मुझे एक आदर्श उपस्थित करना चाहिये, लोग मेरी तरफ देखते हैं मुझे ज्ञानी समझते हैं। ज्ञान प्राप्त करने का फल सुचारित्र प्राप्त करना है यदि मैंने सुचारित्र प्राप्त करके क्रोधावेश में चिरकालो पार्जित क्षमारूपी धन स्वाहा करदूं तो यह लोग मुझे निंद्य और नीच समझेंगे संसार में मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी ज्ञानवान पुरुष को सदैव अपना चित्त धर्म ध्यान में लगाना चाहिये, उन्मार्ग का उच्छेद करने वाली और श्रोता जनों के मन को माताकी तरह आनन्द देनेवाली आक्षेपिणी, विक्षेपिणी संवेदिनी और निर्वेदिनी धर्म कथा सदैव करनी चाहिये तथा स्त्रीकथा आत्मकथा चोरकथा और देश कथा को दूर से ही छोड़ देना चाहिये जो कथा धर्म की ओर जीवों को उन्मुख करती है उसे आक्षेपिणी कहते हैं जो कथा जीवों को काम भोग से विमुख करती है उसे विक्षेपिणी कहते हैं जो कथा जीवों को संसार से भयभीत करता है। उसे संवेदिनी कहते हैं जैसे नरक गति में सर्दी और गर्मी का बड़ा कष्ट है। एक क्षण के लिये भी उस कष्ट से छुटकारा नहीं होता, कम-से-कम दस हजार वर्ष तक और अधिक से अधिक तेंतीस सागर तक वहां यह कष्ट भोगना पड़ता है, तिर्यञ्च गति में भी सर्दी गर्मी भूख प्यास और प्रतिभार के दुःख के साथ ही साथ सवारी में जुतना, डन्डे वगैरह से पीटे जाना, नासिका वगैरह छेदा जाना आदि का दुःख भोगना पड़ता है, मनुष्य गति में भी काना, लँगड़ा बौना, ना समझ बहरा अन्धा, कुबड़ा, कुरूप होने के सिवाय ज्वर, कोढ़, यक्ष्मा खांसी दस्त तथा हृदय के रोगों का कष्ट भी उठाना पड़ता है। तथा प्रियजन का वियोग, अप्रियजन का संयोग, इच्छित वस्तु का न मिलना, गरीबी, अभागा पन, मन की खेद खिन्नता, और वधबन्धनः वगैरह के अनेक दुःखों को भी भोगना पड़ता है, देवगति में अन्य देवों का उत्कर्ष और अपनाअपकर्ष देखकर दुःख होता है तथा बलवान देव की आज्ञा से अन्य अल्प पुण्य वाले देवता हाथी घोड़ा और मयूर वगैरह का रूप धारण करक सवारी के कामों में लाये जाते हैं तथा जब स्वग से च्युत होने में छह मास बाकी रह जाते हैं तो अवधि ज्ञान से अपने मन्दे ओर भद्दे जन्म स्थान को जानकर वे बड़े दुःखी होते हैं। इस प्रकार की संवेदिनी कथा से यह जीव चतुर्गति रूप संसार से डरकर मोक्ष में लगता है जो कथा काम भोग से वैराग्य उत्पन्न कराती है उसे निर्वेदिनी कहते हैं। जैसे काम भोग क्षणिक हैं वे आत्मा की तृप्ति करने में समर्थ नहीं हैं। स्त्री सम्भोग ग्लानि उत्पन्न करने वाला है उसमें रति करने वाला मनुष्य मोह के उदय से उसी तरह सुख

मानता है जैसे खाज का रोगी खाज को खुजाने में सुख मानता है, अतः विरक्त हुआ मनुष्य काम भोगों को छोड़कर मुक्ति लक्ष्मी की आराधना करता है, इस प्रकार इन चारों कथाओं को करना चाहिये क्योंकि ये कथायें कुमार्ग का नाश करने में समर्थ होती हैं और जिस प्रकार माता हितकर उपदेश देकर अपनी संतान के कान और मन को प्रसन्न करती है उसी प्रकार ये कथायें भी सुनने वालों के कान और मन को आनन्दित करती हैं। अतः इन कथाओं को सदा करना चाहिये और स्त्री कथा, भक्त कथा, चोर कथा, और देश कथा को दूर से ही छोड़ देना चाहिये, स्त्रियों के रूप यौवन लावन्य वेष भूषा तथा चाल ढाल की चर्चा करने को स्त्री कथा कहते हैं मान दाव शाक खांड खाझा वगैरह भोजन की चर्चा करने को भक्त कथा कहते हैं चोरों की हाल कि चोर अमुक प्रकार से गढ़े खोदते हैं ईटे उखाड़ते हैं, गाठें छेदते हैं दूसरों को ठगते हैं इत्यादि चर्चा को चोर कथा कहते हैं। अमुक देश में सब तरह का धान्य पैदा होता है। अमुक देश में दूध बहुतायत से होता है। अथवा चावल मूँग गेहूँ वगैरह उत्पन्न होता है। दूसरी जगह ये चीजें पैदा नहीं होती हैं इस प्रकार की चर्चा को जन पद कथा कहते हैं इन कथाओं को मन में भी नहीं सोचना चाहिये, वचन से कहने की तो बात ही क्या है। जितने समय तक मन दूसरों के गुण और दोषों के कथन में लगता है। उतने समय तक उसे विशुद्ध ध्यान में लगाना श्रेष्ट है दूसरों के गुणों और दोषों के प्रकट करने में मन के लगे रहने से कर्म बन्ध होता है अतः इसकी अपेक्षा निर्मल ध्यान में मन लगाना उत्तम है। क्योंकि उसमें कर्मों की निर्जरा होती है।

परिणाम में मधुर और उत्तम मुनियों के द्वारा दया बुद्धि से कहे गये हितकारक सत्य को निरादर करने वाले राग और द्वेष के उदय से स्वच्छन्दचारी होते हैं। जाति, कुल, रूप, बल, लाभ, बुद्धि, लोक प्रियता और शास्त्र ज्ञान के मद से अन्धे हुये विषय लोलुपी मनुष्य इसलोक और पर लोक में हितकारक वस्तु को नहीं देखते हैं यद्यपि उत्तम मुनियों ने जीवों के कल्याण के लिये जो सत्य और हितकारक उपदेश दिया है वह असह्य परीषह और इन्द्रियों को रोकने आदि के कारण दुःख देने वाला लगता है किन्तु अन्त में उसका फल गुणकारी कड़वी दवा के समान मीठा और हितकारक ही होता है। परन्तु स्वच्छन्दचारी मनुष्य उसकी ओर ध्यान नहीं देता। जिस प्रकार अन्धे मनुष्य देखने योग्य वस्तु भी नेत्र हीन होने के कारण नहीं देख सकते हैं वैसे ही जाति वगैरह के मद से अन्धे हुये मनुष्य भी हिताहित का विचार नहीं करते हैं। संसार में जीवों को अपने अपने कर्मों के उदय से कभी ब्राह्मण की जाति कभी क्षत्री की जाति तथा कभी चांडाल आदि की जाति होती है। कोई जाति सर्वदा नहीं रहती। लाखों करोड़ों जातियों में उत्तम मध्यम जघन्य पने को जानकर कौन बुद्धिमान जाति का मद करेगा? संसार को चौरासी लाख योनियों वाला कहा गया है। इस संसार में उत्पन्न हुआ जीव नारकीय, तिर्यंच, मनुष्य, देव, जल, अग्नि वायु और बनस्पति में जन्म लेता रहता है। संसार की इस विडम्बना को जानकर कौन विद्वान जाति का मद कर सकता है? कर्म के वश से प्राणी इन्द्रियों की रचना से होने वाली

अनेक जातियों में जन्म लेता है। यहां किसी की कोई जाति हमेशा नहीं रहती ? अतः जाति का मद करना ठीक नहीं है। बड़े भारी कुल में जन्म लेने पर भी स्त्री अथवा पुरुष यदि कुरूप हुआ, निर्बल हुआ अत्यन्त मूर्ख हुआ, हिताहित का विचार करने की बुद्धि न हुई जुआरी, पर स्त्री गामी पर पुरुषगामी, असत्यवादी और चोर हुआ पास में धन धान्य सम्पदा न हुई तो सभी उसका तिरस्कार करते हैं। अतः कुल का मद कदापि नहीं करना चाहिये। उसमें गर्व के लिये कोई स्थान नहीं क्योंकि कहा भी है किः—

यस्याशुद्धं शीलं प्रयोजनं तस्य किं कुल मदेन।
स्व गुणाभ्यलंकृतस्य हि किं शीलवतः कुल मदेन

जिसका शील दूषित है उसको कुल के मद से क्या प्रयोजन ? और जो शीलवान है वह अपने गुणों से भूषित है, उसे भी कुल के मद से क्या प्रयोजन है ? रूप का भी मद नहीं करना चाहिये। यह रूप (सौंदर्य) रज और वीर्य से उत्पन्न होता है, सदैव घटता बढ़ता रहता है, रोग बुढ़ापा का घर है। उसमें मद करने का क्या स्थान है ? यह नित्य ही संस्कार करने के योग्य है। चर्म और मांस से ढका हुआ है। मल-मूत्र से भरा हुआ है। नियम से नष्ट होने वाला है ऐसे रूप में मद का क्या कारण है ? मनुष्य को अपने बल का भी मद नहीं करना चाहिये। बलवान क्षण भर में बल हीन होजाता है और बलहीन अच्छे भोजनों से बलवान हो जाता है। अतः बल भी गर्व करने की वस्तु नहीं है। बल सदा नहीं रहता और मौत आने पर तो सभी बल बेकार हो जाते हैं। इसलिये बल का मद नहीं करना चाहिये। लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से लाभ होता है और इसके उदय से कुछ भी लाभ नहीं होता। अतः लाभ और अलाभ दोनों ही नित्य नहीं हैं। यदि साधु को आहार आदि का लाभ हुआ तो वह धर्म साधन के आधार भूत शरीर वगैरह का पालन करता है और यदि लाभ न हुआ तो दीनता रहित चित्तवाले साधु के कर्मों की निर्जरा होती है। अतः लाभ और अलाभ को कर्मोदय का फल जानकर दोनों में समभाव रखना चाहिये। बुद्धि का मद भी नहीं करना चाहिये। पूर्व महा-पुरुष सागर के समान महान् ज्ञान को धारण करने वाले थे। उनमें से कोई एक पाठी कोई दो पाठी तथा कोई त्रिपाठी थे। उनका ज्ञान सागर के समान गम्भीर और अनन्त था। उनके इस ज्ञानातिशय को सुनकर क्षुद्र बुद्धि वाले मनुष्यों को अपने ज्ञान का गर्व नहीं करना चाहिये। लोक प्रियता का मद भी नहीं करना चाहिये। इसने मेरा उपकार किया है, आगे करेगा यह सोचकर भिखारियों की भाँति चापलूसी करता है उसके पीछे पीछे लगा रहता है, काम करता है, बड़ाई करता है बैठने को आसन देता है। जैसे कुत्ता रोटी का टुकड़ा डालने वाले के आगे खड़ा होकर अपने कान और पूंछ हिलाता है, इस तरह के कामों से दूसरों का जो प्रेम प्राप्त होता है, वह स्थायी नहीं है। उसके नष्ट हो जाने पर बड़ा खेद होता है।

धर्मपत्नी ला० नेमदास जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

टिकैतनगर में

तारीख २८-६-५३ दिन सोमवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने उपदेश में कहा कि संसार से भयभीत हुये भव्यजीवों के विचार कैसे रहते हैं।
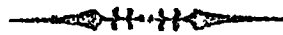
इदमेव वचो जैन मनुत्तममकल्मषम्।
निग्र न्थं मोक्षवत् मेति विधेयाधिष्णो ततः॥

जो संसार को गूंथते हैं अर्थात् जो संसार की रचना करते हैं, जो संसार को दीर्घकाल तक रहने वाला करते हैं उनको ग्रन्थ कहना चाहिये मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, असंयम, कषाय, अशुभ योगत्रय, अर्थात् अशुभ मनोयोग, अशुभ वचनयोग और अशुभ काययोग इन परिणामों को आचार्य ग्रन्थ ऐसा नाम देते हैं। मिथ्या श्रद्धा जब हट जाती है तब सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाने से सम्यग्ज्ञान पैदा होता है। असंयम, कषाय और तीनों अशुभयोगों से रहित जो चारित्र उसको सम्यक्चारित्र कहते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को अर्थात् रत्नत्रय को आचार्य निर्ग्रन्थ संज्ञा देते हैं। यह निर्ग्रन्थ ही अर्थात् रत्नत्रय ही जगत में सर्वोत्कृष्ट पदार्थ है। इससे उत्कृष्ट पदार्थ दूसरा कोई भी नहीं है। यह पदार्थ पूर्ण निर्दोष है। यही मोक्ष है अर्थात् इससे ही सम्पूर्ण कर्मों का नाश होगा। ऐसा मन में सदा विचार करना चाहिये। इस तरह का विचार यदि न हो तो जैसे भूत काल में जन्म मरण के दुःख इस जीवको भोगना पड़ा था ऐसा ही दुःख भविष्यत् काल में भी अवश्य भोगना पड़ेगा।

सम्यग्दर्शन निरतिचार और गुणों से उज्ज्वल करने का अभ्यास करना चाहिये। शङ्का, कांक्षा, विचिकित्सा, पर दृष्टि प्रसंशा व अनायतन सेवन ऐसे सम्यक्त्व के पांच अतीचार हैं। वस्तु का स्वरूप यह है अथवा वह है ऐसा अनिश्चयात्मक जो ज्ञान उसको शङ्का कहते हैं। यह शङ्का निश्चय ज्ञान का आश्रय करने वाले सम्यक्त्व को मलीन करती है। शङ्का यदि सम्यग्दर्शन हो (आत्म स्वरूप में सच्ची रुचि हो तो उसकी शङ्का अतीचार मानने योग्य है। परन्तु संशय मिथ्यापना को धारण करता है। अर्थात् संशय स्वयं मिथ्यात्व ही है। मिथ्यात्वों के भेदों में आचार्य ने संशय को भी

गणाना की है। संशयित, अभिग्रहित और अनभिग्रहित आदि मिथ्यात्व के तीन भेद हैं।

समाधान—आपका कहना ठीक है। संशय के सद्भाव में भी सम्यक्त्व रहता ही है। अतएव संशय को अतीचार मानना युक्तियुक्त है। इसका खुलासा यह है कि अपने में श्रुत ज्ञानावर्णीय कर्म का विशिष्ट क्षयोपशम न होना, विद्वानुपदेशक का अभाव रहना अथवा अपने में बचन चातुर्य का अभाव रहना, संशय दूर करने वाले आगम के बचन में न मिलना अथवा उसका अभाव रहना, काल लब्धि को प्राप्ति न होना इत्यादि कारणों से वस्तु स्वरूप का निर्णय नहीं होता है, तो भी जैसा सर्वज्ञानी भगवान् ने वस्तु स्वरूप जाना है वह वैसा ही है ऐसी मैं श्रद्धा रखता हूं ऐसी भावना करने वाले भव्य जीव के सम्यक्त्व की हानि कैसे होगी? अर्थात् शङ्का नाम के अतीचार से उसका अतीचार से उसका सम्यग्दर्शन (अपने आत्मा का सच्चा श्रद्धान) समल होगा परन्तु नष्ट नहीं होगा। उपर्युक्त श्रद्धा से जो रहित है वह हमेशा संशयाकुल ही रहताहै। वास्तविक तत्त्व-स्वरूप क्या है? उसको कौन जानता है? कुछ निर्णय कर नहीं सकते। ऐसी उसकी मति रहती है। आगम के द्वारा निर्णय मानना भी वह संशय मिथ्यात्व ही स्वीकार नहीं करता। कौन सा आगम वस्तु के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करता है और कौन सा नहीं यह भी निर्णीत नहीं है अर्थात् आगम के विषय में भी संशय है। इसलिये उसकी तत्त्व के ऊपर अश्रद्धा संशय ज्ञान से रहित होनेसे वह संशय मिथ्यात्व ही है। तत्वों के ऊपर अश्रद्धान होना यह मिथ्यात्व का लक्षण है। इस संशय मिथ्यात्व में सच्चे तत्त्व के प्रति अरुचि भाव रहता है। छद्मस्थों को भी डोरी, सर्प, मनुष्य इत्यादि पदार्थों में यह रस्सी है या साँप है या ठूंठ है या मनुष्य है इत्यादि अनेक प्रकार का संशय उत्पन्न होता है। वह सम्यग्दृष्टि ही है। इसका सारांश ऐसा जानना चाहिये। मिथ्यात्व कर्म के उदय से सर्वत्र संयम रूप ही तत्वों में अरुचि पैदा होती है। इस अरुचि को संशय ज्ञान का सहाय मिलता है। इसलिये इसको संशय मिथ्यात्व कहते हैं। आगम कथित जीवादिक पदार्थों में ज्ञानावरण कर्म के उदय से और सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से जो वस्तु स्वरूप ऐसा है या वैसा है ऐसी चंचल मति को शंका अतीचार कहते हैं। यह अतीचार सम्यग्दर्शन को मलीन बनाता है। इसलिये यह अतीचार है। डोरी, सांप पुरुष ठूँठ में जो संशय होता है वह अतीचार नहीं है।

काङ्क्षा—इष्ट पदार्थों पर जो आशक्ति अथवा लम्पटता होती है उसे काङ्क्षा कहते हैं यह काङ्क्षा सम्यग्दर्शन का अतीचार है।

शङ्का—यदि काङ्क्षा को अतीचार कहा जाय तो आहार में अभिलाषा उत्पन्न होती है। स्त्री, वस्त्र, पुष्पहार, अलङ्कार आदि असंयत सम्यग्दृष्टि को अर्थात् अहिंसाद्यनुव्रत पालने वालों को अभिलाषा उत्पन्न होती है। छठे गुण स्थानवर्ती मुनि को भी आहार में अभिलाषा उत्पन्न होती है। अतः उनके सम्यग्दर्शन में भी यह अतीचार उत्पन्न होगा। सभी भव्य पुरुषों को सुखों की इच्छा तो रहेगी ही, इसलिये इच्छा को अतीचार मानना युक्तियुक्त नहीं है।

समाधान—केवल इच्छा को अतीचार हम भी नहीं मानते किन्तु सम्यग्दर्शन के प्रभाव से दान की सामर्थ्य देव पूजा और तपश्चरण की शक्ति से मुझे जो पुण्य उत्पन्न हुआ है उससे कुल रूप ऐश्वर्य, स्त्री पुत्रादिक सर्वोत्कृष्ट पदार्थों की प्राप्ति हो, मेरा माहात्य हो, ऐसी अभिलाषा रखना सम्यग्दर्शन का अतीचार है।

शंका-विचिकित्सा—जुगुप्सा तिरस्कार, इनको यदि अतीचार कहोगे तो मिथ्यात्व असंयम इत्यादिकों में जुगुप्सा होता है वह भी अतीचार मानना पड़ेगा।

समाधान—यहां भी कांक्षा के समान जुगुप्सा का विषय नियत समझना चाहिये। अर्थात् नियत विषय सम्बन्धी जुगुप्सा ही अतीचार है ऐसा समझना चाहिये।

रत्नत्रय में से किसी एक में अथवा रत्नत्रय धारकों में कोपादिक से जुगुप्सा होना यहाँ सम्यग्दर्शन का अतीचार है। इस जुगुप्सा के वश होकर सम्यग्दृष्टि जीव अन्य भव्य के ज्ञान-दर्शन, व आचारण का तिरस्कार करता है। जिसमें यह सम्यग्दर्शनादिक निरतिचार हैं ऐसे पुरुष का वह तिरस्कार करता है अतः ऐसी जुगुप्सा से रत्नत्रय के महात्म्य में अरुचि होने से इसको अतीचार समझना योग्य है।

परदृष्टि प्रशंसा—अतीचार यहां पर शब्द के अनेक अर्थ हैं किंतु तत्व दृष्टि से परमार्थिक दृष्टि से विपरीत दृष्टि जिनकी है ऐसे लोगों को पर दृष्टि कहते हैं उनकी प्रशंसा करना यह सम्यग्दृष्टि का मल है।

अनायतन सेवा—अनायतन के छः भेद हैं, मिथ्यात्व, मिथ्यादृष्टिजन, मिथ्याज्ञान मिथ्याज्ञानी, मिथ्याचारित्र और मिथ्याचारित्रवान इन छहों में से मिथ्यात्व अनायतन का अर्थ अतत्व श्रद्धान (साँसारीक वस्तुओं को अपनी मानना) होता है यदि भव्य जीव मिथ्यात्व की सेवा करेगा तो मिथ्यात्वी ही होगा। सम्यग्दर्शन ही उसका नष्ट हो गया ऐसा समझना चाहिये। इसलिये 'मिथ्यात्व" सम्यग्दर्शन का अतीचार नहीं है वह अनाचार है, मिथ्यादृष्टि सेवा—मिथ्यादृष्टियों को अच्छा समझकर उनका आदर करना, मिथ्याज्ञान सेवा, मिथ्यामत के तत्व अच्छे हैं। ऐसी भावना सुनने वालों के मन में उत्पन्न करूँगा ऐसा विचार करके नयों की अपेक्षा छोड़कर मिथ्यात्व का उपदेश करना,

मिथ्याज्ञानी सेवा—मिथ्याज्ञानियों के साथ सहवास रखना उनमें प्रेम रखना उनका अनुसरण करना।

मिथ्या चारित्र—मिथ्याज्ञानियों का आचरण देखकर वैसा स्वयम् आचरण करना उसका अनुसरण करना उनसे द्रव्य लाभ होगा इस अपेक्षा से उनका सहवास करना ऐसे सम्यत्व के अतीचारों का त्याग करना चाहिये।

उपगूहन—स्थितिकरण, वात्सलप और प्रभावना ये चार गुण सम्यक्त्व को निर्मल करने वाले और उसको बढ़ाने वाले हैं।

उपगूहन—अथवा उपबृंहण इस गुण के दो नाम हैं वस्तु की यथार्थता भव्य जीवों के आगे दर्पण के समान दिखाने वाला, धर्मोपदेश के द्वारा तत्व श्रद्धान बढ़ाना यह उपबृंहण गुण है इन्द्रों के समान जिन पूजा करके अपने जिन धर्म में जिन भक्ति में स्थिर करना अथवा दुद्धर तपश्चरण, आतापनादि योग धारण करके आ

आत्मा में श्रद्धागुण उत्पन्न करना इसको भी उपवृंहण कहते हैं।

स्थिति करण—जीवादि पदार्थ सामान्य और विशेष धर्मों से युक्त हैं यह उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप ही सदा रहते हैं। ऐसा भगवान का उपदेश है, जो कि बिल्कुल सच्चा है यही मेरी श्रद्धा है मैं इससे उलटी श्रद्धा धारण नहीं करूँगा वे भगवान वीतराग हैं रागद्वेष क्षुधा तृषादि दोषों से अलिप्त है उनमें सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान है। अतः वे कभी भी विपरीत उपदेश नहीं देते हैं भव्य जीवों को उद्धार करने का प्रयत्न करने वाले जिनेन्द्र भगवान वस्तु का विपरीत स्वरूप कभी नहीं कहेंगे, ऐसी भावनाओं से अपने को जिन धर्म में स्थिर करना यह स्थिती करण है, जो भव्य रत्नत्रय से डिग रहाहो उसको फिर रत्नत्रय में स्थिर करना चाहिये जो "सम्यग्दृष्टि" भव्य सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वी बन रहा हो उसको सम्यग्दर्शन में स्थिर करना चाहिये, मिथ्यात्व ही कर्म ग्रहण करने का मूल कारण है मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय और योग ये कर्म बन्ध के कारण हैं, इन कारणों से जीव को अनन्त संसार में भ्रमण करना पड़ता है। चौरासी लाख योनियों में इन्हीं कारणों से जीव भ्रमण करता है परन्तु जब जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है तब नाना प्रकार की यातनाओं की उत्पत्ति करने वाली तिर्यंचगति और नरक गति टल जाती है। अर्थात् सम्यग्दर्शन धारण करने वाला मनुष्य तिर्यंचगति में और नरकगति में उत्पन्न नहीं होता है स्वर्गलोक के और मनुष्य लोक के सुन्दर भोग मान्यता वगैरह उत्कृष्ट पदार्थ इससे जीवों को मिलते हैं और अन्त में इसी से मोक्ष पद प्राप्त करता है इसलिये दुःख रूपी जल जिसमें बहता है ऐसी मिथ्यादर्शन रूपी नदी को लांघकर जैन धर्म धारण कर इत्यादि उपदेशों से मिथ्यादर्शन से हटाकर जैन धर्म में स्थिर करना चाहिये, यह भी स्थिति करण है।

जो भव्य जीव सम्यग्ज्ञान की आराधना करने में प्रमादी और आलसी बन गया है। उसको सम्यग्ज्ञान में स्थिर करना चाहिये—अर्थात् ज्ञान ही सुख और दुःख को स्वरूप बताने वाला है बिना ज्ञान के हित और अहित का ज्ञान नहीं हो सकता है जब तक अहित को छोड़कर हितको ग्रहण नहीं करेगा। जब तक उसका कल्याण नहीं हो सकता है। सभी विद्वान लोग दुःख दूर करके सुख प्राप्ति होने का उपाय करते हैं परन्तु जबतक इसका परिज्ञान पूर्णतया न हो जावे किस चीज को छोड़ना है और किस चीज को ग्रहण करना तब तक सुखकारी वस्तु का संयोग कैसे हो सकता है सम्यग्चारित्र से भ्रष्ट होते भव्य पुरुष को देखकर उसके मन को स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिये। जो लोग हिंसा, चोरी, असत्य भाषण करते हैं उनको इसलोक में ही अकथनीय दुःखों की प्राप्ति होती है बिना कारण लोग वैरी बन जाते हैं। अतः सम्यग्चारित्र की रक्षा के लिये पापों का त्याग करना चाहिये।

ला० जयचन्दलाल जी जैन जरवा निवासी ने जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख २९-९-५३ दिन मङ्गलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि सच्चे त्यागी का समागम हो जाय तो मनुष्य संसार से पार हो सकता
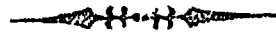
निश्चल रूप क्रिया है जिसकी, पंचेन्द्रिय पक्षियों को जो दग्ध करने वाले हैं, मन रूपी पक्षी की पूछ को जिसने पकड़ लिया है ध्यान से समस्त पापों के जो नाश करने वाले हैं विद्या रूप समुद्र के जो पारगामी हैं तथा जो करुणा भाव रूप गुण पुण्य से पवित्र चित्त वाले हैं। ऐसे त्यागियों में से एक त्यागी का भी संयोग (सच्चा समागम) हो जाय तो संसार सागर से मनुष्य निःसन्देह पार हो सकता है।

विंध्याद्रिंन गरंगुहा वसतिकाः शय्याशिलापार्वती
दीपाश्चन्द्रकरा मृगाः सहचरा मैत्री कुली नांगला
विज्ञानं सललं तपः सदशनं येषां प्रशांतात्मनाम्
धन्यास्ते भव पङ्क निर्गम पथ प्रोद्देशकाःसुन्तुनेः

सन्तों को नगर विन्ध्याचल पर्वत है और वसतिका पर्वत की गुफा है। शय्यासन पर्वत की शिला है प्रकाश के लिये चन्द्र किरण सहचर मृग है मित्रगण कुलीन हैं। विज्ञान ही जिनका चल है। भोजन जिनका प्रशांत चित्त है ऐसे महात्मा धन्य हैं। जो कि भवरूपी कीचड़ से निकालकर मुझे मार्ग प्रदर्शित करें, ऐसे ही महात्मा संसार रूपी समुद्र से निकालने में समर्थ हैं ऐसे महात्माओं का जिन्होंने सत्संग किया है उनके भव बन्धन दूर होने में कुछ देर नहीं है। एक लड़का एक मनुष्य के था दुर्व्यसनी था। एक साधू वहां आया वह मनुष्य साधू के पास गया और कहा कि मेरा एक लड़का जुआ इत्यादि खेलता है इज्जत बरबाद हो रही है यदि आप उसे कुछ उपदेश दें तो वह सुधर जाय पिता ने पुत्र से कहा कि तुम बाबा जी के पास जाया करो वहां बड़ा आनन्द आता है। लड़के की इच्छा थी किसी तरह से धन मुझे मिले बाबा जी से कहा कि मुझे ऐसा कोई मन्त्र दीजिये जिससे कुछ धन मुझे मिल जाय बाबा जी ने बतला दिया कि तुम मन्त्र पढ़ कर झाड़ के नीचे खोदो तो तुम्हें पैसा मिलेगा, झाड़ के नीचे मन्त्र पढ़कर खोदने लगा तो उसे बहुत रुपिया मिला तब उसने सोचा कि मुझे एक मन्त्र से तो इतना रुपिया मिल गया यदि मैं बाबा जी की ही तरह, बन जाऊँ तो बहुत बड़ा लाभ हो बाबा जी से उसने बाबाजी बनने

के लिये प्रार्थना किया बाबा जी ने उसे साधूपद दे दिया और फिर पीछे समझाया कि तुम्हारे पिता के कहने से तुम्हें सुधारने के लिये यह सब किया गया था साधु की संगति से सब कुछ सुधार हो सकता है। मनुष्य का शरीर जो है। उसका उपयोग किस तरह करना चाहिये शरीर चार प्रकार के संघ की सेवा में बिताना चाहिये दूसरे काम में लगाना व्यर्थ है मरने पर दुर्गति मिलेगी। मनुष्य का शरीर मरने पर किसी काम में नहीं आता है। पशु का चर्म काम में आता है उसका कुछ मूल्य निकलता है परन्तु मनुष्य के मरने पर यह शरीर किसी काम में नहीं आता है। रात दिन इसे अच्छे २ पदार्थों का सेवन कराया जाता है। परन्तु अन्त में इससे कोई कार्य नहीं निकलता है। जहां तक बने इस शरीर को चारों संघ की सेवा में लगा देना चाहिये, इसके पीछे रात दिन अनेक प्रकार से इसकी सेवा अभ्यर्चना किया, किन्तु इसके बदले में इससे कुछ काम तो लेना चाहिये, आचार्य कहते हैं। दान देने में तूने अनाकानी की परोपकार के समय नाक सिकोड़कर चल दिया भगवान् का नाम तक नहीं लिया घर बार की चर्चा हमेशा करता रहता है परन्तु आत्म कल्याण के लिये कुछ भी नहीं करता है जबतक यह शरीर स्वस्थ है बलवान है तब तक इसे धर्म साधन में लगाना चाहिये, अन्त में चार आदमी जो उठाने के लिये आते हैं वह भी कहने लगते हैं इसने तो किसी का कभी कोई काम नहीं किया, वे मन से उसको उठाते हैं। उठाने वाला भी ऐसे शरीर के लिये नहीं मिलता है। इसलिये इस शरीर से परोपकार करो वैयावृत्य करो, आहार दान दो जिससे पर भव में सुख की सामग्री प्राप्त हो, मन को कुछ देर तक अपने मन को काबू में करने का अभ्यास करना चाहिये तब जाप्य सामायिक भी करना ठीक है, जाप्प कर रहे हैं उसी समय घर से बुलावा आ जाता है। मन चंचल हो जाता है तो बताओ इससे सुख साता कैसे मिलेगा। अपनी शक्ति के अनुसार दान में, पूजा में अपने द्रव्य को खर्च करना चाहिये, प्रति दिन एक पैसा भी दान पूजा में अच्छे भावों से लगावे, तो विशेष पुन्य बन्ध हो जायगा, बिना दान पुन्य के मर जाने के पीछे क्या मिलेगा--जब दान करने का समय आता है। तो अनेक प्रकार के हीला हवाला बतलाकर समय टाला जाता है दान नहीं करना चाहता है, अपना समय विभाग बना लेना चाहिये कुछ समय शुभ कार्य करने के लिये नियत कर लेना चाहिये, उस समय को दान, पूजन, स्वाध्याय, परोपकार में लगाना चाहिये। इससे इस जीव का कल्याण हो जायगा, ऐसी भावना सदैव रखना चाहिये कि मुझे कब ऐसा अवसर मिले जिससे मैं शुभगति में जाकर फिर मोक्ष प्राप्त करलूँ। एक मनुष्य के एक लड़का था। वह बाहर जा रहा था रास्ते में उसकी ससुराल थी। किन्तु आगन्तुक को कुछ मालूम नहीं था, स्वसुर ने पहिचान लिया घर में जाकर कहा कि दामाद आये हैं इनके लिये सुन्दर भोजन तैयार करो अतएव अच्छे २ भोज्य पदार्थ बनाये गये और थाली में पड़ोसकर सन्मुख लाये गये दामाद महाशय पूछते हैं कि यह सारा सामान सब टके में है उत्तर मिला कि हां सब टके में है पान भी आये तब फिर पूछा कि महाशय यह भी टका में है उत्तर मिला हां सब टका में है रात को भी बढ़िया भोजन मिला

फिर पूछा यह भी टका में है उत्तर मिला हां सब टका में है रात को उसकी स्त्री आई सेवा करने के लिये तब फिर पूछा कि यह भी टका में है उत्तर मिला कि हां सब टका में है प्रातः-काल होनेपर समझाया कि तुम्हारा ब्याह बाल्य अवस्था में हो गया था वह तुमको याद नहीं है इसी तरह संसारी जीव टके के पीछे सब धर्म कर्म दान पूजा स्वाध्याय, जाप्य सब भुला दिया है जहां कहीं जाते हैं। सब टके की वार्ता करते हैं यह ठीक नहीं है शरीर को चतुर्विध संघ की सेवा में लगाना चाहिये, धन सम्पदा को त्याग करने का अभ्यास करना चाहिये सांसारिक चिन्ताओं के साथ में मोक्ष की चिंता करना चाहिये तभी कल्याण हो सकता है। आयु धीरे २ कम हो रही है। साधु समागम मिल का प्रयत्न करना चाहिये, खाने पीने भोग भोगने का चिंता किया परन्तु अपने कल्याण के लिये कभी कोई चिंता नहीं किया, इस तरफ ध्यान ही नहीं जाता है। इस तरह अनादिकाल से कर रहा है। तमाम समय बीत गया, परन्तु अपनी कल्याण की चिंता कुछ नहीं करता है।

स्त्रियों का स्वभाव ही होता है कि पास पड़ोस में जाकर तमाम बातों को कहना सुनना किया करती हैं, एक स्त्री आई उसने कहा जरा ठहरो एक बात है। कि बड़ा आश्चर्य है मेरी आत्मा एक दम स्तब्ध हो गई है, उसके पति माघ महीने में स्नान करके खड़े थे धोती ही मांगते रह गये परन्तु स्त्री कथा जब तक पूरी नहीं हुई उसने धोती देना भी भूल गई। और कथ सुनने में लग गई, उसने कथा में कहा कि मेरे छः महीने का गर्भ था जब मैं टट्टी में गई, तो मेरी टट्टी से दो कौवे निकल गये किन्तु यह बात किसी से कहना नहीं किंतु स्त्री ने तमाम जगह कहा यह बात राजा के यहां पहुँची राजा ने उस मनुष्य को बुलाकर पूछा कि क्या बात है। उस मनुष्य ने कहा कि मैं अपनी स्त्री की परीक्षा करने के लिये ऐसा किया था कि देखें स्त्री कोई बात छिपा सकती है कि नहीं परन्तु उसने सब प्रकाशित कर दिया, साधु समागम तो कई बार मिला परन्तु तत्व चर्चा करने का समय कभी नहीं मिला, सँसारीक चर्चा बराबर करते रहे, साधु समागम का कुछ लाभ नहीं लिया तो भला तुम्हारा कल्याण कैसे हो सकता है, तुझे विचार करना चाहिये। कि ऐसा शुभ अवसर कब मिलेगा। कि मैं जङ्गल में जाकर तपस्या धारण करूँ जङ्गल के पशु इत्यादि मेरे सहचर हों—हरिणादि मुझे सूखा झाड़ समझ कर अपनी देह को खुजलाकर अपनी खुजली शांत करेंगे। हे जीव जिसकी आत्मा अपने स्वरूप में लीन हैं पर द्रव्य में रत नहीं हैं वाह्य परिग्रह के त्याग से और अन्तरङ्ग रागद्वेष मोह के त्याग से जिनका मन पवित्र हो गया है, ऐसे मनुष्यों का शीघ्र ही कल्याण हो सकता है। परन्तु संसारी जीव थोड़े से धन सम्पदा, पुत्र, स्त्री के मोह में फँसे रहने के कारण इन बातों का विचार ही नहीं करता है, अपने मन को पराधीन पना से छुड़ाकर अपने स्वाधीनकर अनादि काल से पराधीन हो रहा है इन्द्रिय विषयों से विरक्त हो संसारीक चिंताओं को छोड़ दो अपने मन को रोको ज्ञानाभ्यास करो तो स्वात्मानु भूति का लाभ मिल जावेगा और कल्याण हो जावेगा।

चकई जो निशि बीछुड़े आय मिले परभात ॥
जो नर बिछुड़े जगपते ना दिन मिले न रात ॥
चीटी से हस्ती तलक, जितने लघु गुरुदेह ॥
सबको सुख देवो सदा परम भक्ति को गेह ॥

चकवी रात में अपने पति से बिछुड़ जाती है परन्तु प्रभात होते ही फिर उससे मिल जाती है। परन्तु जो मनुष्य भगवान से बिछुड़ जाते हैं अर्थात् उनके कथनानुसार न तो दान पूजन और न स्वाध्याय, परोपकार करते हैं। वे रात दिन इधर उधर संसार में भटकते ही रहेंगे। उनका सुधार कभी नहीं हो सकता है इसलिये हमारा प्रथम कर्त्तव्य है कि हम भगवान तथा भगवान की वाणी में श्रद्धा रखकर उसके अनुकूल चलने का प्रयत्न करते रहें जिससे कालांतर में हमारा कल्याण हो जावे, चीटी से हाथी तक जितने छोटे बड़े संसार में प्राणी हैं उन सबों को सदा सुख और साता पहुँचाना चाहिये। परोपकार की भावना रहने से मन प्रसन्न शांत और स्वच्छ हो जाता है उसमें भगवान के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। भगवान में श्रद्धा उत्पन्न हो जाने से उनके कहे हुये शास्त्र के अनुकूल चलने में बड़ा आनन्द मिलता है और स्वपर कल्याण करने वाला इस तरह से वह मनुष्य सहज ही बन जाता है, अपने में जो अवगुण हो उसकी ओर सदैव दृष्टि रखना चाहिये, उनके छोड़ने का सतत् प्रयत्न करते रहना चाहिये, इससे आत्म कल्याण होने में देर नहीं लगती है।

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जातते शिल पर होत निशान ॥

अभ्यास से शीघ्र ही दुर्गुण छूटकर सुगुण प्राप्त होने लगते हैं जो कि स्वपर कल्याणकारी बात है आज हम देखते हैं कि प्रायः हर आदमी दूसरों के दोषों को देखने के लिये और कहने के लिये लालायित रहता है परन्तु अपने दोषों की तरफ किसी समय भी उसे देखने की फुरसत नहीं मिलती है जहां देखो वहां अपने गुणों का बखान और दूसरे के अवगुणों की निंदा करता है। परन्तु यह बात ठीक नहीं है इससे अपना हित होने के बदले अहित ही अधिक होता है। यदि अपने खोटे गुणों की ओर दृष्टि रखी जावे, तो कालांतर में वे छूट सकते हैं दूसरों के अवगुणों की चिन्ता ना करने से तो अपने को अवगुण ग्राही बन जाने का भय है, इसलिये गुण ग्राही बनना ठीक है और इसमें अपना हित हो सकता है।

चलन २ सब कोई कहै पहुँचै विरला कोय।
इक कंचन इक कामिनी दुर्लभ घाटी दोय ॥

अपने निर्दिष्ट स्थान अर्थात् संसार से विरक्त होने के लिये सभी कहते फिरते हैं परन्तु कोई विरला ही मनुष्य उस स्थान पर पहुँच पाता है सभी सांसारिक विषय वासनाओं में फँस जाते हैं एक तो द्रव्य (रू० पैसा धन) और दूसरे स्त्री इन दोनों घाटियों के बीच से पार होना बहुत मुश्किल है इन घाटियों में फँसकर बड़े २ चतुर खिलाड़ी भी बाजी हार जाते हैं और अँत में केवल पछिताने के और कुछ हाथ नहीं लगता अतएव धर्मात्मा पुरुषों को जो अपना कल्याण करना चाहते हैं सत्मार्ग में लगकर अपना कल्याण करने में विलम्ब न करें न मालूम किस समय नश्वर आयु समाप्त हो जाय तो मन की मन ही में रह जावे।

लाला जैन्द्रप्रसादीलाल जी जैन लखनऊ निवासी ने जनता प्रेस बाराबङ्की में छपाया

क्रुपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख ३०-६-५२ दिन मङ्गलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में जैन मुनियों का नित्य कर्म और साधन बतलाया
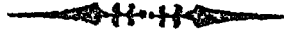
जैन धर्म में गृहस्थ धर्म व मुनि धर्म का वर्णन किया गया है। गृहस्थ जैनधर्म के नियमों का एक देश पालन करता है और मुनि सर्व देश अर्थात् सम्पूर्णपने धर्म के नियमों का पालन करते हैं। मुनि महाव्रत धारण करते हैं। और अट्ठाइसमूल गुणों को धारण करना मुनियों के लिये नितान्त आवश्यक है।

वद समिदिंदिय रोधो लोचो,
आवासय मचेल मरहाणं।
खिदि सयण मदंतवणं ठिदि,
भोयण मेयभत्तं च ॥

अर्थ-पंचमहाव्रत, पंच समिति, पंचेन्द्रिय निरोध, केशलोच, षडावश्यक क्रिया अचेलकत्व, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्ताधवन, खड़े होकर आहार लेना तथा एक बार भोजन करना। पंच-महाव्रतों में अहिंसा, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग हैं। पंच समिति में ईर्यासमिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान् निक्षेपण समिति, प्रतिष्ठापन समिति हैं। पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में रखना। केशलोच अर्थात् अपने हाथों से अपने बालोंको उखाड़ फेंकना इत्यादिक जैनागमों में कहे गये हैं। अहिंसा महाव्रत का रक्षण परमावश्यक है। इसके निर्दोष पालन करने के लिये ईर्यादि समितियों में एकाग्र चित्त होकर अर्थात् सम्पूर्ण पाप क्रियाओं का त्याग करके मन, वचन और काय तथा कृत कारित व अनुमति से छः प्रकार के जीव समुदायों का वध करना छोड़ देना चाहिये। (पृथ्वी काय, जल-काय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ये छः प्रकार के जीव कहलाते हैं) जैसे तुम को दुःख प्रिय नहीं है वैसे सभी जीवों को दुःख प्रिय नहीं है ऐसा जान कर सर्व जीवों में आत्मोपम भाव रखना चाहिये। प्यास, भूख, रोग, शीत, उष्ण इत्यादिक से पीड़ा होने पर जीवों का घात कर प्यास वगैरह को मिटाने का प्रयत्न करने का विचार कभी न करना चाहिये। कपूर का चूर्ण डाल कर सुगंधित किया हुआ बर्फ के समान शीतल जल पीने का अथवा

सुगंधित कमल रजों से व्याप्त अगाध सरोवर में प्रवेश करने का अथवा ललाट मस्तक पर ओले का समुदाय पड़ने से अह्लाद होने का कमल शीत बालुका कोमल कोपल इनका बिछौना मेरे को मिलै ऐसा विचार मन में नहीं करना चाहिये रात और दिन में प्यास अधिक लगती है इस वास्ते धूपसे बचने के लिये पंखा वगैरह के द्वारा ठंडी हवा मिलने के लिये बर्फ वृष्टि होने के लिये वायु बहने केलिये ऐसा विचार कभी नहीं करना चाहिये। मेरे ऊपर असाता वेदनीय कर्म का उदय है उसकी क्या औषधि है ? जब उसका उपशम होगा तब वह असाता दूर हो जायगी ऐसा मन में विचार करना चाहिये। स्पर्शादि विषयों में प्रेम होना रति और अनिष्ट पदार्थों का संयोग अरति है। हास्य कर्म के उदय से उत्पन्न हुये परिणामों को हर्ष कहते हैं। भय उत्सुकता, दीनपना इत्यादि परिणाम आत्मा में उत्पन्न होने पर भी भोगोपभोग के लिये जीव वध करने का विचार मन में कभी नहीं करना चाहिये। कोई त्रैलोक्य और जीवन इन दोनों में से एक ग्रहण करने के लिये कहे तो वह मनुष्य जीवन को ही चाहेगा, क्योंकि यह जीवन त्रैलोक्य की कीमत का है अर्थात् सम्पूर्ण जीवों का जीवन त्रैलोक्य के बराबर का है। इसलिये जीव का घात करना त्रैलोक्य का घात करनेके समान है। तात्पर्य यह है कि जीव घात करना महान् दोष है। इस जगत में अणु से छोटी दूसरी वस्तु नहीं है और आकाश से बड़ी कोई दूसरी चीज नहीं है वैसे ही अहिंसा महाव्रत के समान कोई दूसरा बड़ा व्रत नहीं है। जैसे सर्व जगद् में समस्त पर्वतों में मेरु गिरि बहुत बड़ा है वैसे अहिंसा व्रत संपूर्ण शील और समस्त व्रतों में बड़ा है। यह अहिंसा व्रत गुण और शील सबों का आधार है। ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक ऐसे त्रैलोक्य का आधार आकाश है वैसे ही व्रत गुण और शील ये सब अहिंसा व्रत के आश्रय से रहते हैं। अहिंसा के बिना सर्व शीलों के पालन करने का चाहे जितना प्रयत्न किया जाय पर उनका पालन नहीं किया जा सकता। जैसे धान्य के रक्षणार्थ बाड़ (बेरहा) लगाई जाती है वैसे ही अहिंसा महाव्रत की रक्षा करने के लिये शीलव्रत है। शीलव्रत, गुण ज्ञान निष्परिग्रहता और विषय सुख का त्याग ये सब आचार जीव हिंसा करने वाले के निष्फल हो जाते हैं। शीतलादिक आचार कर्म की निर्जरा और संवर के उद्देश्य से किये जाते हैं परन्तु हिंसा करने से संवर और निर्जरा व्यर्थ हो जाते हैं। यह अहिंसा सर्व आश्रमों का हृदय है। सर्व शास्त्रों का गर्भ और सर्व व्रतों का निचोड़ा हुआ सार है। असत्य बोलने से, बिना दी हुई वस्तु लेने से, मैथुन और परिग्रह से पर (दूसरे) को दुःख उत्पन्न होता है। परन्तु अहिंसा महाव्रत के पालने से इन सब दोषों का त्याग होता है अतः सत्य वचनादिक अहिंसा के ही गुण हैं ऐसा समझना चाहिये। सभी जीवों पर दया करना उत्कृष्ट धर्म है। प्राणियों का नाश करना अपना ही नाश करना है और प्राणियों पर दया करना ही अपने ऊपर दया करना है। जो एक जन्म में प्राणी का घात करता है वह अनेक जन्मों में मारा जाता है। परन्तु जिसने एक बार प्राणियों के ऊपर दया की है वह अनेक योनियों में इन प्राणियों से

रखा जाता है। हिंसा करने वाला मनुष्य पर जन्म में अल्पायुषी, रोगी, कुरूप, अन्धा बहिरा, गूँगा, दुर्बल, मूर्ख अशुभ वर्ण वाला होता है। जो मनुष्य एक प्राणी को भी मारता है वह अनेक कोट्य वध जन्मों में नाना प्रकार से मारा जाता है। चार गतियों में जो २ दुःख इस जीव को प्राप्त होते हैं, वे सब इसी हिंसाके फल हैं। "प्रमत्त योगात प्राण व्यपरोपणं हिंसा" प्रमत्त या प्रमाद योग अपने भाव प्राणों का और दूसरे के द्रव्य तथा भाव प्राणों का नाश करना हिंसा है। प्रमाद परिणत आत्मा ही स्वयं हिंसा है और अप्रमत्त आत्मा ही अहिंसा है। इस लिये मुनिगण सदा प्रमाद से बचकर अहिंसा महाव्रत का पालन करते हैं। सत्य बोलना भी मुनियों का परम धर्म है। वे कभी झूठ नहीं बोलते। असत्य वचन के चार भेद हैं। पहला-असत्य अर्थात् अस्तित्वरूप पदार्थ का निषेध करना, जो नहीं है उसको है करना यह असत्य वचन का दूसरा भेद है एक जाति के सत् पदार्थ को अन्य जाति का सत्पदार्थ कहना असत्य का तीसरा भेद है और निन्द्य वचन बोलना, पाप युक्त वचन बोलना तथा अप्रिय वचन बोलना यह चौथे प्रकार का असत्य वचन है जिस भाषण से प्राणी हिंसा आदि दोष उत्पन्न होते हैं ऐसा भाषण कभी नहीं करना चाहिये हास्य भीति, लोभ, क्रोध, द्वेष इत्यादि कारणों से जो असत्य भाषण किया जाता है वह उसका त्याग मुनिराज करते हैं। पानी चन्दन चन्द्रमोती और चन्द्रकान्तमणि ये पदार्थ उतना आनन्द करने में असमर्थ हैं जितना आनन्द अर्थ युक्त हितकर और मधुर सत्य भाषण उत्पन्न करता है। जो प्राणियों का कल्याण करता वह भाषण सत्य है जैसे अन्न को विष नष्ट करता है, वृद्धावस्था को तारुण्य नष्ट करता है वैसे ही असत्य भाषण अहिंसादि गुणों को नष्ट कर देता। दूसरों के द्वारा नहीं दी गई छोटी या बड़ी वस्तु नहीं ग्रहण करना चाहिये। यहां तककी तृण शलाका भी नहीं ग्रहण करना चाहिये। लोभी मनुष्य जो जो वस्तु देखता है वह वह प्राप्त कर लेने की इच्छा करता है। लोभ वश वह मनुष्य त्रैलोक्य की प्राप्ति होने पर भी तृप्त नहीं होता। लोभ से अनेक दोषों की वृद्धि होती है। लोभ से चोरी करता है। चोरी करने से कारागृह में दुःख भोगता है। चोर के हृदय में दया लज्जा दम और विश्वास ये गुण निवास नहीं करते। चोर अत्यन्त निंद्य और क्रूर कार्य धन के लिये सदा करता रहता है। पर द्रव्य हरण करना पाप आने का द्वार है। इस लिये मुनिगण सदैव अचौर्यव्रत पालन करके अपने धर्म की रक्षा करते हैं। ब्रह्मचर्य का हमेशा पालन करना चाहिये। मन वचन और शरीर से; जिसने पर शरीर के साथ प्रवृत्ति करना छोड़ दिया है ऐसे मुनि दश प्रकारके अब्रह्म का त्याग करते हैं स्त्री सम्बंधी जो इन्द्रियों के विषय हैं उनकी अभिलाषा करना अब्रह्मचर्य है। ज्ञान श्रद्धान और वीतरागता आदिकों में प्रवृत्ति करना ब्रह्मचर्य है। इस लोक व परलोक में जितने दुःख देने वाले हिंसादिक दोष उत्पन्न होते हैं वे सब काम मैथुन की इच्छा से उत्पन्न होते हैं। अब्रह्मचारी सदैव स्त्री का ही चिन्तवन करता है और कल्याण कारक धर्म को भूल जाता है। मुनिगणों को सर्वथा स्त्रियों का त्याग है। इस लिये वे सर्वदा ब्रह्म-

लोभादिक परिणाम से आत्मा बाह्य परिग्रह स्वीकार करता है। परिग्रही मुनि मोक्ष का पात्र नहीं है। राग भाव, लोभ और मोह जब मन में उत्पन्न होते हैं तब आत्मामें परिग्रह संचय करने की बुद्धि उत्पन्न होती है अन्यथा नहीं। परिग्रही को कर्म बन्ध होता है। जिसका मन कर्म बन्ध से भयभीत है उसे परिग्रह का त्याग करना चाहिये। परिग्रह रक्षणादि करते समय हिंसा होती है। उसके लिये झूँठ बोलना है चोरी करता व्यभिचार करता है। इस परिग्रह से अशुभ परिणाम होते हैं। इस लिये मुनिगण परिग्रह के संपूर्ण रूपसे त्यागी होते हैं। शरीर ढकने के लिये वस्त्रादिक कुछ भी नहीं रखते हैं। इसी लिये जैन मुनियों को दिगम्बर कहा जाता है। पंच समिति इस प्रकार है कि मुनिगण गमन करते समय आगे की चार हाथ पृथ्वी देखकर धीरे २ गमन करते हैं, जिस से कोई जीव जन्तु न मर जाय। यह ईर्यासमिति है। सत्य, हित, मित, प्रमाणिक, सुन्दर मिष्ट बचनों का बोलना, कटुक भद्दे खोटे पर को क्लेश पहुँचाने वाले बचन न बोलना भाषा समिति है।

इस तरह से पाँचों इन्द्रियों का निरोध करना जैन मुनियों का परम कर्त्तव्य है।

जनता प्रेस, बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख १-१०-५३ दिन मङ्गलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में आज फिर जैन मुनियों का नित्य कर्म और साधन बतलाया
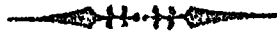
जैन मुनि संसार और शरीर के भोगों से सर्वथा अलिप्त रहते हैं उनकी जितनी क्रियायें हैं सभी आत्मोन्नति साधक स्वपर कल्याण करने के लिये हैं और वे पूर्णतया स्वतन्त्र रहते हैं। इसलिये उनकी कोई क्रिया पराधीनता युक्त नहीं है, गत दिवस पंच महाव्रत, पंचसमिति, पंचेन्द्रिय निरोध का स्वरूप बतलाया जा चुका है, केशलोंच—केशलोंच करने से मुनिकी धर्म के चारित्र के ऊपर बड़ी भारी श्रद्धाव्यक्त होता है। यदि चारित्रा में श्रद्धान होती तो वे इतना दुसह क्लेश क्यों सहन करते ? केशलोंच करने से दुख सहने का अभ्यास हो जाता है अतः वे अन्य दुःख के प्रसंग आने पर डरते नहीं शांतता से सहन करते हैं, केशलोंच न करने से अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। जिसका परिहार करने के लिये मुनि गण केशलोंच करते हैं, प्रथम तो नाई से बाल बनवाने के पैसे चाहिये पैसे मुनिराज के पास रहते नहीं हैं, दूसरे बालों के बढ़ जानेपर उनमें लीख, जुवां इत्यादि जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं। उनका निकालना बड़ा कठिन काम है। निकालने से मरजाने पर हिंसा का दोष लगेगा। इसलिये स्वतन्त्र लिङ्ग वृत्त धारी मुनियों को केशलोंच करना सर्वथा निर्दोष वृत्ति है, प्रति दिन मुनिराज को छः आवश्य कर्म करना पड़ता है इसीलिये इन क्रियाओं का षडावश्यक सार्थक नाम है, सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये नाम हैं जीवन, मरण, लाभ, अलाभ इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग, शत्रु मित्र में, सुख दुःख में, भूख प्यास, शीत उष्ण आदि वाधओं में राग द्वेष रहित समान परिणाम होना इसी को सामायिक कहते हैं यह सामायिक मुनि को त्रिकाल करना पड़ता है जिससे मुनि के परिणाम में समभाव उत्पन्न होताहै ऋषभ अजित इत्यादि चतुर्विंशति तीर्थङ्करों का गुणानुवाद करना उनके चरण युगलों का पूजकर मन वचन, काय की शुद्धता से स्तुतिकरना चतुर्विंशति स्तव है भगवान की स्तुति करने से उनके गुणानुवादों का गान करने

से आत्मा में रागद्वेष की विकल्पता मिट जाती है आत्मीक परमानन्द स्वरूप का बोध होता है, मुनिराज को यह भी त्रिकाल करना चाहिये, अरहन्त प्रतिमा, सिद्ध-प्रतिमा, अनशनादि बारह प्रकार के तप कर वृद्ध तप गुरू, अङ्गपूर्वादि रूप आगमज्ञान से अधिक श्रुत गुरू, अपने को दीक्षा देने वाले दीक्षा गुरू और बहुत काल के दीक्षित वृद्धगुरूः इनको कायोत्सर्गादिक सिद्ध भक्ति गुरूभक्तिरूप क्रिया क्रम से मन बचन काय की शुद्धि से नमस्कार करना बन्दना नामामूलगुण है मुनिराज को यह भी क्रिया त्रिकाल करना चाहिये, आहार शरीरादि द्रव्य में वसति का, शयन, आसनादि क्षेत्र में प्रातःकाल आदिकाल में चित्त के व्यापार रूप-भाव में उत्पन्न हुआ जो व्रत में दोष उसका शुभ मन, बचन, काय से शोधन करना, अपने दोषों को अपने आप प्रकट करना, आचार्यादिकों के समीप आलोचना पूर्वक अपने दोषों को प्रगट करना यह प्रति क्रमण है। मुनिराज का यह मूल गुण है। इससे आगामी काल में होने वाले दोषों के प्रति जागरुकता हो जाती है और कृत दोष शांत हो जाते हैं अतएव यह प्रति क्रमण मुनिराज को अवश्य करना पड़ता है, नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव इन छहों में शुभ मन, बचन, काय से आगामी काल के लिये अयोग्य का त्याग करना अर्थात् अयोग्य नाम नहीं कहूंगा नहीं करूँगा और न चिंतवन करूँगा इत्यादि त्याग भावना को प्रत्याख्यान कहते हैं यह मुनिराज को अवश्य कर्त्तव्य है दिन में होने वाली दैवसिक आदि निश्चय क्रियाओं में अर्हंत भाषित पच्चीस, सत्ताईस, वा एक सौ आठ उच्छ्वास इत्यादि परिणाम से कहे हुये अपने २ काल में दया क्षमा, सम्यग्दर्शन अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय इत्यादि जिन गुणों की भावना सहित देह से ममत्व का छोड़ना कायोत्सर्ग नाम की क्रिया है यह भी मुनिराज को नियमतः करना पड़ता है। इन छः आवश्यक कर्मों के करने पर मुनिराज की आत्मा की उत्तरोत्तर शुद्धि होती जाती है। शांतिता प्राप्त होती है, कर्मों का बन्धना रुकता है संसार, शरीर के भोगों से ममत्व घटता है, साम्यभाव जाग्रत होता है, दया भाव प्रगट होता है, जिससे मुनिस्वयम् अपना कल्याण करते हैं दूसरों को आदर्श उपस्थित करते हैं। जो लोग उनकी क्रियाओं को देखते हैं करने की भावना करते हैं उनका भी कल्याण हो जाता है। केशलोंच दो महीने, तीन महीने चार महीने में उत्कृष्ट, मध्यम जघन्यरूप प्रति क्रमण सहित दिन में किया जाता है उस दिन मुनि को उपवास रहता है अचेलक पना,

वस्त्राजित बल्कैश्च अथवा पत्रादिना असवरणं।
निर्भूषणं निर्ग्रंथ आचेलक्यं जगतिपूज्यम्॥

कपास रेशम, रोम के बने वस्त्र मृगछाला आदि चर्म वृक्षादि की छाल से उत्पन्न सन, टाट अथवा पत्ता तृणआदि इनसे शरीर का आच्छादन नहीं करना चाहिये कड़े, हार आदि आभूषणों से भूषित न होना संयम के विनाशक द्रव्यों कर रहित होना ऐसी तीन जगत कर पूज्य वस्त्रादि बाह्य परिग्रह रहित अचेलक व्रत मूल गुण है इससे हिंसा का उपार्जन रूप दोष प्रक्षालन दोष याचनादि दोष नहीं होते हैं। वस्त्र, धारण करने से अनेक दोष उत्पन्न होते हैं वस्त्रों की रक्षा करना, उनके पुराने होने पर, फट जाने

पर दूसरे वस्त्र की इच्छा से याचना करना, उनमें जूँ इत्यादिक जन्तुवों का उत्पन्न हो जाना और फिर उन्हें निकालने पर उनका मरण होना इत्यादि दोष उत्पन्न होते हैं जिससे जैन मुनि अपने शरीर को वस्त्रों से आच्छादित नहीं करते हैं, इसलिये यह अचेलक गुण सम्पूर्ण दोषों को नष्ट करने वाला है दोष रहित होने से जैन मुनि इसे पालते हैं।

स्नानादि वर्जनेन चविलिप्तजल्ल मल्लस्वेद सर्वांगम्
अस्नानं घोरगुणं संयमद्दिक पालक मुनेः ॥

जल से नहाना रूप स्नाना, उबटन लगाना अँजन लगाना, पान खाना, चन्दनादि का लेप करना इस तरह स्नानादि क्रियायों के छोड़ देने से जल्ल मल्ल स्वेद रूप देह के मैल कर लिप्त हो गया है सब अङ्ग जिसमें ऐसा अस्नान नामा महानगुण मुनिराज के होता है। इससे कषाय निग्रह रूप प्राण संयम, तथा इन्द्रिय निग्रह रूप इन्द्रिय संयम इन दोनों की रक्षा होती है यहां कोई प्रश्न करे कि स्नानादि न करने से अशुचि पना होता है उसका समाधान यह है कि मुनिराज का शरीर व्रतों करके सदा पवित्र है। यदि व्रत रहित प्राणी को जल से शुद्धता प्राप्त होती है, तो मछली, मगर, दुराचारी असंयमी सभी स्नान करने से शुद्ध माने जांयगे परन्तु ऐसा नहीं है जल में अनेक जीव नेत्रों से दिखाई देते हैं और जल के सूक्ष्म जीव जो नेत्रों से नहीं दिखाई देते हैं स्नान करने से ऐसे जल के जीवों की विराधना होती है तज्जन्य हिंसा का पाप लगता है इसलिये संयमी मुनि को अस्नान व्रत ही पालन करना योग्य है। अतएव जैन मुनि स्नान न करके स्नान व्रती होते हैं।

पार्श्वभूमि प्रदेशे अल्पासंस्तरिते प्रच्छन्ने।
दण्डधनुरि व शय्या क्षिति शयनं एकपार्श्वेण ॥१॥

जीव बाधा रहित, अल्प संस्तर रहित, असंजमी के गमन रहित, गुप्त भूमि के प्रदेश में दंडे के समान अथवा धनुष के समान एक पसवाड़े से सोना यह क्षिति शयन नामा मुनिराज का मूल गुण है। कोमल गुदगुदी शय्या, पलङ्ग, इत्यादि पर सोनेसे आलस्य आता है निद्रा जोर से आती है, निद्रा मग्न होने पर धर्म कर्म बिगड जाता है इसलिये मुनिराज रात्रि की पिछली पहर में किंचित शयन करते हैं उनका अधिक समय धर्म साधन में ही व्यतीत होता है इसके लिये आवश्यक है कि साधु भूमि शयन करे।

अँगुलिन खा वलेखनी कलिभिः पाषाण त्वचादिति
दतमला शोधन संयम गुप्ति रहंत मनम् ॥१॥

ऊँगली नख, दांतौन, तृणविशेष, पैनीकंकणी वृक्ष की छाल आदिकर दंतमल को नहीं शुद्ध करना चाहिये अर्थात् दंतौन नहीं करना चाहिये यह इन्द्रिय संयम की रक्षा करने वाला अदंतमन मूलगुण है, दांतौन करने के लिये किसी वृक्ष की हरी डाल तोड़ना पड़ती है अथवा किसी से तो ;वाना पड़ती है साधु को वृक्षकी विराधने करनेका त्याग होता है क्योंकि इससे जीव हिंसा होती है। दांतों को चमकदार करना अथवा उन्हें रंगना यह गृहस्थों का काम है साधुओं का नहीं क्योंकि साधु लोग शरीर से निस्पृह है उन्हें दाँतों को संवारने से क्या प्रयोजन अतएव जैन मुनि दाँतौन नहीं करते हैं इस से उन के इन्द्रिय संयय की रक्षा होती है और वह सर्वथा स्वतंत्र रहते हैं।

अँजुलि पुटेनस्थित्वा कुडयादि विवर्जतेन समपायम् परिशुद्धे भूमि त्रिके अशनं स्थित भोजननंनाम् ॥१॥

अपने हाथों को ही पात्र बनाकर भित्ति इत्यादि के आश्रय रहित चार अँगुल के अँतर से अपने पैरों को समपाद खड़े होकर अपने चरण की भूमि-भूठन पड़ने की भूमि, जिमाने वाले के प्रदेश की भूमि ऐसी तीन भूमियों की शुद्धता से आहार ग्रहण करना स्थिति भोजन नामा मूलगुण है। खड़े होकर आहार ग्रहण करने से किसी पात्र की आवश्यकता नहीं रहती है अपने हाथों को ही मुनिराज पात्र समझ कर दाता के द्वारा रूखा, सूखा, रस नीरस भोजन गृद्धता रहित ले कर अपने शरीर को धर्म कार्य करने के लिये सहकारी बनाने के हेतु भोजन ग्रहण करते हैं। शरीर की पुष्टि के लिये या स्वाद के लिये मुनि भोजन कदापि नहीं करते हैं शरीर की स्थिति देखकर कभी एक उपवास कभी कई २ उपवास कर डालते हैं जिस तरह से शरीर में रोगादिक की वृद्धि न हो शरीर में कोई क्लेश कारकवान उत्पन्न न हो शरीर मात्र धर्म ध्यान में सहकारी बना रहे इसलिये मुनिराज खड़े होकर भोजन करते हैं हाथ में भोजन लेने पर कोई बरतन भूठा नहींहोता है। गृहस्थों को बरतन मांजनेकी झन्झट भी नहीं करनी पड़ती है, हाथ में एक २ ग्रास ही क्षेपण किया जाता है अधिक भोजन तो पात्रों में ही परोसा जा सकता है यदि कोई जीव जन्तु या अशुद्ध पदार्थ उसमें पड़ गया तो सारा का सारा पात्र में पड़ोसा हुआ भोजन बरबाद हो जाता है, मुनिराज के हाथ में ऐसी अवस्था प्राप्त होनेपर मात्र एक ग्रास ही भोजन दूर किया जायगा। इसलिये खड़े होकर पाणि पात्र में आहार लेना सर्वथा निर्दोष है जैन मुनि ऐसा ही करते हैं यह जैन मुनियों का मूलगुणहै

उदयास्त मनयोः कालयोः नालीचिकवर्जिने मध्ये एकस्मिनदयोः त्रिषुवा मुहूर्ते काले एक भक्तुः

सूर्य के उदय और अस्तकाल की तीन घड़ी छोड़कर वा मध्यकाल में एक मुहूर्त दो मुहूर्त तीन मुहूर्त काल में एक बार भोजन करना एक भुक्त नामा मूल गुण है। मुनिराज दिन में केवल एक बार भोजन ले सकते हैं शुद्ध प्रासुक निर्जरा भोजनमिलने परही ग्रहण करते हैं यदि मुनिराज को कोई रोग हो गया हो तो उसके निवारण के लिये भोजन की बेला में ही शुद्ध प्रासुक औषधि गृहस्थ देते हैं। भोजन की बेला के अलावा और किसी दूसरी समय, आहार जल मुनिराज ग्रहण नहीं कर सकते हैं। एक बार भोजन करने से दिन रात्रि के तमाम झँझट दूर हो जाते हैं। चिंता छूट जाती है मुनिराज अधिक से अधिक समय धर्म ध्यान में व्यतीत करना चाहते हैं। इस लिये यह आवश्यक है कि कमसे कम समय उनका ऐसे कार्यों में लगे जिससे शरीरिक संबंध हो, शरीर को उन्हें हृष्ट पुष्ट करना तो है नहीं। वह तो केवल इसे रत्नमय का सहकारी और धर्म ध्यान करने लायक रखने के लिये ही आहार ग्रहण करते हैं। जो लोग रात्रि दिन भोजन करने में लगे रहते हैं उससे धर्म ध्यान बहुत कम बन पड़ता है अधिक भोजन से आलस्य और नींद की वृद्धि होती है।

श्रीपुत्तीलाल की सुपुत्री मोतीदेवी व सरोजनी टिकैतनगर निवासी ने जनना प्रेस बाराबङ्कीमें छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख २-१०-५३ दिन शुक्रवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कलियुग की महिमा को बतलाते हुये कहा कि:—
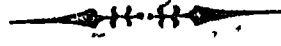
लक्ष्मी लक्षण हीनेषु कुल हीने सरस्वती।
कुपात्रे रमते नारी गिरौ वर्षति माधवः॥

अन्य युगों की अपेक्षा कलियुग की गति बड़ी विलक्षण है। इस युग में लक्ष्मी (धन) लक्षण से रहित, अकुलीन में सरस्वती (विद्या) कुपात्रों के साथ स्त्री रमण करती है और पर्वत पर वर्षा होती है।

दाता दरिद्री कृपणो धनाढ्यः।
पापी चिरायुः सुकृतिर्गतायुः॥
कुले च दास्यं अकुले च राज्यं।
कलौ युगे षड् गुणमावहन्ति॥

कलियुग में अधिकतर छः गुण विपरीत इस प्रकार पाये जाते हैं कि दानी पुरुष दरिद्र, कंजूस पुरुष धनी, पापाचारी दीर्घ जीवी अर्थात् अधिक समय तक जीने वाला, धर्माधारी अल्पायु अर्थात् शीघ्र मरने वाला, कुलीन पुरुष दासता और अकुलीन पुरुष राज्य भोगता है। इस समय क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित प्रायः अधिकांश जन समुदाय सांसारिक भोग विलास को ही सच्चा सुख समझकर केवल भौतिक उन्नति की चेष्टा में ही प्रवृत्ति हो रहा है। इस परम सत्य को लोग भूल गये हैं यह इन्द्रिय संयोग जनित भौतिक सुख नाशवान् क्षणिक और परिणाम में सर्वथा दुःख रूप है। आज कल हमारे अनेक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त विद्वान देशबन्धु जो अपने को बड़ा विचार शील तर्क और बुद्धिमान् समझते हैं, अँग्रेजों के सहवास से तथा उनकी विलास प्रियता और जड़ इंद्रिय चरितार्थता को देखकर पाश्चात्य सभ्यता की माया मरीचिका पर मोहित हो रहे हैं और धर्म शास्त्रोक्त धर्म के सूक्ष्म तत्त्व को न समझ कर प्राचीन आदर्श सभ्यता की अवहेलना कर रहे हैं। उनके हृदय से यह विश्वास उठ गया है कि हमारे प्राचीन ऋषिमुनियों की विचार शीलता, तर्क पटुता और बुद्धि सत्ता हम लोगों से बहुत बढ़ी चढ़ी थी और उन्होंने हमारे उत्कर्ष के लिये जो रास्ता बतलाया है वह हम लोगों के लिये सच्चे सुख की प्राप्ति के लिये सच्चा

मार्ग है। ऐसे विचार रखने वाले बन्धुओं को समझाकर अपने प्राचीन आदर्श की ओर आकर्षित करने की विशेष आवश्यकता है। और इसी से सबका मङ्गल हो सकता है। प्रिय बन्धुओं! विचार करने पर आपको यह विदित हो जायगा कि पाश्चात्य सभ्यता हमारे देश, धर्म, धन, सुख और हमारी जाति तथा आयु को विनांश करने वाली है। इस सभ्यता के संसर्ग से ही आज हमारा देश अपने चिरकालीन धर्म पथ से विचलित होकर अधोगति की ओर जा रहा है।

इसी से हमारी धर्म प्राणि जाति अनार्योचित कायरता और भोग परायणता की ओर अग्रसर होती हुई दिखाई दे रही है। इस प्रकार जो सभ्यता हमारे सांसारिक सुखों का भी विनाश कर रही है उससे सच्चे सुख की आशा करना तो विडम्बना मात्र है। यह सब कलियुग का ही प्रभाव है। अपनी वेष-भूषा, खान-पान और आचार त्याग देने से जाति का नाश होता है जो जाति विचारों की रक्षा करती हुई अपने आदर्श से च्युत नहीं होती उसके अस्तित्व का नाश होना बड़ा कठिन होता है। अतएव हमें अपने प्राचीन ऋषिमुनियों द्वारा आचरित और प्रचारित रहन, सहन वेषःभूपा और स्वाभाव सभ्यता का ही अनुकरण करना चाहिये। स्वधर्म का त्याग करना किसी भी अवस्था में उचित नहीं है। जो लोग इन बातों पर ध्यान नहीं देते हैं। समझना चाहिये कि इनके ऊपर कलिकाल का भूत सवार है 'आज कल चारों ओर विनाशकारी अँग्रेजी शिक्षा का प्रचार हो रहा है। इसी कारण हमारी जाति में अँग्रेजों की देखा देखी अँग्रेजी वेषःभूपा खानपान और आचार विचारों का बड़े जोर के साथ विस्तार हो रहा है इसी के साथ २ अपने धर्म का ह्रास और ईसाई धर्म की वृद्धि हो रही है यह दुर्दशा हमारे सामने प्रत्यक्ष है। इसमें किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। दूसरों के अनुकरण में अपनी जाति भावों को छोड़ने का यही परिणाम हुआ करता है। अतएव सबको यह बात निश्चित रूप से समझ लेनी चाहिये कि पाश्चात्य सभ्यता और उसका अनुकरण हमारे लिये किसी प्रकार भी हित कर नहीं है। इससे हमारे धर्म मयी भावों का विनाश होता है और हमें केवल भौतिक उन्नति के पीछे भटककर सच्चे लाभ से वंचित रहने को बाध्य होना पड़ता है। विचार करने पर हर एक बुद्धिमान् मनुष्य इस बात को समझ सकता है कि मनुष्य जन्म के मिलने से कोई अत्यन्त ही उत्तम लाभ होना चाहिये। खाना, पीना, सोना मैथुन करना आदि सांसारिक भोग जनित सुख तो पशु की यदि नीच योनियों में भी पाई जाती है। यदि मनुष्य जीवन की आयु भी इसी सुख की प्राप्ति में चली गई, तो मनुष्य जन्म पाकर हमने क्या विशेष लाभ किया? मनुष्य जन्म का परम ध्येय तो उस अनुपमेय और सच्चे सुख को प्राप्त करना है जिसके समान कोई दूसरा सुख है ही नहीं। वह सुख है परमात्मपने की प्राप्ति जिनके हृदय पर कलियुग का प्रभाव पड़ा है उनको इन सब बातों का विचार करने की फुरसत ही नहीं मिलती। वह तो केवल धन, स्त्री, पुत्र पुत्रादि विषय जन्य सुख को ही परम सुख मानकर उसी से ही मोहित रहते हैं। सच्चे सुख में

लोगों की श्रद्धा ही बहुत कम होती है, कारण विषय सुखों की भाँति इसके साधन में पहिले से सुख नहीं दिखाई देता। इसी से तत्परता का अभाव रहता है। कुछ लोग इस सुख का सम्पादन करना अपनी शक्ति से बाहर की बात समझकर निराश रहा करते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई कारण बतलाये जा सकते हैं, परंतु इन सबमें सच्चा कारण केवल अज्ञानता और अकर्मण्यता ही है। अतएव मनुष्य को सावधान होकर उत्साह के साथ कर्त्तव्य परायण करना चाहिये। आजकल कलियुगी मनुष्य उपरोक्त बातों की ओर किंचित् भी ध्यान नहीं देते हैं जिससे उनका मनुष्य जन्म पशु तुल्यवत् निरर्थक चला जाता है। और अपने हित की बात को नहीं सोच सकते हैं। यह बड़े दुःख की बात है। रात्रि दिन विषय वासनाओं में फँसे रहना सच्चे सुख की प्राप्ति का कोई प्रयत्न न करना बड़े खेद की बात है। सांसारिक विषयों को परिणाम में हानि कारक मानकर भय से या दुःख रूप समझकर घृणा से ही उनका त्याग करना चाहिये। दाद की खाज खुजलाते समय बहुत ही सुखद मालूम होती है परन्तु अन्त में जलन होने पर वही महान् दुःखद हो जाती है यही विषय सुखों का परिणाम है, इसलोक के सभी विषय सुख परिणामतः दुःख रूप हैं। पुत्र, स्त्री स्वामी, धन मकानादि सभी पदार्थ हर समय जलाते रहते हैं कोई विषय ऐसा नहीं है जो विचार करने पर जलाने वाला प्रतीत न हो इसके सिवा जब मनुष्य अपने से दूसरे को किसी विषय में अधिक बढ़ा हुआ देखता है, तो अपने अल्प सुख के कारण उसके हृदय में बड़ी जलन उत्पन्न होती है। शुद्ध विचारों के न होने से यह दुःखदाई कार्य हृदय को आघात पहुँचाता है। आज कल कलियुग के प्रभाव से लोग अपने माता-पिता तथा गुरुजनों की सेवा में भी आलस्य करते हैं। यह बात सर्वथा अयोग्य है। जो विचार शील मनुष्य हैं वे अपने माता-पिता और आचार्य एवं अन्य भी पूजनीय पुरुष अवस्था और गुणों में किसी प्रकार भी अपनेसे बड़े हों उन सबकी सब प्रकार से नित्य सेवा करना और उनको प्रणाम करना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते हैं कलियुग के ऊपर एक दृष्टांत दिया जाता है।

एक वैद्य जी बड़े ही योग्य थे। वह अपने ग्राम के चारों ओर प्रसिद्ध थे। वैद्य जी के एक पुत्र अत्यन्त ही रूपवान् और बड़ा ही चंचल था वैद्य जी ने अपने पुत्र के पढ़ाने का बहुत कुछ भी प्रयत्न किया, पर वह एक अक्षर भी नहीं सीखा कुछ काल के पश्चात् वैद्यराज का देव लोक हो गया, जिससे कि सारा व्यापार बन्द हो गया।

अब तो वैद्यराज के पुत्र सोचने लगे कि इस प्रकार बैठे-बैठे कैसे काम चलेगा? दादा जी वाला झोला अर्थात् औषधियों की पोटरी मौजूद ही है, गद्दी भी दादा जी वाली मौजूद है और हाथ भी हमारे मौजूद हैं, फिर वैद्यकी क्यों बन्द कर दी जाय? यह विचार कर लोगों को औषधि देने लगे, परन्तु फल उल्टा होने लगा जहाँ वैद्यराज के समय में लोग औषधि से अच्छे हुआ करते थे, वहाँ इनकी औषधि से लोग मरने लगे और यह होना ही था।

अब तो लोगों ने वैद्यराज के पुत्र से कहा कि—"महाराज आपके पिता के समय में तो

लोग अच्छे हो जाते थे, पर जबसे आप औषधि करने लगे तब से जिसकी आप औषधि करते हैं वही मर जाता है, यह क्या बात है ?" वैद्यराज के पुत्र ने उत्तर दिया कि "भाई, झोला वही, औषधि वही और गद्दी भी वही है, लेकिन अब कलियुग है। इसलिये, लोग विशेष मरते हैं, क्योंकिः—

'नकाल योगितो व्यापिनो नित्यस्य सर्व संबंधात्,

परन्तु याद रहे कि काल सुख दुःख का कारण है। यदि काल कारण है, तो उस काल में सबकी एक दशा होनी चाहिये, पर यह नहीं होती, इससे निश्चय है कि काल सुख दु.ख का कारण नहीं।

कलियुग नहीं करयुग है यां करके तजरबा देख लो
क्याखूब सौदा होरहा इस हाथ दो उसहाथ लो

कलिकाल की महिमा का वर्णन बहुत अधिक है। उनमें से दो एक श्लोक द्वारा पुनः समझा रहे हैं।

सदिन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्तः।
पुत्रा म्रियन्ते जनक श्चिरायुः॥
परेषु मैत्रीं स्वजनेषु वैरं।
पश्यन्तु लोलाः कलि कौतुकानि॥

साधु गण शिथिल रहते हैं असाधु विलास करते हैं, पुत्र शीघ्र मर जाते हैं, पिता बहुत दिनों तक जीवित रहते हैं, पर जनों के साथ मित्रता होती है और स्वजनों (आत्मीय जनों) के साथ शत्रुता होती है। ऐ धर्म बन्धुओं ! देखिये यह कलिकाल का ही कौतुक है।

न देवे देवत्वं कपट पटवस्तापस जना।
जनो मिथ्यावादी विरलतर वृष्टिर्जलधरः॥
प्रसंगो नीचानामवनि पतयो दुष्ट मनसो।
जना भ्रष्टा नष्टा अहह कलिकालःप्रभवति॥

अर्थ—देव में देवतापन नहीं, तपस्वी गण कपट में दक्ष, मनुष्य असत्य भाषी, मेघ यत्रतत्र (जहां तहां) वर्षा करने वाला, अधर्मों की संगति, राजा दुष्ट चित्त वाले और जन नष्ट-भ्रष्ट मति वाले होते हैं। आश्चर्य है ! कि उपरोक्त सभी व्यति क्रम कलिकाल के प्रभाव से ही होते हैं। और भी कहा है किः—

सन्तः क्वापि न सन्ति यदि वा दुःखेन जीवंतिते,
विद्वांसोऽपि न सर्तिसर्ति यदिवा मात्सर्य युक्ताश्चते
राजानोऽपिन सर्तिसर्ति यदिवा लोभाद्धनं ग्रा हणो
दातारोऽपि न सर्ति सर्ति यदिवा सेवानुकूलाःकलौ

अर्थ—सन्त कहीं दिखाई नहीं पड़ते और यदि हैं भी तो वे दुःखी विद्वान नहीं हैं, यदि हैं भी तो वे मत्सर से परिपूर्ण, राजा नहीं हैं, यदि हैं तो वे लोभ से धन ग्रहण करने वाले और दानी नहीं हैं, यदि हैं भी तो जो उनकी सेवा करते हैं उन्हें दान देते हैं, यह सब कराल कलिकाल की ही महिमा है।

धर्मपत्नी अँजनादेवी स्वर्गीय अजितप्रसादजी जैन टिकैतनगर निवासी न जनना प्रेस बाराबङ्कीमें छपाय

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख ३-१०-५२ दिन शनिवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि सन्त पुरुषों में अपार दया होती है।
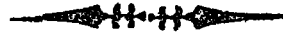
सन्त महापुरुषों में अपार दया होती है। उनमें अदया का नाम भी नहीं रहता, तो भला उन महात्माओं में कठोरता, वैर और द्वेष कैसे रह सकते हैं? वे इतने दयालु होते हैं कि दूसरे के हित को ही अपना हित समझते हैं। उन पुरुषों में विशुद्ध दया होती है। सामान्य मनुष्य जो दया, कायरता, ममता, लज्जा, स्वार्थ और भय आदि के कारण करते हैं वह शुद्ध नहीं कही जा सकती है। जैसे भगवान की बिना कारण दया समस्त जीवों पर है। उसी प्रकार सन्त महापुरुषों की दया बिना कारण सब पर होती है। उनकी कोई कितनी ही बुराई क्यों न करे, पर बदला लेने की इच्छा उनके हृदय में होती ही नहीं। यदि कहीं बदला लेने की-सी क्रिया देखी जाती है, तो वह भी उसके दुर्गुणों को हटाकर उसे विशुद्ध करने के लिये ही होती है। इस क्रिया में भी उनकी दया छिपी रहती है। जैसे माता, पिता, गुरुजन, बच्चे की सुधार के लिये स्नेह पूर्ण हृदय से उसे दण्ड देते हैं। उसी प्रकार सन्तों में भी कभी २ ऐसी क्रिया होती है परन्तु इसमें भी परमहित भरा रहता है। ऐसे सन्त करुणा के भंडार होते हैं। जो कोई उनके समीप जाता है वह मानो दया के सागर में गोते लगाता है। उन सन्त महापुरुषों के दर्शन भाषण, स्पर्श और चिन्तन में भी मनुष्य उनके दयाभाव को देखकर मुग्ध हो जाता है। वे जिस मार्ग से निकलते हैं मेघ की तरह दया की वर्षा करते हुये ही निकलते हैं। मेघ हर समय और हर जगह नहीं बरसता, परन्तु सन्तमहापुरुष तो सदा सर्वदा, सर्वत्र दया रस बरसाते ही रहते हैं। उनके दर्शन, भाषण, चिन्तन और स्पर्श से सारे जीव पवित्र हो जाते हैं। उनके चरण जहां पड़ते हैं, वह भूमि परम पावन हो जाती है। उनके चरणों से स्पर्श की हुई रज (धूलि) स्वयं पवित्र होकर दूसरों को पवित्र करने वाली बन जाती है उनने समीप में आने वाले हिंसक जन्तु अपना जन्म जात वैर छोड़कर आपस में मित्र बन जाते हैं। उनके द्वारा देखे

हुये चिन्तवन किये हुये और स्पर्श किये हुये पदार्थ भी पवित्र हो जाते हैं। फिर उनके कुल की विशेषता, उनके माता पिता आदि जन्म देने वाले की बात ही क्या है? ऐसे महापुरुष जिस देश में जन्मते हैं और शांत होते है वे देश तीर्थ माने जाते हैं आज तक जितने तीर्थ बने हैं। वे सब भगवान और भगवान के भक्तों के निमित्त से ही बने हैं। इतना ही नहीं सब लोकों को पवित्र करने वाले तीर्थ भी उनके चरण स्पर्श से पवित्र हो जाते हैं।

कुल पवित्र जननी कृतार्थी।
वसुन्धरा पुन्यवती चनेन॥
अपार संविन्सुख सागरेऽस्मि।
लीनं परे ब्रह्मणि यस्यचेतः॥

जिसका चित्त अपार संवित्सुख सागर में लीन है, उसके जन्म से कुल पवित्र होता है। उसकी जननी कृतार्थ होती है और पृथ्वी पुन्यवती हो जाती है,

यह सब उनके द्वारा स्वाभाविक ही होता है। उन्हें कुछ नहीं करना पड़ता। भगवान् तो भजने वालों के मनोरथों को पूर्ण करते हैं। परन्तु वे दयालु सन्त महापुरुष नहीं भजने वाले का, यहां तक की गाली देने वाले और अहित करने वाले का भी हित ही करने में तुले रहते हैं कुल्हाड़ी चन्दन को काटता है, पर चन्दन उसे स्वाभाविक अपनी सुगन्ध ही देता है।

काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुनदेइ सुगन्ध बसाई॥

विनोद में भक्त को भगवान् से बढ़कर बतलाना भी युक्ति युक्त ही है। सन्त जन सुर सरिता और सुर तरु से भी विशेष उपकारी हैं, गङ्गा और कल्प वृक्ष उनकी शरण होने पर क्रमशः पवित्र करते और मनोरथ पूर्ण करते हैं, परन्तु सन्त पुरुष तो इच्छा करने वाले और न करने वाले सभी के घर स्वयं जाकर उनके इस-लोक और परलोक के कल्याण की चेष्टा करते हैं। इस पर यदि यह कहा जाय कि सन्त जब सब का हित चाहते हैं, तो सबका हित हो क्यों नहीं हो जाता? तो इसका समाधान यह है। कि सामान्य भाव से जिन लोगों की भेंट सन्तों से हो जाती है, उन सभी का हित होता है, परन्तु विशेष लाभ तो श्रद्धा और प्रेम होने पर ही होता है। यदि यह कहा जाय कि हठात् सन्त सबका हित क्यों नहीं कर देते हैं? तो इसका समाधान यह है कि जबरदस्ती कोई किसी का हित नहीं कर सकता! पतङ्ग दीपक में जलकर मरते हैं, दयालु पुरुष लालटेन या दीपक को बुझाकर उनका परम हित करना चाहते हैं, किन्तु वे पतङ्ग जहां दूसरे दीपक जलते रहते हैं वहां जाकर जल मरते हैं। इसी प्रकार जिन लोगों को कल्याण करने का स्वयं इच्छा नहीं होती, उनका कल्याण करना बहुत ही कठिन है। यदि यह कहा जाय कि सन्त पुरुष श्रद्धा और प्रेम करने वाले पुरुष का विशेष कल्याण करते हैं, दूसरों का सामान्य करते हैं, सन्त पुरुषों में यहविषमता क्यों? तो इसका उत्तर यह है कि ऐसी बात नहीं है। श्रद्धा और प्रेम की कमी के कारण यदि लोग सन्तों की सब पर छाई हुई समान अपरिमिति दया से लाभ नहीं उठा सकते, तो इसमें उनका दोष नहीं है। सूर्य बिना किसी पक्षपात या संकोच के सभी को समान भाव से प्रकाश देता

है, दर्पण में उसका प्रतिबिंब पड़ता है, परन्तु सूर्य-कांत शीशा सूर्य के प्रकाश को पाकर दूसरी वस्तु को जला देने वाला बन जाता है। इसमें सूर्य का दोष या पक्षपात नहीं है। इसी प्रकार जिसमें श्रद्धा-प्रेम नहीं है वे काष्ट की भांति कम लाभ उठाते हैं श्रद्धा-प्रेम वाले सूर्य कांत शीशे की भाँति अधिक लाभ उठाते हैं। सूर्य सबको प्रकाश देता है, परन्तु उल्लू को उस प्रकाश में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। चन्द्रमा की फैली हुई चांदनी को चोर बुरा समझता है। इसमें चन्द्रमा का कोई दोष नहीं है; वह तो सबका उपकार ही करता है। इसी प्रकार महापुरुष तो सभी का उपकार ही करते हैं; किन्तु अत्यन्त दुष्ट और नीच प्रकृति वाले पुरुष उल्लू की भांति अपनी मूर्खता के कारण उनसे द्वेष करते हैं और चोर की भांति उनकी निन्दा करते हैं, इसमें सन्तों का क्या दोष है? यदि कहा जाय कि ऐसे दयालु सन्तों से जब प्रत्यक्ष ही सबको परम लाभ है, तो सभी लोग उनका सत्संग सेवन करके लाभ क्यों नहीं उठाते हैं? इसका उत्तर यह है कि वे लोग सन्तों के गुण प्रभाव और तत्त्वों को नहीं जानते। तत्त्व जाने बिना कोई विशेष लाभ नहीं उठा सकता। एक कुत्ता था। उसने गुड़ की हांड़ी में अपना मुंह डाल दिया। हांड़ी में खड़ खड़ाहट की आवाज हुई, कुत्ता ने भागना चाहा। इसी गड़बड़ी में हांड़ी फूट गई। हांड़ी की गर्दनी कुत्ते के गले में रह गई, कुत्ते को कष्ट पाते देखकर एक दयालु मनुष्य हाथ में लाठी लेकर इसलिये कुत्ते के पीछे दौड़े कि लाठी से कुत्ते की गर्दनी तोड़ दी जाय तो कुत्ता कष्ट से छूट जाय। कुत्ते ने समझा कि यह मनुष्य मुझे मारने के लिये दौड़ा चला आ रहा है। उसके असली उद्देश्य को नहीं समझा। इसलिये वह और जोर से भागा और उसका कष्ट दूर नहीं हो सका। इसी प्रकार महापुरुषों के तत्त्व को न समझकर उनकी क्रिया में भी विपरीत भावना कर सभी लोग लाभ नहीं उठा सकते।

सन्तों में समता—ऐसे महापुरुषों की दया ही नहीं, बल्कि समता भी बड़ी अद्भुत होती है। उन्हें यदि समता की मूर्ति कहें तो भी कोई अत्युक्ति नहीं है। भगवान् सम हैं और उन सन्तों की भगवान् में स्थिति है। इसलिये वे भी स्वाभाविक ही समता को प्राप्त हैं। जैसे सुख दुःख की प्राप्ति होने पर अज्ञानी पुरुष की शरीर में समता रहती है वैसे ही सन्तों की चराचर सब जीवों में समता रहती है। अज्ञानी लोग अपने देह की स्वार्थ के लिये जहां दूसरे का अहित कर डालते हैं वहां ये सन्त पुरुष दूसरों के हित के लिये हँसते २ अपने शरीर की बलि चढ़ा देते हैं। परन्तु उनकी यह समता इतनी अद्भुत है कि दूसरों के हित के लिये सभी का बलिदान कर देने पर भी उसमें कोई विषमता नहीं आने पाती। गीता में कहा है किः

विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनी।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥

वे सन्त पुरुष विद्या और विनय युक्त ब्राह्मण में तथा गौ हाथी कुत्ते और चाँडाल में भी समदर्शी ही होते हैं। इसका उल्टा अर्थ करते हुये लोग कहते हैं कि खान पानादि में व्यवहार करना ही सम दर्शन है, परन्तु ऐसा समव्यवहार न तो सम्भव है। न आवश्यक है और न

भगवान् के कथन का यह उद्देश्य ही है क्योंकि हाथी सवारी के योग्य है, कुत्ता सवारी के योग्य नहीं, गौ का दूध सेवन करने योग्य है। कुत्तिया और हथिनी की नहीं। इन सबके खाद्य, व्यवहार, स्वरूप, आकृति जाति और गुण एक दूसरे से अत्यन्त विलक्षण और भिन्न होने के कारण इन सब में समान व्यवहार नहीं हो सकता है। न करना ही चाहिये और न करने के लिये कोई कह ही सकता है। जैसे अपने लिये सुख और सुख के साधन की प्राप्ति और दुःख और दुःख की निवृत्ति के लिये प्रयत्न किया जाता है वैसे ही सब में एक ही आत्मा सम रूप स्थित है इस बात का अनुभव करते हुये सबके लिये जिस प्रकार से उनका हित हो उसी प्रकार से यथा योग्य व्यवहार करना ही वास्तविक समता है।

जैसे हम अपनी देह में हाथों से ग्रहण करने का आंखों से देखने का कानो से सुनने का इस प्रकार विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा विभिन्न यथा योग्य व्यवहार करते हैं परन्तु आत्मीयता की दृष्टि सेवन में समता है, वैसे ही सबके साथ यथा योग्य व्यवहार करते हुये आत्मीयता की दृष्टि सेवन में समता रहनी चाहिये, शास्त्रीय विषमता व्यवहार में दूषित नहीं हैं। बल्कि परमार्थ मे सहायक है जिस विषमता से किसी का अहित हो वही वास्तविक विषमता है स्त्रियों के अवय एक से होने पर भी माता, बहिन और पत्नीके साथ सम्बन्ध के अनुसार ही यथायोग्य विभिन्न व्योवहार होते हैं और यह विषमता शास्त्रीय और न्याय संगत होने से सेवनीय है। इतना नहीं परमपूजनीया माता में पूज्य भाव होने पर भी रजस्वला या प्रसव की स्थिति में हम उसका स्पर्श नहीं करते करने पर स्नान करने की विधि है, ऐसी विषमता वस्तुतः विषमता नहीं हैं इसके मानने में लाभ है और न मानने में हानि घर में कुत्ते को रोटी देते हैं। गाय को घास देते हैं बीमार को दवाई दी जाती हैं परन्तु सभी को घास, दवाई या रोटी समान नहीं दी जाती है यह विषमता विषमता नहीं है जैसे कोई भी अपने आत्मा का जान बूझकर अहित नहीं करता उसे दुःख नहीं देता और अपना कल्याण चाहता है, एवं सुख तथा कल्याण के लिये चेष्टा करता है इसी प्रकार किसी को दुःख न पहुँचाकर अहित न चाहकर सबका कल्याण चाहना और सुख पहुँचाने की चेष्टा करना ही समता है फिर व्यवहार में कितनी ही यथायोग्य विषमता क्यों न हो विषमता नहीं है मान लीजिये हमसे कोई मित्रता करता है और दूसरा कोई वैर करता है उन दोनों के न्याय का भार प्राप्त हो जाय तो हमें पक्षपात रहित होकर न्याय करना चाहिये। बल्कि कहीं अपने मित्रको समझाकर उसकी सम्मति से शत्रुता रखने वाले का कुछ पक्ष भी करले तो वह भी समता ही है, अतएव सन्त पुरुषों की दया और समता बिना कारण दूसरों के हित के ही लिये होती है इसमें रत्र मात्र भी शंका नहीं है। वे परमलोकोपकारी हैं दयालु हैं उनकी सेवा, अभ्यर्चना से अपना परम कल्याण साधन किया जा सकता है।

—※—

धर्मपत्नी राजकुमार (शान्तीदेवी) जी जैन मोहना निवासी ने जनना प्रेस बाराबङ्की में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख ४-१०-५३ दिन रविवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि आत्मा उसी प्रकार अतृप्त है जैसे समुद्र जल से कभी तृप्त नहीं होता है
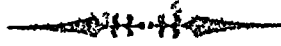
समुद्र जल के प्रभाव से तृप्ति नहीं होता, हजारों नदियों के जल से भी तृप्त नहीं होता अग्नि में चाहे जितना ईंधन छोड़ा जाय परन्तु अग्नि तृप्त नहीं हो सकती है ऐसी ही मनुष्य की आशा कभी पूरी नहीं होती है जीव अनेक प्रकार के भोगोपभोगों से कभी तृप्त नहीं होता है सांसारिक प्राणियों की इच्छा पूर्ति कभी नहीं होती है, वे रात दिन इसी की चिंता में लगे रहते हैं। हे जीव! जिस तृष्णा के पीछे तू अनादि काल से लगा हुआ है क्या कभी उसकी तृप्ति कभी हो सकती है परन्तु आशा कभी नहीं छोड़ता है, काम भोगादिकों से तृप्त नहीं हो सकता है यद्यपि विषय जनित सुख दुर्गति का कारण है मनुष्य को इच्छानुसार विषय भोग मिलना बड़ा कठिन है मनुष्य विषय को चाहता है कभी रोता है कभी हँसता है सांसारिक क्षणिक वासना के लिये परन्तु इस समय क्या हो रहा है और आगामी क्या होगा। आचार्य कहते हैं कि जीव का आर्तध्यान के वश से जब मरण होगा तब दुर्गति में जाकर यह नानाप्रकार के दुःख कैसे सहन करेगा यहबात हमारी समझ में नहीं आती है जो चीज मिलतीहै उसकी रक्षा करने की चिंता पैदा होती है उसके लिये सबके पास जाकर कहता है कि मेरी रक्षा करो जितनी संपत्ति मिलती है उतना उतना धर्म दूर होता जाता है संगति बढ़ने पर खान पान की चिंता अधिक होने लगती है कोई पण्डित धर्मात्मा आगये और कोई पूजन पाठ के लिये कहने लगे तो उत्तर मिलता है आजकल व्यापार में बड़ा घाटा है क्या करें कुछ बनता नहीं है किन्तु यह मालूम है कि चाहे कोई आपत्ति हो या विपत्ति हो किसी न किसी दिन यह छोड़ना पड़ेगा। परन्तु फिर इस की तृष्णा नहीं छूटती है तृष्णा का विस्तार तीन लोक तक फैला हुआ है अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प करता रहता है। संसार में जब आया तो एक छोटा सा बरतन साथ लाया है। कुंवा में उसे बार २ डुबोता है कि अधिक जल आजाय किंतु कैसे छोटे पात्र में अधिक जल आ सकता है। पूर्वभवसे जितना पुण्य तुम्हारे साथ

आया है उतना बैठे २ भी मिल जाता है। इस जन्म में यदि कमाई ठीक करोगे तो अन्य जन्म में बड़ा पुन्य साथ में लेकर जा सकते है रोना धोना, निंद्य है और दुर्गति का कारण है। पुन्योपार्जन करके चक्रवर्ती का भोग भोगना चाहिये परन्तु धर्म ध्यान की चिंता सदैव रहनी चाहिये मनुष्य बिना पूछका बन्दर है केवल मनुष्य जन्म हमने प्राप्त किया परन्तु धर्म कमाई करना नहीं चाहते दो भाई थे दोनों भाई रोज कमाते थे परन्तु चार आने से अधिक नहीं मिलते थे कुछ दिनों में कई बाल बच्चे हो गये पूरा भोजन नहीं मिलने लगा। आज कल पंचमकाल में स्वर्ग नजदीक हो गया है लखनऊ का अमीनाबाद आज का स्वर्ग है एक बार भी अमीनाबाद टहल कर आ जाय तो बिजली, पंखा, पायखाना, इत्यादि सभी आराम की चीजें चाहिये स्त्रियां कहती हैं कि सभी व्यवस्था घर में होना चाहिये तेरह बिजुली बारह पंखा जिनके लगे मकानों में, जहां ऐसी व्यवस्था है उसे सभी चाहते हैं जिनकी स्त्री धर्मात्मा हो धर्मज्ञ हो ऐसी स्त्री बड़े पुन्योदय से होती है दोनों ब्राह्मण भाइयों की स्त्रियां बड़ी दुष्टा थीं कहती थी कहीं जाकर द्रव्य लावो चार आने में क्या होता है राजा के दरबार में गया मन्त्री ने उन दोनों ब्राह्मणों से कहा कि राजा साहब अभी आते है जैसे ही आवे उनको आशीर्वाद देना तुमको कुछ मिलेगा राजा साहब आये ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया राजा ने अपनी जेब में हाथ डाला तो दो रुपए निकले निकाल कर दोनों रुपए दे दिए रुपया लेकर ब्राह्मण एक स्थान पर सोरहे वहां डाकुओं ने आकर रुपया निकाल लिया अन्त में खाली रह गए एक सेठ के लड़के को देखकर विचार करने लगे कि इसके गले में बहुमूल्य हार है इसे मार कर इस का हार लेलें तो बहुत काम चलेगा दोनों आपस में विचार करने लगे कि हम हारलें दूसरा विचार करता था कि हम हारलें। अन्तमें ऐसा संयोग हुआ कि किसी को भी कुछ नहीं मिला। जो कुछ मिला था वह डाकू लेगये कहने का प्रयोजन यह है कि जितना मिलना है। जितना कमाया है उतना ही मिलैगा अधिक तृष्णा करना बेकार है पुन्य हीन को कुछ नहीं मिलता है सन्तोष से रहने में लाभ है जब यह निश्चय हो कि जितना मिलता है उतना ही मिलेगा ज्यादा चितामें न फंसे और कुछ कल्याण हो जाय परन्तु जब तक तृष्णा लगी हुई है शरीर साथ है और शरीर के साथ अनेक रोग हैं भोगों की लालसा भी शरीर से ही है घण्टा भर में हजार रुपया मिलने वाले हो तो घण्टा दो घण्टा की तकलीफ को कोई कुछ नहीं गिनता है थोड़ा सा कष्ट धर्म साधन में होता हो तो इसे अवश्य करना चाहिये परन्तु हम लोग पहाड़ के समान पाप की कमाई करते हैं अँगुली के समान धर्म साधन भी करें तो बहुत दिनों जो पहाड़ समान पाप गल जावे। जो इन्द्रियों को वश न कर मोक्ष सुख चाहता है वह पर्वत के ऊपर टक्कर मार कर अपने सिर को ही फोडैगा। हे आत्मन् इस जगत में विषय जन्म सुख वास्तव में सुख नहीं हैं यह तो दुःख का बीज है। धूर्तों के प्रपचों से क्या लाभ है यदि तुम सुख चाहते हो तो भगवान के मार्ग का सहारा लो, किसी बच्चे को कोई मार देता है तो बच्चा अपनी मां को पुकार कर रोता है।

उसी तरह जो मनुष्य कष्ट में भगवान का नाम लेवें और भगवान के गुणों का स्मरण करे तो उसे सुख प्राप्त हो सकता है।

विषय जन्य सुख को जैन शास्त्र में दुःख ही कहा है। भर्तृहरि और शुभचन्द्र आचार्य दोनों भाई २ थे शुभ चंद्राचार्य दिगम्बरी दीक्षा में दीक्षित होगये थे भर्तृहरि जो अपनी स्त्री पिंगला के चरित्र को देखकर वैरागी हो गये थे। परन्तु भर्तृहरि सांसारिक बासनाओं की ही आराधना करतेथे शुभचंद्राचार्य को अपने भाई के सुधारने की इच्छा बलवती हुई। भर्तृहरि जी तपस्या कररहे थे कहीं से इनको एक रसतुम्बी प्राप्त हो गई। जिसे पाकर भर्तृहरि जी बहुत प्रसन्न हुये सोचने लगे कि अपने भाई के पास भेज दूं तो वे भी सुखी हो जावें इस विचार से भर्तृहरि जी ने अपने शिष्यों को रसतुम्बी देकर अपने भाई के पास भेजा। वे लोग शुभचंद्राचार्य के पास पहुँचे और उनसे प्रार्थना किया कि महाराज आप के भाई भर्तृहरि जी ने यह रसतुम्बी आप के पास भेजा है इससे सोना बना कर भोगोपभोग की सामिग्री प्राप्त कर सकते हैं। शुभचंद्राचार्य ने लेकर उसे जमीन पर फेंक दिया। यह देखकर शिष्य बहुत दुःखी हुआ कहने लगा कि महराज न मालूम किस तरह यह मिली थी आपने इसे फेंक दिया अब हम क्या कहेंगे।

आपको भाई समझकर उन्होंने भेजा था। आपने कुछ विचार नहीं किया शुभचंद्राचार्य ने कहा कि देखो आचार्य महाराज ने थोड़ा सा कमंडल का जल लेकर जिस शिला पर तपस्या कर रहे थे उसपर छिड़क दिया वह शिला सोने की हो गई, अब शिष्य बड़ा चकित हुआ, और पैरों पर गिर पड़ा, भर्तृहरि जी को सम्बोधन के लिये आचार्य ने अनेक उपदेश दिया।

शुभचन्द्राचार्य ने कहा यदि तुम्हें सोना की चाहना थी तो राजपाट क्यों छोड़ा अभी तक विषय वासना तुम्हारी दूर नहीं हुई, सांप के दांत से खुजलाने पर क्या खुजलाहट दूर हो सकती है उलटे विष से विपाक्त हो जायगी। खेद है कि सँसार में मोह में फँसे हुये जीव कभी इससे निकलना नहीं चाहते हैं इससे विरक्त नहीं होते हैं अपितु इसमें फँसकर आगामी काल में अनेक प्रकार के दुःख सहना पड़ेंगे, मछली रसनाइन्द्रिय के वश होकर अपना गले में फांसी लगवा लिया, मनुष्य के पैर में स्त्री रूपी बेड़ी छोड़ दी जाती हैं। एक दो सन्तान होने पर और उसमें फँस जाता है, हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के वश होकर गड्ढे में गिर जाता है रस का लोलुपी भ्रमर कमल में बन्द हो जाता है। और हाथी आकर उसे तोड़कर खा जाता है। गान के वशीभूत होकर हरिणी मारी जाती है। जब एक २ इन्द्रिय के वश में रहने वाले जीव मरण को प्राप्त हो जाते तो भला जो मनुष्य पांचों इन्द्रियों के विषयों में फँसा है। इसका उद्धार कैसे हो सकता है, पारस पत्थर मिल जाने पर भी सोना नहीं बन सका। क्योंकि समय खतम हो रहा है लोहा सस्ता हो गया। तब खरीदेंगे इतने में मुद्दत पूरी हो गई। पारस पत्थर देने वाला अपने समय पर ले गया। कुछ काम नहीं बन सका, इसलिये जब तक समय है धर्म ध्यान करके अपना हित करलो, अन्यथा आयु कर्म पूर्ण हो जायगा, यमराज आकर ले जायगा तो केवल पछिताना हाथ लगेगा और

कुछ नहीं प्राप्त होगा।

एक बाबा जी का एक चेला था रात दिन वह उन्हीं के पास रहता था बाबा जी के पास १ झोला था उसमें पारस मणि रखते थे, एक दिन बाबा जी ने कहा कि मेरे झोले में १ लोहे की डिबिया है उसमें पारस मणि रखी है उसे लेते आवो चेला कहने लगा कि लोहेकी डिबिया तो सोने की हो जाना चाहिये, गुरु जी ने कहा कि तू ले आ चेला ले आया खोलकर बाबा जी ने देखा मणि रखी है बाबा जी ने कहा कि यह मणि कपड़े में लपेट कर रखी है इसलिये लोहा सोना नहीं बन सका है इसी तरह मनुष्यों के पास पारस मणि मौजूद है उस पर कर्मावरण पड़े रहने के कारण सोना नहीं बन रहा है बाबा जी कहते हैं कि उसे हटाने से ही सुख शांति मिल सकेगी।

आशा ही परमंदुःखम् नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा संधिच्य कांतांशाम् सुख सुस्वापपिंगला॥

आचार्य कहते हैं कि यदि तुम सुख चाहते हो तो इस शुभ अवसर को मत खोवों धर्म साधन करो तो अवश्य तुमको सुख मिल सकता है। बिना मांगे ही सुख की प्राप्ति हो सकती है जिसने भगवान की तरफ ध्यान न दिया। उसका सम्पूर्ण संसार बिगड़ गया जिसने भगवान का मार्ग ग्रहण कर लिया उसे चक्रवर्ती का सुख मिल सकता है, यदि बिना मन के भी भगवान का नाम मुख से लिया जावे तो कालांतर में लाभकारी हो जायगा बाप दादा के परिचय से मनुष्य की इज्जत होती है आदर मिलता है पापी से पापी भी भगवान का नाम लेने पर पूज्य बन जाता है तुमको तो उत्तम कुल उत्तम जाति उत्तम योग प्राप्त हुआ है तुमको अवश्य ही भगवान का नाम जपना चाहिये; चोर भी भगवान का नाम अन्त में लेने पर देवलोक का पात्र बन गया धर्म को जिसने धारण किया वही तर जाता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है पांच मिनट भी प्रति दिन विचार किया जाय तो उद्धार हो सकता है। परन्तु मन नहीं लगता है, सांसारिक झन्झटों को छोड़ना नहीं चाहता है चिंता लगी रहती है। कि मेरी दूकानदारी बिगड़ जायगी अमुक खराब हो जायगा। परन्तु अपने अगाड़ी काम की सुधि नहीं लेना है, कैसे सुधार होना कुछ ध्यान नहीं देना है, आचार्य कहते हैं अपना कल्याण करना चाहते हो तो कुछ समय इस के लिये जरूर निकालो तो कल्याण अवश्य हो जायगा, मनुष्य सदैव तृष्णा में लगा रहता है।

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु भोजन वृत्तिषु।
अतृप्ताः मानवाः सर्वे यातायास्यन्ति यांतिच॥

मनुष्य हमेशा धन में जीवन में स्त्री भोजन में अतृप्त ही रहता है इसी की आशा में आता है और जाता है परन्तु तृप्त नहीं होता है।

सुशीलादेवी धर्मपत्नी पारसदास जी जैन आरा निवासी ने जनना प्रेस बाराबङ्की में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख ५-१०-५३ दिन सोमवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि धर्म रूपी बीज बोने वाला मनुष्य समस्त सुख प्राप्त करता है
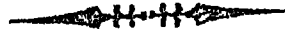
वपनं धर्म बीजस्य सत्प्रशंसादिनद्गतम् ।
तच्चितार्द्यं कुरादिस्यात्फलसिद्धिस्तु निर्वृतिः ॥
चिन्ता सच्छ्रुत्यनुष्ठान देव मानुष सम्पदः ।
क्रमेणांकुर सत्काण्ड—नाल पुष्प समा मताः ॥

हे जीव ! यदि तुम सुख चाहते हो, तो शरीर रूपी जमीन को साफ करके धर्म रूपी बीज बो दो । समय २ पर ज्ञान रूपी गङ्गा जल से सींच दो । वही प्रशंसा के लिये योग्य होगा, और जब वह वृक्ष एक बार भी अच्छी तरह से फल जायगा, तो बहुत समय के लिये तुम सुखी हो जाओगे । धर्म रूपी बीज बोने पर मनुष्य इसलोक व परलोक सुखके समस्त भोगोपभोगों को भोगकर अन्त में स्वर्ग व मोक्ष प्राप्त करके सर्वदा के लिये सुखी हो सकता है । जिसप्रकार तालाब में कमल बोने पर उसमें से उत्तमोत्तम सुगंधित पुष्प उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार धर्म रूपी बीज बोने वाला मनुष्य समस्त सुखों को प्राप्त कर सकता है । बीज बोने पर जब अँकुर उत्पन्न हो जाता है, तब उसमें जिस प्रकार जल की नितान्त आवश्यकता रहती है । उसी प्रकार धर्म रूपी बीजाङ्कुर उत्पन्न होने पर भी ज्ञान रूपी जल सिंचन करने के लिये सद्गुरु रूपी कुआं की महती आवश्यकता है बीज तीन प्रकार का होता है । पहला जिन बिंब, जिनागार जिन क्षेत्र, मुनि, आर्यिका, श्रावक तथा श्राविका इन सप्त क्षेत्रों में धर्म बीज बोया जाता है ।

जिन बिंब—अर्थात् पंच कल्याणक व वेदी प्रतिष्ठा आदि कराके मूर्ति की स्थापना करे । जिनागार - गिरे हुये । जीर्णशीर्ण मन्दिर व चैत्यालय आदि की मरम्मत करे करावे । जिन क्षेत्र—अतिशय क्षेत्र तथा भूत पूर्व मुनियों की जन्म भूमि में धर्म प्रभावना करके, धार्मिक संस्था आदि की स्थापना करके मोह निद्रा में प्रसुप्त लोगों को पुनः जागृत करे । मुनि, आर्यिका, श्रावक तथा श्राविका को भक्ति व श्रद्धा पूर्वक आहार दान, अभय दान, औषधि दान तथा शास्त्र दान देकर अनन्तानन्त धर्म बन्ध करले ।

सर्व प्रथम आत्म कल्याण चाहने वाले व्यक्तियों को चाहिये कि वे सांसारिक विषय भोगादिक वस्तुओं को सनैः २ त्याग करे। तत्पश्चात् प्रत्येक प्राणी पर दया रखकर विधि पूर्वक गुरु की पूजा करके शील वृत्ति धारण करके महान् पुण्य का बन्ध करे। जिस प्रकार अच्छे २ तेलों से बाल को बढ़ाकर जूड़ा आदि बनाकर उत्तमोत्तम शृँगार किया जा सकता है उसी प्रकार जिसने धर्म रूपी अँकुर का खूब बढ़ा रक्खा है वह हर तरह से अपना शृँगार कर सकता है। मन रूपी रोग असाध्य हो जाने पर महात्मा रूपी सच्चे वैद्य को ढूंढ़कर धर्म रूपी दवा सेवन करना चाहिये। जब तक पाप रूपी वेदना अन्दर रहती है तब तक मनुष्य अनेकानेक रोगों को उत्पन्न करता है। और उसका समुचित निदान न कर सकने के कारण उत्तरोत्तर दुःख ही बढ़ाता है। आचार्य कहते हैं कि सांसारिक जीव अज्ञानांधकार में पड़ने के कारण धन-धान्य, भोगैश्वर्य, पुत्र पौत्र तथा कलत्रादिक की ही वांछा सर्वदा किया करता है। परन्तु इन वस्तुओं में सुख कदापि नहीं मिल सकता। ये वस्तुयें तो संसार में फँसाने वाली हैं। जिस प्रकार लोहे का तथा सोने की दोनो जंजीरें बन्धन ही हैं। उसी प्रकार सांसारिक समस्त सुख बन्धन का प्रधान कारण है। हे जीव! तुम अनादि काल से मिथ्यात्व रूपी ज्वर से तप्त हो रहे हो। इसी से तुम्हें धर्मामृत कडुवा मालूम पड़ता है, परन्तु यदि तुम थोड़ा सा कष्ट करके धर्म रूपी दवा पी लोगे, तो तुम्हारी सारी व्यथा दूर हो जायगी और तुम्हें सारी चीजें अच्छी लगने लगेंगी। जिस प्रकार भूखे हुये मनुष्य को हाथी, घोड़े, राज्य, रूपया, पैसा पुत्र, पौत्रादिक सभी सुखदायी वस्तुयें निरर्थक हैं। उसी प्रकार तीनों लोकों के सभी सुखों को प्राप्त करने पर भी धर्म के बिना सारी वस्तुयें बेकार हैं। अतः हे जीवों! जब तक शरीर रूपी क्षेत्र विद्यमान है तब तक धर्म रूपी बीज अच्छी प्रकार से बोकर अँकुर उत्पन्न करो क्योंकि पता नहीं कि यह क्षेत्र कब विलीन हो जायगा। क्योंकि कहा भी है कि:—

यावत्स्वस्थमिदं कलेवर गृहँ यावच्च दूरे जरा।
यावच्चेन्द्रियशक्तिर प्रति हता यावत्क्षयो नायुष ॥
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषाकार्यः प्रयत्नोमहान्।
प्रोद्दीप्ते भवने चकूप खननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

अर्थ—जब तक शरीर रूपी घर स्वस्थ है, बुढ़ापा दूर है, इन्द्रियों में शक्ति नष्ट नहीं हुई है तथा आयुर्बल समाप्त नहीं हुआ है, तभी तक अपने आत्मा के कल्याण करने के लिए महान् धर्म इकट्ठा कर लेना चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य बुढ़ापे में धर्म संचय करने की चेष्टा करता है उसकी गति वही होती है जो गति मकान में अग्नि प्रज्वलित हो जाने पर उसके बुझाने के लिये कुआँ खुदाने वाले की होती है

पवित्रो क्रियते येन येनैवोध्द्रियते जगत्।
नमस्तस्मै दयार्द्राय धर्मं कल्पाङ्घ्रिपाय वे ॥

जिस धर्म से जगत् पवित्र किया जाता है, तथा उद्धार किया जाता है और जो दया रूपी रस से आर्द्रित (गीला) और हरा है, उस धर्म रूपी कल्प वृक्ष के लिये मेरा नमस्कार है। वह धर्म जिसके अँश मात्रको भी सेवन करके संयमी मुनि मुक्ति को प्राप्त होते हैं, उसे जिनेन्द्र भगवान् ने दश लक्षण युक्त कहा है। धर्म का

स्वरूप मिथ्या दृष्टियों तथा हिंसा और इन्द्रिय विषय पोषण करने वाले शास्त्रों के द्वारा भले प्रकार नहीं कहा जा सकता। इस कारण इस धर्म का वास्तविक स्वरूप हम कहते हैं।

धर्मो नरोरगाधीश नाक नायक वाञ्छिताम्।
अपि लोक त्रयी पूज्यां श्रियं दत्ते शरीरिणाम्॥

धर्म जीवों को चक्रवती धरणीन्द्र तथा देवेन्द्रों द्वारा वांछित और त्रैलोक्य पूज्य तीर्थंकर की लक्ष्मी को देता है। धर्म, कष्ट के आने पर समस्त जगत् के त्रस स्थावर जीवों की रक्षा करता है और सुख रूपी अमृत के प्रवाहों से समस्त जगत् को तृप्त करता हैं मेघ, पवन, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, समुद्र और इन्द्र ये सम्पूर्ण पदार्थ जगत् के उपकार रूप प्रवर्त्तते हैं और वे सब ही धर्म द्वारा रक्षा किये हुये प्रवर्तते हैं। धर्म के बिना ये कोई भी उपकारी नहीं होते हैं। आचार्य महाराज ऐसा मानते हैं कि इन्द्रादिक लोकपाल अथवा राजादिकों के व्याज (बहाने) से लोकों के उपकारार्थ यह धर्म ही अव्याहत फैल रहा है।

न तत्त्रि जगती मध्ये मुक्ति भुक्त्योर्निबन्धनम्।
प्राप्यते धर्म सामर्थ्यान्न यद्यमित मानसैः॥

इस तीन जगत् में भोग और मोक्ष का ऐसा कोई भी कारण नहीं है, जिसको धर्मात्मा पुरुष धर्म की सामर्थ्य से न पाते हों अर्थात् धर्म सामर्थ से समस्त मनोवांछित पदको प्राप्त होते हैं। जिनके चित्त में धर्म ही एक शरण भूत है, उनके चरण कमलों की पँक्ति को इन्द्र गण भी नम्री भूत मस्तक से नमस्कार करते हैं।

भावार्थ—धर्म के माहात्म्य से जब तीर्थंकर पदवी प्राप्त होती है, तब इन्द्र भी आ कर नमस्कार करते हैं। धर्म गुरु है, मित्र है, स्वामी है, बाँधव है, हित है, और धर्म ही बिना कारण अनाथों का प्रीति पूर्वक रक्षा करने वाला है। इस प्राणी को धर्म के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं है। यह धर्म नरकों के नीचे जो निगोद स्थान है, उस में पड़ते हुये जगतत्रय को धारण करता है। अवलम्बन देकर बचाता है तथा जीवों को अतीन्द्रिय सुख भी प्रदान करता है। नरक रूपी महा अँधकूप में स्वयं गिरते हुये जीवों को धर्मही अपने सामर्थ्य से हस्तावलम्बन देकर बचाता है।

महातिशय सम्पूर्णं कल्याणो द्दामममन्दिरम्।
धर्मो ददातिनिर्विघ्नं श्रीमत्सर्वज्ञ वैभवम्॥

धर्म, महाअतिशय से पूर्ण, कल्याणों के उत्कृष्ट निवासस्थान और निर्विघ्न ऐसे लक्ष्मी सहित सर्वज्ञ भगवान् के वैभव का देता है। अर्थात् तीर्थङ्कर पदवी को प्राप्त करता है। धर्म, परलोक में प्राणी के साथ जाता है, उसकी रक्षा करता है, नियम से उसका हित करता है तथा संसार रूपी कर्दम से उसे निकाल कर निर्मल मोक्ष मार्ग में स्थापन करता है। इस जगत् में धर्म के समान अन्य कोई समस्त प्रकार के अभ्युदय का साधक नहीं है। यह मनोवांछित सम्पदा का देने वाला है। आनन्द रूपी वृक्ष का कन्द है अर्थात् आनन्दके अँकुर इससे ही उत्पन्न होते हैं तथा हित रूप पूजनीय और मोक्ष का देने वाला भी यही है। धर्म के बल से इस संसार में सुख मिलने के अतिरिक्त परलोक में भी निःसन्देह सुख मिलता है। जो धर्म से अधिष्ठित आत्मा है, उसके सर्प, अग्नि, विष, व्याघ्र, हस्ती, सिंह, राक्षस तथा राजादिक भी

द्रोह नहीं करते हैं अर्थात् यह धर्म इन सब से रक्षा करता है। अथवा धर्मात्माओं के ये सब रक्षक होते हैं।

निःशेषं धर्म सामर्थ्यं न सम्यग्वक्तमीश्वरः।
स्फुरद्वक्त सहस्रेण भुजगेशो ऽपिभूतले ॥

आचार्य महाराज कहते हैं कि, धर्म का समस्त सामर्थ्य भले प्रकार कहनेको स्फुरायमान सहस्र मुख वाला नागेन्द्र भी इस भूतल में समर्थ नहीं है फिर हम कैसे समर्थ हो सकते हैं? हे आत्मन्! जो तुझे नरक निपात का छोड़ना परम इष्ट है अथवा इन्द्र की महान विभव पाना एकान्त ही इष्ट है। यदि चारों पुरुषार्थों में से अन्तका पुरुषार्थ (मोक्ष) प्रार्थनीय ही है तो और विशेष क्या कहा जावे, तू एक मात्र धर्म का सेवन कर। क्योंकि धर्म से ही समस्त प्रकार के अनिष्ट नष्ट होकर समस्त प्रकार के इष्ट की प्राप्ति होती है। इस प्रकार धर्म भावना का व्याख्यान पूर्ण किया जाता है। यह धर्म धर्मात्मा पुरुषों को धरणेन्द्र की पुरी के सार सुख को करने में समर्थ है, तथा यह धर्म उस धर्म के पालने वाले पुरुषों को मनुष्य लोक में विपुल सुख की प्राप्ति होती है। अतः एक मात्र धर्म का आश्रय करो।

धर्मपत्नी बाबू प्रतापचन्द जी जैन सुमेरगंज निवासी ने जनता प्रेस बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख ६-१०-५३ दिन मंगलवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि धर्म ही इस जीव को संसार में हितकारी है।
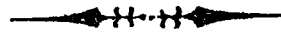
आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्य मेतत्पशु भिर्नराणाम्।
धर्मो ह्रितेषामधि को विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः सामानोः॥

भोजन निद्रा, डर, मैथुन आदि पशु और मनुष्यों का बराबर है। परन्तु मनुष्य में धर्म भावना विशेष पाई जाती है। जिस मनुष्य ने धर्म संचय नहीं किया वह पशु के समान ही है,

दानं सुपात्रे सुभङ्ग च शीलं।
तपो विचित्रं शुभ भावना च॥
भवार्णवोत्तारण यान पात्रं।
धर्मश्चतुर्धा मुनयो वदन्ति॥

सुपात्र में दान, सुन्दर शील व्रत, अनुपम तपस्या और शुभ भावना ये चार प्रकार के धर्म भव सागर रूपी समुद्र से पार करने के लिये सुन्दर एवं सुदृढ़ नौका के समान हैं। इस नौका पर चढ़कर मनुष्य निःसन्देह संसार सागर से पार हो सकता है। लाखों करोड़ों रुपया दान देने पर भी देव नहीं आते, पर एकबार भी श्रद्धापूर्वक सत्यपात्र दान देने पर देव गण आंगण में आकर पुष्प वृष्टि करते हुये आनन्द की दुन्दुभी बजाते हैं। अतः

एक गरीब ब्राह्मण नित्य प्रति भिक्षा मांगकर तीन भाग लगाता था पहला सत्पात्र दान दूसरा पत्नी तथा तीसरा अपने लिये रखता था। कुछ दिन के पश्चात् एक माह से उपवास किये हुये, एक दिगम्बर जैन मुनि आनिकले। ब्राह्मण ने सोचा कि ये मुनिराज बहुत भूखे हुये हैं। अतः इन्हें श्रद्धा पूर्वक अपने यहाँ बुलाकर आहार दान देने लगे। ब्राह्मण नित्य नियमानुसार धर्म के लिये निकाला हुआ पहला भाग मुनिराज को आहार दान दिये, पर मुनिराज बहुत भूखे थे। इसलिये उन्होंने पुनः हाथ फैलाया ब्राह्मण ने अपना भाग दे दिया, पुनः मुनिराज के हाथ फैलाने पर विप्रदेव अपनी धर्मपत्नी की ओर दृष्टि पात किये। पत्नी ने पतिदेव के अभिप्रायः को जान लिया। अतः उसने भी अपना भाग आहार मुनिराज जी को दे दिया। अब मुनिराज जी सन्तुष्ट हो गये। और ब्राह्मण के घर में

पंचाश्चर्य की वृष्टि हुई। यह कौतुक देखकर विप्र बहुत प्रसन्न हुये तथा मुनिराज जी के प्रस्थान करने पर अक्षय रत्न राशि को इकट्ठा किया। कर्ण परम्परा से राजा ने द्विजराज के यहां का धन दूसरे का समझकर अपने खजाने में मँगवाकर रख लिया, पर जैसे ही इन्होंने हाथ लगाया वैसे ही ब्राह्मण का धन प्राचीन काल के भव्य श्रावक कई हजार मुनियों को साथ में लेजाकर तीर्थाटन कराते थे। उस समय न तो रेल गाड़ियाँ थी न मोटरें थी तथा न अन्य सवारियाँ जो कि आज कल प्रचलित हैं। थीं, परन्तु उन भव्य धार्मिक पुरुषों की इतनी बड़ी भक्ति व श्रद्धा थी कि पैदल चलकर अपने पीठ पर गठरी मोटरी लादकर भी मुनिराज को आहार दान देते हुये उनकी सेवा-सुश्रुषा करते थे। बड़े बड़े धनी पुरुष भी बड़ी विनम्र भावना से चतुःसंघ की सेवा करते थे। उनके मन में लेश मात्र भी बड़प्पन की भावना नहीं रहती थी सेवा इसी को कहते हैं। इस सेवा के प्रभाव से भक्तगण इसलोक व परलोक में सुख भोगकर अन्त में मोक्ष पद प्राप्त कर लेते थे स्वर्ग व मोक्ष प्राप्त करने के लिये धनकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसके लिये सच्ची भावना होनी चाहिये। भावना के बिना लाखों करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी उत्तम गति नहीं मिल सकती। परन्तु आजकल देखा जाता है कि पहले तो साधु महात्माओं में किसी की श्रद्धा नहीं है जिनकी कुछ है भी वे अधिकतर अपने नौकर चाकरों से गुरु की सेवा करवाना चाहते हैं तथा सेवकों के द्वारा थोड़ी भी की हुई, गुरु सेवा का गुणगान किया करते हैं। उनके हृदय में मानव प्रतिष्ठा का स्तम्भ सर्वदा बना रहता है

ग्रामो नास्ति कुतः सीमा भार्या नास्ति कुतःसुतः
प्रज्ञा नास्ति कुतो विद्या, धर्मो नास्ति कुतः सुखम्

बिना ग्राम सीमा, बिना स्त्री के पुत्र, बिना बुद्धि के विद्या तथा बिना धर्म के सुख कहां से मिल सकता है? कदापि नहीं। दुष्प्राप्य मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी जिसने धर्म संचय नहीं किया वह वसुन्धरा माता के ऊपर एक भार सा ही हुआ। पशु आदिक जीवों का शरीर मरने पर कूकर शृगाल आदि जन्तु खाकर अपना पेट भरते हैं तथा उनके चमड़े से अनेक उपयोगी वस्तुयें बनती हैं। किन्तु मनुष्य योनि प्राप्त करने पर जिसने जीवित अवस्था में धर्म ध्यान नहीं किया वह मरने पर क्या कर सकता है? उसके मांस को कुत्ते आदि भी नहीं खा सकते क्योंकि उसे तुरन्त जला या दफन कर दिया जाता है। मनुष्य का चमड़ा किसी काम का भी नहीं रह जाता। किन्तु हमारी धर्म भावना तभी शुद्ध हो सकती है जब कि हम साधु महात्मा एवं सज्जनों की संगति करें। न्याय से द्रव्य कमाकर अपने कुटुम्बियों का पालन पोषण करते हुये सभी के साथ समता भाव रक्खें। सात्विक द्रव्य व भोजन आदि ग्रहण करके शास्त्र स्वाध्याय करते हुये आगन्तुक अतिथियों की सेवा करें।

क्योंकि जैसा सात्विक अन्न जल तथा विशुद्ध वातावरण होगा तदनुकूल पुद्गल प्रमाण निर्मल होगा और जितना ही निर्मल पुद्गल प्रमाण रहेगा उतनी ही पवित्र बुद्धि उत्पन्न होगी पवित्र बुद्धि उत्पन्न होने से धर्म भावना जागृत होगी। और धर्म से सुख उत्पन्न होगा। क्योंकि कहा भी है किः—

एक एव सुहृद्धर्मो, निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं, सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥

संसार की समस्त वस्तुयें शरीर के साथ ही नष्ट हो जाती हैं। मनुष्य चाहे जितना विद्वान् धनवान, गुणवान तथा पराक्रमी क्यों न हो, किन्तु मरने के पश्चात् उसके साथ उपरोक्त गुणों में से एक गुण भी नहीं जाता परन्तु सद्धर्म संचय किया हुआ देहावसान काल में भी जीवात्मा के साथ जाता है परलोक में सहायता करने के लिये पिता, माता, पुत्र, स्त्री तथा जाति कोई भी साथी नहीं होते, पर धर्म इसलोक में सुख पहुँचाकर मरने के बाद भी साथ रहकर सुख पहुँचाता है।

मृतं शरीर मुत्सृज्य, काष्ठलोष्ठ समं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति, धर्मस्तमनुगच्छति ॥

काष्ठ व लोहे के समान मरे हुये शरीर का छोड़कर बान्धव गण विमुख होकर चले जाते हैं परन्तु धर्म, धर्मात्मा के पीछे २ मरने के बाद भी चलता है। इसलिये सहायता के लिये धर्म शनैः २ सर्वदा इकट्ठे करते रहना चाहिये, क्योंकि धर्म की सहायता से दुस्तर अन्धकार भी पार किया जा सकता है। मनुष्य के जीवन (अवस्था) का एक क्षण भी करोड़ों स्वर्ण मुद्रा देने पर भी नहीं मिल सकता परन्तु ऐसी दुर्लभ अवस्था यदि बेकार में चली गई तो इससे अधिक हमारी दूसरी कौन-सी हानि होगी। कहा भी है कि:—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यः संन्निहितो मृत्युः, कर्तव्यो धर्म संग्रहः ॥

शरीर अनित्य है, धन शाश्वत नहीं है तथा मृत्यु निश्चित रूप से निकट स्थित है। इस लिये धर्म संग्रह करना चाहिये। विद्या, रूप, शौर्य, कुलीनता, आरोग्यता राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष आदि धर्म से ही उपलब्ध होते हैं।

धर्म माता के समान पोषण करता है पिता के समान रक्षा करता है, मित्र के समान प्रेम करता है तथा बन्धु के समान स्नेह करता है। धर्म सत्य से उत्पन्न होता है, दया से बढ़ता है, क्षमा से स्थित होता है और क्रोध से नष्ट हो जाता है। अतएव क्रोध का सवथा परित्याग करके बुद्धिमान् पुरुषों को धर्म रक्षा भली भांति करना चाहिये। धर्म के प्रसंग में पड़कर भी मूर्ख जन उसका आचरण नहीं करते और अनेक यत्न करके पाप का आचरण करते हैं। आचार्य करते हैं कि देखो। कैसा आश्चर्य है कि मनुष्य लोक में अज्ञानी जन अमृत को छोड़ कर विष पान करते हैं।

जो ज्ञानी करोड़ों भवों से दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त करके कल्याणकारी धर्म संचय करता है उसका जीवन सफल है। क्योंकि धर्म न करने वाले के ऊपर किसी ने कहा है कि:—

अर्थाः पादर जोपमा गिरि नदी वेगोपम यौवनं,
आयुष्यं जल लोल विंदुचपलं फेनापमं जीवितम्
धर्मं योन करोति निंदितमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटन
पश्चात्तापयुतो जरा परिगतः शोकाग्निना दह्यते।

धन पैर की धूलि के समान, आयुबल, जल के छोटे २ बुदबुदे के समान चंचल तथा फेन के समान जीवन है। ऐसी अवस्था में स्वर्ग की जंजीर को तोड़ने वाला यो मन्द बुद्धि धर्म नहीं करता वह बाद में अर्थात् वृद्धावस्था आने पर संतप्त होकर शोक रूपी अग्नि से जल जाता है। यह धर्म धन की इच्छा करने वाले को धन

काम की इच्छा करने वाले को काम; पुत्र की इच्छा करने वाले को पुत्र तथा राज्य के अभिलाषियों को राज्य देता है। अथवा अनेक प्रकार के संकल्प विकल्पों से क्या लाभ है? संसार में ऐसा कौन सा वांछित कार्य है। जिसे धर्म न देता हो? धर्म तो स्वर्ग व अपवर्ग को भी देता है।

धर्मेण हन्यते व्याधिर्हन्यन्ते वै तथा ग्रहाः।
धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः॥

धर्म से व्याधि नष्ट होती है, ग्रह नष्ट होते हैं, शत्रु नष्ट होते हैं तथा जहां धर्म है वहीं विजय है। इस संसार में व्याधि बुढ़ापा और मृत्युग्रस्त प्राणियों की रक्षा जिनेश्वर भगवान् द्वारा कहे गये धर्म के बिना कभी नहीं हो सकती। दुःख रूपी आतङ्क को नाश करने वाले धर्म रूपी अमृत को सदा पीना चाहिये, क्यों कि इसके पीने पर जीवों को सर्वदा सुख प्राप्त होता है।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणश्चले जीवित मन्दिरे।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः॥

लक्ष्मी चलायमान्, प्राण चंचल, जीवन चंचल तथा संसार चंचल है, परन्तु धर्म सर्वदा स्थिर रहने वाला है।

अवस्था प्रतिदिन व्यतीत होती जा रही है और इसकी समाप्ति में यमराज एक क्षण भी शान्ति नहीं करते। इसलिये धर्म संचय में देरी कभी न करो। सभी शास्त्रों में बताया गया है। कि पाप से दुःख और धर्म से सुख प्राप्त होता है। इसलिये पाप न करके यत्न पूर्वक धर्म संचय करना चाहिये। दुःख के बिना द्रव्य नहीं मिलता, द्रव्य के बिना क्रिया नहीं हो सकती। क्रिया न होने पर धर्म नहीं मिलता और धर्म के बिना सुख कदापि नहीं मिल सकता अतः यत्न पूर्वक धर्म संचय करना चाहिये।

मातेश्वरी बाबू धर्मचन्द जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस बाराबङ्की में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख ७-१०-५२ दिन बुधवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि हेजीव तूने अनेक कष्ट सहे पर भगवान की प्राप्ति के लिये कुछ नहीं किया
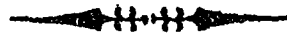
हे जीवो! तुमने पुत्र, पौत्र तथा कलत्रादिकों के भरण-पोषण करने के लिये अनेक प्रकार की पूजा किया अनेक स्थानों में दर्शन किया, तथा बहुत से साधु महात्माओं के पास शिर नवाकर करुण क्रन्दन किया, पर भगवान् की प्राप्ति के लिये और अपने मनों विकारों को दूर करने के लिये कभी नहीं पूजा-पाठ किया और न तो कभी करुण क्रन्दन ही किया। इसलिये तुम्हारा सब कुछ किया हुआ पूजा-पाठ तथा क्रन्दन आदि निरर्थक है। तुम्हें रोना है। करुण करना है। तो शाश्वत् सुख की प्राप्ति के लिये रोओ।

बुद्धश्री सङ्घश्री नाम की एक जैन कन्या बड़े धनी के घर उत्पन्न हुई। उसके पैदा होते ही उसका पिता तथा उसकी मां ८ वें दिन में मर गई और करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो गई। वह इधर उधर पड़े हुये जूठ कूठ अन्न को खाकर अपना पेट भरती थी। एक दिन मुनिराज आहार के लिये जा रहे थे कि उस कन्या को देखा। साथ के साथियों ने उसका कारण पूछा। मुनिराज ने कहा कि यह इसी राज्य के राजा की पटरानी होगी। यह समाचार पाते ही वहां के एक बौद्ध पं० उस कन्या को अपने घर ले गये और हर्ष पूर्वक उसका पालन-पोषण करने लगे एक दिन राजा वन क्रीड़ा करने के लिये जा रहे थे। रास्ते में यह परम सुन्दरी कन्या टहल रही थी। उसके प्रत्येक अङ्ग से सौंदर्य की कांति चमक रही थी। राजा उस कन्या को देखते ही मोहित हो गये। और अपना विवाह करने की इच्छा उसके पिता के सामने प्रकट की। पं० जी ने लड़की का विवाह राजा के साथ सानन्दपूर्वक कर दिया। तत्पश्चात् उसका नाम बुद्धश्री रक्खा गया। बुद्धश्री की सौति का नाम उर्मिलादेवी था। राज दरबार में प्रति वर्ष रथोत्सव मनाया जाता था। उसमें उर्मिला देवी का रथ सर्व प्रथम निकलता था, पर अब की बार बुद्धश्री (नई रानी) ने कहा कि पहले हमारा रथ निकलेगा। यह बात राजा के कान

तक पहुँच गई, परन्तु राजा बुद्धश्री (नई रानी) के वशीभूत थे। अतः उन्होंने बुद्धश्री का ही पक्ष लिया। अन्त में चारों ओर से निराश होकर उर्मिला रानी, पास में विराजमान एक मुनिराज की शरण में गई और उनसे अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। तथा विनीत भाव से अश्रुपात करते हुये उसने यह भी प्रतिज्ञा किया कि महाराज! जब तक हमारा रथ पहले नहीं निकलेगा, तबतक में अन्न जल नहीं ग्रहण करूँगी। उर्मिला की विनम्र प्रार्थना सुनकर मुनिराज जी करुणा से सराबोर हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने ऋद्धि प्राप्त किये हुये "वज्र कुमार जी" के पास उर्मिला को भेज दिया। वज्रकुमार ने रानी की सच्ची श्रद्धा जानकर देवों को बुलाया और कहा कि तुम सब जाकर "बुद्धश्री" के रथ को तोड़कर उर्मिला के रथ को पहले निकालो। अन्त में देवों ने ऐसा ही किया फिर क्या था देवों ने बुद्धश्री के रथ को तोड़ कर उर्मिला के रथ को पहले निकाल दिया। और आनन्द पूर्वक जै जैकार करते हुये, आनन्द की दुंदुभी बजाया। अतः निश्चय है कि जो व्यक्ति भगवान् को प्राप्त करने के लिये श्रद्धा पूर्वक पूजा पाठ तथा रुदन करेगा उसे निश्चित ही भगवान् मिल सकते हैं। प्रेम पूर्वक श्रद्धा से की हुई भक्ति कभी भी निःष्फल नहीं हो सकती। देखो! महात्मा तुलसीदास जी पहले अर्थात् गृहस्थाश्रम में रहने पर स्त्री से जितना प्रेम रखते थे उसका वर्णन नहीं किया जा सकता पर स्त्री के स्नेह पाश में बँधे रहने पर भी प्रभाकुँर उत्पन्न होते ही उन्होंने भगवान् की बहुत बड़ी भक्ति की तथा इसके प्रभाव से वैराग्य प्राप्त करके अन्त में परम पद प्राप्त किया। उसका वर्णन नीचे किया जाता है।

महात्मा तुलसीदास जी अपनी स्त्री से इतना प्रेम रखते थे कि उसे वे कभी अपने पिता के घर नहीं जाने देते थे। एक दिन ये कहीं बाहर गये हुये थे। और इसी बीच में इनके साले आ पहुँचे। इनकी धर्मपत्नी मौका पाकर भाई के साथ पिता के घर चली गई। तुलसी दास जी जब मकान पर आये, तो दरवाजा बन्द देखकर पड़ोसियों से पूछा। पड़ोसियों ने कहा कि पीहर में चली गई। तुलसीदास जी कि कर्तव्य विमूढ हो गये। अन्तमें उन्होंने अपने मन में ससुराल जाने की ठान ली। उस समय वर्षात् का महीना था। रास्ते में एक नदी भी पड़ती थी। सभी नदी नाले जल से परिपूर्ण थे। पर वे घर से निकल पड़े। नदी को तैरकर जब अपने श्वशुर के घर पहुँचे, तब मकान के दरवाजे बन्द मिले। मकान की छत से कोई चीज नीचे लटक रही थी। उसे पकड़कर तुलसीदास जी ऊपर चढ़ गये और सोती हुई अपनी धर्मपत्नी को जगाया। जागते ही इन्हें देखकर वह आश्चर्य चकित हो गई और पूछने लगी कि ! नाथ आप कैसे आये? तथा इस मकान में किस प्रकार प्रवेश किये? तुलसीदास जी ने कहा कि इस छत से नीचे एक रस्सी लटक रही थी उसे पकड़कर मैं चढ़ आया। तुम्हारा वियोग हमें असह्य हो गया। इस कारण मैं रात्रि दिन का कुछ भी विचार नहीं कर सका। यह सुनकर इनकी धर्मपत्नी प्रकाश लेकर उस रस्सी के पास पहुँची जिसके सहारे ये चढ़ आये थे। जाकर इन्होंने देखा तो वह एक बड़ा भयङ्कर काला

सर्प दृष्टिगोचर हुआ। उसी सर्प को रस्सी समझकर उसके द्वारा तुलसीदास जी छत पर गये थे इनकी धर्मपत्नी इनसे कहने लगी कि हे नाथ! जितना प्रेम आप मुझसे करते हैं, यदि उतना प्रेम भगवान् से करते तो आपका जीवन बन जाता। तुलसीदास जी के हृदय में स्त्री की यह बात चुभ गई। उन्हें सच्चा वैराग्य प्राप्त हो गया। बस फिर क्या था? तुलसीदास जी तत्क्षण वहाँ से चल दिये और चित्रकूट में जाकर भगवान् का भजन करने लगे। इनके हृदय में बड़ी दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो गई थी। अतः इनकी श्रद्धा तथा कड़ी तपस्या से भगवान् स्वयं आकर इन्हें दर्शन दिये और अन्त इन्होंने शाश्वत् पद प्राप्त किया। यह मनुष्य रत्न बड़ी घोर तपस्या से प्राप्त हुआ है। ज्ञानी मनुष्य इससे स्वर्ग व मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इसलिये परम सुखदायी शाश्वत् पद प्राप्त कराने वाले इस शरीर से यदि पूजा-पाठ करना है तथा रोना है तो तुच्छ भोग व ऐश्वर्य के लिये मत काय क्लेश, करो, क्योंकि भोग-विलास तो कूकर शूकरादि पशु पक्षी भी किया करते हैं। यदि तुम धन तथा कुटुम्बियों के लिये रुदन करो अथवा उनके वियोग से शोक मनाओ, तो भी कोई बुद्धि मानी नहीं है, क्योंकि शोक करने से कोई लाभ नहीं होता। कहा भी है कि:—

यद्यकत्रे दिने न भुक्ति रथश निद्रा न रात्रौ भवेत्
विद्रात्यम्बुज वप्रहनतोऽभ्या शास्थिता द्ध्रुवम्
अस्त्र व्याधि जलादिनोऽपि सहसा यच्चतयंगच्छेति
भ्रातःकात्र शरीरके स्थिति मतिर्नाशेऽस्यको विस्मय

यदि एक दिन खाया न जाय अथवा रात्रि में सोया न जाय, तो यह शरीर पास में रही हुई अग्नि से जिस प्रकार कमल का पत्र मुरझा जाता है उसी प्रकार मुरझा जाता है। तथा हथियार, रोग, अग्नि, जल आदि से भी यह पल भर में नष्ट हो जाता है। इसलिये आचार्य कहते हैं कि हे भाई! ऐसा शरीर कब तक रहेगा, यह कोई निश्चय नहीं है। अथवा यह जल्दी नष्ट होगा इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं। अतः इस शरीर से किसी प्रकार की ममता न रखकर अपना आत्म कल्याण करो। जिस देह रूपी झोपड़े की दीवारें दुर्गन्ध और अपवित्र मल मूत्र आदि धातुओं की बनी हुई हैं, जो ऊपर से चाम से ढका हुआ है, विष्टा मूत्र आदि से भरा हुआ है, भूख प्यास आदि से जो पीड़ित है अर्थात् जो दुःखों का भंडार है और वृद्धावस्था रूपी अग्नि जिसके चारों ओर व्याप्त है, ऐसे शरीर रूपी झोपड़े को भी मूढ़ प्राणी अविनाशी तथा पवित्र मानते हैं, यह आश्चर्य की बात है? शरीर तो जल के बबूलों के समान है और लक्ष्मी इन्द्रजाल के समान है तथा स्त्री, धन, पुत्र, मित्र आदिक खोटे पवन से नष्ट हुये मेघों के समान पल भर में विनाशक हैं। और युवती स्त्री के कटाक्ष के समान चंचल यह विषय सम्बन्धी सुख है। इसलिये आचार्य कहते हैं कि इनके नाश होने पर विद्वानों को न तो शोक करना चाहिये और न मिलने पर हर्ष ही मानना चाहिये देह के सम्बन्ध से यद्यपि संसार में दुःख तथा शोक आकर उपस्थित होते हैं, तो भी विद्वानों को किसी पदार्थ के लिये दुःख तथा शोक नहीं करना चाहिये। क्योंकि यह देह दुःख तथा शोक को पैदा करने वाली भूमि है। इस लिये विद्वानों को निरन्तर उस आत्म स्वरूप का

चिन्तवन करना चाहिये। जिससे भविष्यत् काल में नाना प्रकार के दुःखों को देने वाले इस शरीर की उत्पत्ति फिर से न होवे।

दुर्वाराजित कर्म कारण वशादिष्टे प्रनष्टे नरे।
यःशोकं कुरुते यदत्र नितरामुन्मत्तलीलायितम्॥
यस्मात्तत्र कृते न सिध्यति किमप्येतत्परं जायते।
नश्यन्त्येव नरस्य मूढ़ मनसो धर्मार्थ कामादयः॥

जिसका निवारण नहीं हो सकता तथा पूर्व भव में संचित कर्मरूपी कारण के वश से जो मनुष्य अपने प्रिय स्त्री, पुत्र, मित्र आदि के नष्ट होने पर उन्मादी मनुष्य की लीला के समान इस संसार में बिना प्रयोजन का अत्यन्त शोक करता है उस मूर्ख मनुष्य को व्यर्थ शोक करने से कुछ भी नहीं मिलता तथा उस मूर्ख मनुष्य के धर्म अर्थ काम आदि का भी नाश हो जाता है। इस लिये विद्वानों को इस प्रकार का शोक कदापि नहीं करना चाहिये।

उदेति पाताय रवियथा तथा शरीरमेतन्ननु सर्व देहिनाम्।
स्वकाल मासाद्य निजेऽपि संस्थिते करोतिकः शोकमतः प्रबुधी॥

जिस प्रकार सूर्य, अस्त होने के लिये उदय होता है उसी प्रकार यह शरीर भी, निश्चय से नाश होने के लिये ही उत्पन्न होता है। इसलिये स्वकाल के अनुसार अपने प्रिय स्त्री पुत्रादि के मरने पर भी, हिताहित के जानने वाले मनुष्य कदापि नहीं शोक करते। जो पैदा होता है वह नियम से नष्ट होता है जब स्त्री पुत्र आदि का शरीर पैदा हुआ है तो अवश्य ही नष्ट होगा। आत्मा का तो नाश हो ही नहीं सकता। ऐसा जानकर बुद्धिमान् मनुष्य स्त्री पुत्र आदि के लिये किंचित् भी शोक नहीं करते। पहले धर्म की व्याख्या कर चुके हैं। धर्म ही सुख सम्पत्ति का मूल कारण है, परन्तु शोकाकुल मनुष्य कभी धर्म नहीं कर सकता, क्योंकि उसकी बुद्धि शोक सेविकृत हो जाती है, इसलिये शाश्वत् सुखार्थी पुरुषों को चाहिये कि वे शोक को सर्वथा छोड़कर अधिक से अधिक धर्म लाभ उठावें।

लाल कुन्थलाल जी जैन दरियाबाद निवासी ने जनता प्रेस बाराबङ्की में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख ८-१०-५२ दिन गुरुवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि धर्म धारण करने से पहले उसकी परीक्षा करना जरूरी है।
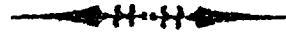
धर्म की परीक्षा करके धर्म को ग्रहण करना चाहिये जब तक सच्चा धर्म नहीं धारण किया जायगा तब तक जीवों का कल्याण नहीं हो सकता है। संसार रूपी गड्ढे में जो गिरे हुये प्राणी हैं उनको निकालने के लिये एक धर्म ही निकालने वाला है। जन्म मृत्यु के संकट में जो जीव फंसे हुये हैं वे धर्म के सहारे से ही उद्धार हो सकते हैं। भूतकाल में जितने प्राणी सुधरे हैं सब धर्म ही से सुधरे हैं वर्तमान में भी धर्म धारण करने से ही सुधर रहे हैं। आगामी भी धर्म के सहारे से सुधरेंगे। जो धर्म अपने को सहायता देकर के इष्ट स्थानमें प्राप्त कराने वाला हो उसी से कल्याण हो सकता है। संसार में बिना विचारे अनेक देव हैं उनको बिना विचारे समझे बूझे संसारी प्राणी अपने हित के लिये पूजा अर्चना करते हैं परन्तु बिना इसकी परीक्षा किये धारण करलेने से कुछ लाभ नहीं मिल सकता है। समस्त लोक अलोकको जानने वाला वीतराग भगवान का कहा हुआ जो धर्म है वही सच्चा धर्म है बिना वीतरागी हुये निष्पक्ष धर्म का उपदेश नहीं दे सकता है। जो स्वयं भयभीत हैं डंडा, गदा, धारण करने वाले कैसे देव हो सकते हैं यह तो संसारी जीवों में पाई जाती है डंडा लाठी भय के मारे रखते हैं। इसलिये जिनके हृदय में रागद्वेष नहीं है किसी के आश्रय नहीं रखते हैं कभी क्रोध नहीं करते हैं किसी पर प्रसन्न नहीं होते हैं ऐसे ही गुरु सच्चे धर्म का व्याख्यान कर सकते हैं और जो सच्चे धर्म का उपदेश दे सकते हैं वही सच्चे देव हैं। क्षेत्रपाल पद्मावती देवी इत्यादि जो धर्मात्मा देव हैं वे यद्यपि वीतराग देव नहीं हैं लेकिन सम्यग्दृष्टि होने के कारण उनका मात्र आदर सतकार किया जा सकता है भगवान वीतराग देव सभी को समान रूप से देखते हैं उनमें रागद्वेष नहीं है। संसार का झगड़ा बखेड़ा कुछ नहीं है कोई निंदा करे तो कुछ प्रयोजन नहीं कोई स्तुति करे तो प्रसन्न नहीं होते हैं वे तो वीतराग हैं उनका कहा हुआ धर्म निष्पक्ष है वही श्रेष्ठ है भगवान

में हितोपदेशीपना होना चाहिये, जिसमें अपना हित न हो ऐसे उपदेश से क्या लाभ हितोपदेश वही है जो संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम गति में प्राप्त करावे। भगवान सर्व सभी होना चाहिये, जो वस्तु उनको केवल ज्ञान में मालूम पड़ती है। उसी का स्वरूप संसारी प्राणियों के हित के लिये कहने का नाम हितोपदेश देना है, एक लीलावती नाम की कन्या का विवाह विधर्मियों के यहां हो गया लीलावती जैन थी। घर के लोग अजैन थे एक दिन एक दिगम्बर मुनि आहारार्थ आये दैवात् मुनि महाराज की आंख में ङ्कङ्ड़ पड़ गया। उसे लीलावती ने अपनी जिह्वा से निकाल दिया, ङ्कङ्ड़ निकालने में लीलावती के माथे का सिन्दूर मुनि महाराज के माथे में लग गया, इस पर उसकी सासु ने बड़ा प्रपन्च रचा और लड़ाई भगड़ा करके लीलावती को घर के निकाल दिया। वह अपने मयके चली गई। निदान एक दिन लीलावती जिस नगर में रहती थी उसके दरवाजों को देवों ने बन्द कर दिया, कई दिनों तक बन्द रहने के कारण नगर में हलचल मच गई। सभी व्यापार बन्द हो गये न कोई बाहर जा सकता था और न बाहर वाला भीतर आ सकता था। राजा को बड़ी चिन्ता हुई एक दिन राजा को स्वप्न हुआ कि जो स्त्री कच्चे सूत से चलनी में पानी भरकर लावे और वह जल किवाड़ों पर छिड़क दिया जावे तो किवाड़ खुल सकते हैं। इस पर राजा ने नगर में ड्यौडी पिटवादी अनेक स्त्रियां आई, और हताश होकर लौट आई परन्तु किवाड़ किसी से नहीं खुले अन्त में लीलावती आई, उसने भगवान का स्मरण करके कच्चा सूत लेकर चलनी में बांधकर कुवां से पानी निकाल लिया चलनी से एक बून्द भी पानी नहीं गिरा वही पानी ले जाकर देवों के द्वारा बन्द किये हुये, वज्र किवाड़ों पर छिड़क दिया वह किवाड़े खुल गये एक किवाड़ा बन्द रहने दिया कि कदाचित् कोई स्त्री किवाड़े खोलने को कहे तो अपना खोल लेगी। परन्तु वह कभी नहीं खुला योंही पड़ा है। जिसको सच्चे धर्म का इष्ट है वही सब कुछ कर सकता है। उसकी देवता भी सहायता करते हैं। परीक्षा पूर्वक धर्म को धारण करने से अनेक प्रकार की व्याधियां नष्ट हो जाती हैं, एक मुनि महाराज संध्या समय सामायिक करने के लिये बैठ गये णामोकार मंत्र पढ़कर अपने चारों ओर एक कोडरा खीच दिया और उसके भीतर एक पंडित जी को भी बैठा लिया कहा, इसके भीतर ही रहना बाहर न जाना, रात्रि में एक शेर निकला और पंडित जी का कुछ हाथ का भाग कोडरा के बाहर निकल गया था उस पर पंजामारा किन्तु भीतर नहीं आ सका बाहर ही बैठा रहा प्रातःकाल तक वहीं बैठा रहा सब लोगों ने देखा फिर चला गया। कुछ हानि नहीं पहुँचा सका कहने का प्रयोजन यह है कि सच्चा श्रद्धान होने से कोई आपत्ति विपत्ति नहीं आ सकती है। जङ्गल में एक भील साधु महाराज को मिला साधु जी ने रास्ता पूछा भील ने बड़ा सुगम रास्ता मुनि महाराज को बतला दिया मुनिमहाराज ने सोचा कुछ इसका भी कल्याण करना चाहिये। उस भील को णामोकार मन्त्र बतलाकर कहा कि इसको संकट के समय स्मरण करना मरण पर्यंत उसने णामोकार मन्त्र का स्मरण रखा अन्त में

उसके प्रभाव से देवगति को प्राप्त हो गया। जैसे पिता अपने बच्चे का पालन पोषण प्रेम से करता है बच्चा स्वतन्त्र रहकर सुख भोग करता है और अपना हितकारी समझता है आज कल स्वार्थी मनुष्य अपने स्वार्थ साधन के लिये अधिकार की कामना करते हैं। परन्तु पिता पुत्र के समान प्रेम नहीं करते हैं तो बताओ इनसे संसार का उपकार कैसे हो सकता है, आजकल अनेक प्रकार के कर लगाये जा रहे हैं। जिससे प्रजा अत्यन्त दुःखी है राजा राक्षस रूप मन्त्री व्याघ्र रूप प्रजा श्वान रूप है ऐसे में कल्याण कैसे हो सकता है। धर्म तो दयामयी होना चाहिये जिसमें दया नहीं है, वह धर्म नहीं है। अधर्म है, सबसे मनुष्य जन्म ही श्रेष्ठ है। मनुष्य को चाहिये कि वह सब प्राणियों पर दया करें। परन्तु आजकल इसका उल्टा उपदेश हो रहा है, कि मनुष्य सबसे बड़ा है उसे पशु पक्षियों को खाकर अपना उदर पोषण कर लेना चाहिये। कोई कहे किसी मनुष्य को कि तुम्हारे पुत्र पुत्रियों को मारकर मेरे खाने की इच्छा है। तो क्या कोई मनुष्य यह बात स्वीकार कर सकता है कदापि नहीं तो फिर पशुपक्षियों ने क्या बुराई किया है जो उनके ऊपर निर्दयीपना का व्योहार करने को कहा जाता है यह बात अधर्म है ऐसा कभी नहीं करना चाहिये, इससे अनेक जन्म में कष्ट भोगना पड़ेगा। धर्म तो दयामयी ही है। बिना दया का धर्म कैसा इसे तत्काल छोड़ देना चाहिये, दयामय धर्म धारण करना चाहिये इसी से स्वपर कल्याण हो सकता है।

सिनेमा देखने में लोग इतना तल्लीन हो जाते हैं कि घर में कोई मरजाय तब भी उसका स्मरण नहीं होता है यह तो सांसारिक सुख कहा जाता है। परन्तु यह क्षणिक है इससे स्थायी लाभ नहीं मिल सकता है स्थायी सुख तो अपना आत्मीक सुख है जिसे यदि एक बार भी प्राप्त किया जाय तो धीरे २ मोक्ष सुख में पहुँचा देता है जहां अनन्तानन्त काल तक सुख में मग्न रहेगा यह सुख स्थायी है कभी नष्ट नहीं होगा। इसके पाने के लिये प्रयत्न करना चाहिये, जिससे जन्म मरण छूटता है उसे ही वीतराग भगवान ने वर्णन किया है और यह धर्म प्राणी मात्र का कल्याण करने वाला है। आचार्य कहते हैं कि जो वीतराग भगवान का कहा हुआ है जो दयामय धर्म है उसे ही धारण करो, एकबार आस्था हो जाने पर फिर किसी विपत्ति में भी केवल नाम लेने से ही विपत्तियां नष्ट हो जाती हैं। जिसके पास ऐसा दयामयी धर्म है। उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती है।

जिनदत्त श्रेष्ठी और एक ब्राह्मण साथ २ जा रहा था सेठ जी ने रास्ते में पूछा कि ब्रह्मदेव आपका देव कौन है कहां है ब्राह्मण ने कहा-यह पीपल का वृक्ष मेरा देव धर्म है सेठ जी ने उसके पत्ते वगैरह तोड़कर अपने हाथ पांवों में मल लिया इस पर ब्राह्मण देवता बहुत नाराज हुये, परन्तु कुछ कह न सके मन में सोचा सेठ जी का देव कहीं मिले तो मैं उसका बदला लूँगा। सेठ जी चले आ रहे थे रस्ते में खुजली का वृक्ष देखा। उसके चारों ओर सेठ जी ने प्रदक्षिणा देकर एक तरह बैठ गये ब्राह्मण देवता देखकर प्रसन्न हो गये और झटपट उस वृक्ष को तोड़ मरोड़कर अपनी देह में मल लिया थोड़ी देर के

बाद ब्राह्मण के शरीर में खुजली होने लगी बहुत व्याकुलता बढ़ी सेठ जी ने कहा कि तुमने धर्म का अपमान किया इसी लिये तुम्हें दुःख हो रहा है किन्तु घबड़ाओ नहीं मैं इसकी तदबीर करता हूँ सेठ जी ने उपचार किया और ब्राह्मण का दुःख दूर हो गया ब्राह्मण ने कहा कि मैं आपके ही देव की पूजा करूँगा। सेठ जी ने वृक्षों का हाल बतलाकर कहा कि इसमें देव नहीं है। इसका स्वभाव ही ऐसा है। देव तो वीतराग होता है वह किसी से रागद्वेष नहीं करता है इसलिये देव वीतरागी ही हो सकता है ब्राह्मण ने धर्म का स्वरूप समझकर सच्चे दयामयी धर्म को धारण किया, धर्म साबुन के समान मैल को नष्ट करने वाला है यह दयमयी धर्म पापी से पापी जीवों का उद्धार करने वाला है इसी से प्राणी मात्र का दुःख दूर होकर कल्याण हो सकता है। धर्म की परीक्षा करने का यही मार्ग है। कि उसे देखा जाय कि वह जीवों का कितना हितकारक है अर्थात् वह धर्म जीवों के ऊपर दया करने का कहाँ तक उपदेश करता है जिसमें किसी के प्रति अदया का भाव न हो सर्व प्राणी मात्र के ऊपर दया करने का व्याख्यान करता हो वही सच्चा धर्म है। इस परीक्षा में जो खरा उतरे उसे ही ग्रहण करना चाहिये। आजकल लोग धर्म को एक ढोंग मान लिया है परन्तु विचार पूर्वक देखा जाय तो धर्म में ढोंग की गुन्जाइश ही नहीं है जहां ढोंग है। वहां धर्म है ही नहीं न उस स्थान पर धर्म से कोई वासना है आजकल संसार में जो व्यर्थ का वितंडावाद लड़ाई झगड़ा फैल रहा है। वह सब धर्म को बिना जाने के कारण है, धार्मिक व्यक्ति कभी किसी से लड़ाई झगड़ा करना पसंद ही नहीं करता है जहाँ लड़ाई टंटा होता है उस जगह से वह तत्काल हट जाता है। उससे हो सकता है तो बड़ी सरलता से दोनों के वैमनस्य दूर करा देता है उसका प्रभाव संसारी प्राणियों पर बिना कुछ कहे स्वयमेव ही पड़ा करता है। संसार उसे अपना हितू समझता है अपने सुख दुःख की बातें उससे करके अपने दुःखों को दूर करने वाला समझता है हमारी कांग्रेस सरकार आजकल कहती है कि हमारा राज्य धर्म निरपेक्ष राज्य है और दूसरी तरफ कहती है कि लोगों को चोरी नहीं करना चाहिये हमेशा सत्यबोलना चाहिये, किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये। खूब मेहनत करके कमाई करके खाना चाहिये दूसरे की कमाई को नहीं हड़पना चाहिये आपस में संगठन करके रहना चाहिये तो सुनकर हँसी आती है यह तो जितनी बातें करने के लिये बतलाई जाती हैं यह धर्म की ही बातें तो हैं। धर्म भी तो इन्हीं बातों का भलीभांति प्रतिपादन करता है यह बातें धर्म से विहीन कदापि नहीं है एक धर्मात्मा व्यक्ति जिसके विचार सुलझे हुये हैं वही इन बातों को धारण करने के योग्य हो सकता है और वही इनको भली भांति धारण कर सकता है।

कृपया इसे संभाल कर रखिये ।

टिकैतनगर में

तारीख ९-१०-५३ दिन शुक्रवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि आलस्यता मनुष्य का घोर शत्रु है ।
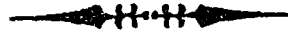
आलस्यं हि मनुष्याणां शरीर स्थो महान् रिपुः ।
नास्त्युद्यम समो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति ॥

आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहने वाला घोर शत्रु है और उद्योग के समान उनका कोई बन्धु नहीं है, क्योंकि उद्योग करने से मनुष्य के पास दुःख नहीं आते । इसमें जरा भी शक नहीं कि आलस्य मनुष्य का परम शत्रु और उद्योग उसका परम बन्धु है । आलस्य से मनुष्य रोगी, दुःखी और दरिद्री होता है; जब कि उद्योग से निरोग, सुखी और धनी होता है । आलस्य असफलता का भन्डार और उद्योग सफलता की कुन्जी है । आलस्य मृत्यु और उद्योग जीवन है, आलसी सदा मुहताज रहता है और उद्योगी सदा आनन्द करता है । आलसी की जिन्दगी दिन-दिन छीजती है, पर उद्योगी की बढ़ती है । परहेजगारी और परिश्रम मनुष्य के दो सर्वोत्तम हकीम हैं । तन्दुरुस्ती परिश्रम में है । परिश्रम के सिवा तन्दुरुस्ती तक पहुँचने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है ।

कर्म या काम का ही दूसरा नाम जीवन है; निकम्मे का अस्तित्त्व है; पर वह जीवित नहीं । कहा भी है किः—

को वा दरिद्रोहि विशाल तृष्णा ।
श्री मांश्च को यस्य समस्त तोषः ॥
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमोयः ।
किंवाऽमृतं स्यात्सुखदा निराशा ॥

दरिद्री कौन है ? जिसे तृष्णा बहुत है । धनवान् कौन है ? जिसे सब तरह से सन्तोष है । जीता हुआ ही मृतक कौन है ? जो उद्यम रहित या आलसी है । अमृत क्या है ? सुख-दायी निराशा ।

आलस्य से ही सब आपदाओं की भूल निर्धनता आती है दरिद्र आलस्य का पुरस्कार है । दरिद्रता से मनुष्य के मन में लाज-सी आने लगती है, लज्जा से मनुष्य में कमजोरी आती है कमजोरी की सभी बेइज्जती करते हैं, बेइज्जती होने से मन में दुःख और शोक पैदा होते हैं, जो दिन रात शोक में लीन रहता है । उसकी

बुद्धि मारी जाती है, तब मनुष्य बहुधा आत्म हत्या करके प्राण विसर्जन कर देता है।

दरिद्रता प्रायः मनुष्य को सम्पूर्ण साहस और धर्म से हीन कर देती है। जिसमें साहस और धर्म नहीं, वह तो जीता हुआ ही मरा है। वह चाहे अपघात करके मरे, चाहे न मरे। जिस आलस्य से इतने उपद्रव या घोर संकट पैदा होते हैं, वह मनुष्य का घोर शत्रु नहीं तो क्या है? और तो जाने दीजिये, जिस सुयश की मनुष्य को प्राण देकर भी परिपालन करनी चाहिये, वह भी आलस्य से नष्ट हो जाता है। क्योंकि कहा भी है कि:—

स्तब्धस्यनश्यति यशो विषमस्य मैत्री।
नष्टेन्द्रियस्य कुलमर्थ परस्य धर्मः॥
विद्याऽफल व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं।
राज्यं प्रमत्त सचिवस्य नराधिपस्य॥

आलसी का यश नाश हो जाता है। दुष्टों की मैत्री नष्ट हो जाती है, नष्टेन्द्रिय पुरुष का कुल नहीं चलता, व्यसानी की विद्या नष्ट हो जाती है, कंजूस का सुख नष्ट हो जाता है और मतवाले मंत्री वाले राजा का राज्य नष्ट हो जाता है।

आलस्य में संसार के सारे ही दोष हैं। आलसी को न इसलोक में सुख मिलता है और न परलोक में। आलसी इसलोक में निर्धनता प्रभृति नानाप्रकार के दुःखों को भोग कर मरता है और मरने पर फिर इसलोक में आकर नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है। आलसी का जन्म मरण के बन्धनों से छुटकारा नहीं हो सकता इसलिये मनुष्यो! यदि तुम सुख-सम्पति और ऐश्वर्य चाहते हो, यदि तुम संसार-बन्धन से मुक्त होना चाहते हो, तो "आलस्य शत्रु" को सर्वथा छोड़ दो। इस शत्रु से मैत्री कदापि न करो। जो आलस्य से मैत्री रखता है, उससे संसार की सम्पत्तियां दूर भागती हैं। और लक्ष्मी उसकी सूरत से नफ़रत करती है। नीति ग्रन्थों में कहा है कि:—

षड्दोषः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घ सूत्रता॥
आलस्यं स्त्रीसेवा सरोगता जन्मभूमि वात्सल्यम्।
सन्तोषो भीरुत्वं षड् व्याघाता महत्वस्य॥
अव्यवसायिनमलसं दैवपरं साहसाच्च परिहीनम्।
प्रमदेव हि वृद्धपतिं नेच्छत्युपगूहितुं लक्ष्मीः॥
क्लेशस्यांगमदत्वा सुखमेव सुखानि नेह लभन्ते।
मधुमिन्मथना यस्तैराश्लिस्यति बाहुभिर्लक्ष्मीम्॥

जिन्हें धन की इच्छा हो, उन्हें निन्द्रा तन्द्रा भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घ सूत्रता-ये दोष त्याग देने चाहिये।

आलस्य, स्त्री-सेवा, अस्वस्थता, जन्म-भूमि से प्रेम, सन्तोष और भय-ये छे बड़प्पन को नाश करने वाले हैं। जिस तरह जवान स्त्री बूढ़े पति को आलिंगन करना नहीं चाहती, उसी तरह लक्ष्मी, उद्योगहीन, आलसी तकदीर को बड़ी समझने वाले और साहसहीन मनुष्य को नहीं चाहती।

इस जगत् में बिना शरीर को दुःख दिये सुख नहीं मिलता। मधुसूदन भगवान् ने समुद्र मंथन से थकी हुई भुजाओं द्वारा ही लक्ष्मी प्राप्त किया थे। इसलिये जिस मनुष्य की भुजा में परिश्रम करते करते व्यथा (पीड़ा) उत्पन्न हो जायगी। लक्ष्मी उसी की भुजा में स्वतः आकर करेगी।

आशा है, हमारे पाठक वृन्द अब आलस्य के घोर शत्रु होने की बात अच्छी तरह समझ गये होंगे। आगे चलकर हम उद्योग के परम बन्धु होने की बात इसी तरह समझायेंगे। पर मध्य में आलसियों के एक प्रश्न का उत्तर और देंगे।

आलसी और काहिलों को भाग्य या तकदीर पर बड़ा भरोसा रहता है। वे लोग पुरुषार्थ या तदबीर के सामने भाग्य या तकदीर को बड़ी समझते हैं और प्रायः कहा करते हैं कि:—"अगर हमारे भाग्य में होगा, हमारी तकदीर अच्छी होगी, हमने पूर्व जन्म में शुभ कर्म किये होंगे, तो हमारे बिना उद्योग किये ही बिना हाथ पाँव हिलाये ही, पलँग पर पड़े पड़े ही हमें सब कुछ मिल जायगा। लक्ष्मी हमारे कदमों में लोटेगी। हां यदि हमारा भाग्य ही न अच्छा होगा, हमने पूर्व जन्म में पुण्य न किये होंगे, तो हमारे हजारों यत्न करने पर भी हमें कुछ न मिलेगा। फल की प्राप्ति का हेतु प्रत्यत्न नहीं दीखता फल की प्राप्ति पूर्व कर्मानुसार होती है। अन्यथा नहीं, देखते हैं, किसी को थोड़ी ही मेहनत से बड़ा फल मिलता है और किसी को घोर परिश्रम करने पर भी खाने भर को नहीं मिलता और कोई थोड़ा सा भी उद्योग किये करोड़ों का मालिक बन बैठता है" बस आलसी अपने इसी विश्वास से घरोंमें पड़े रहते हैं। माता पिता यदि कुछ रकम छोड़ जाते हैं, तो जब तक वह रहता है। बेच बेचकर खाया करते हैं। आलसियों से उठकर पानी नहीं पिया जाता; कुत्ता मुंह में मूतता है। तो उसे भगाया नहीं जाता। हमें इस मौके पर आलसियों का एक किस्सा याद आया है, उसे हम अपने पाठकों के लिये यहां लिखते हैं।

एक बार एक मनुष्य ने कहा—"पोस्ती ने पी पोस्त, नौ दिन चले अढ़ाई कोस।"

दूसरे ने कहा कि-"अरे! पोस्ती न होगा, वह कोई डाक का हरकारा होगा। पोस्ती ने पी पोस्त, तो कूँडा के इस पार या उस पार और सुनिये:—

एक बाग में दो आलसी एक आम के पेड़ के नीचे लेट रहे थे। उनमें से एक की छातीपर एक आम पड़ा हुआ था, पर वह उसे उठाकर खा नहीं सकता था। इतने में उधर से एक सवार आ निकला। आम वाला आलसी बोला—"ओ भाई सवार! मेरी छाती पर एक आम पड़ा हुआ है, कृपया इसे मेरे मुंह में निचोड़ते जाइये सवार ने कहा— तू बड़ा ही आलसी है, जो अपनी छाती पर पड़ा हुआ आम भी उठाकर नहीं चूस सकता, दूसरे से आम निचोड़ने को कहता है।" यह सुनते ही दूसरे आलसी ने कहा—"बेशक बापू जी! यह बड़ा ही आलसी है। आज रातभर मेरे मुंह को कुत्ता चाटता रहा और मैंने इससे कहा कि जरा दुतकार दे, पर इसने "दुत" भी न किया। यह सुनकर सवार दोनों को लानत-मलामत करता हुआ चला गया। आलसियों की ये दशा होती है। तभी तो वे संसार में नरक से भी बढ़कर दुःख भोगते हैं।

आलसियों पर किसी कवि ने कहा है कि:—

दुनियां में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पर उठके कहीं जाना नहीं अच्छा॥
बिस्तर पे मिस्ल लाश पड़े रहना है अच्छा।

बन्दर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा ॥
रहने दो जमी पै मुझे आराम यहीं है।
छेड़ो न नक़शे-पा है मिटाना नहीं अच्छा ॥
उठ करके घर से कौन चले यार के घर तक।
मौत अच्छी है पर दिलका लगाना नहीं अच्छा ॥
धानी भी पहिनें जबकि कोई गैर पहिनाये।
उमरा को हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा ॥
सिर भारी चीज है इसे तकलीफ हो तो हो।
पर जीभ बिचारी को शताना नहीं अच्छा ॥
फांको से मरिये, पर कोई काम न करिये।
दुनियां नहीं अच्छी है जमाना नहीं अच्छा ॥
सिजदे से गर वहिश्त मिले दूर कीजिये।
दोजख ही सही सर का झुकाना नहीं अच्छा ॥
मिलजाय हिन्द खाकमें हम काहिलों कोक्या।
ऐ 'मीर'! फर्स रंज मिटाना नहीं अच्छा ॥

आलसी हाथ-पैर नहीं हिला सकते, इसी से भाग्य की आड़ लेते हैं।

धीमन्तो वन्द्य चरिता मन्यते पौरुषं महत्।
अशक्त पौरुषं कर्तुं क्लीवा दैवमुपासते ॥

बुद्धिमान् और माननीय लोग पुरुषार्थ को बड़ा मानते हैं, परन्तु नं पुन्सक-हिजड़े जो पुरुषार्थ नहीं कर सकते-दैव या प्रारब्ध की उपासना करते हैं।

प्रारब्ध कोई चीज न हो, यह बात नहीं। यह जगत प्रारब्ध और पुरुषार्थ में ही विद्यमान है। पूर्व जन्म के कर्म को "प्रारब्ध" और इस जन्म के कर्म को "पुरुषार्थ" कहते हैं। एक ही कर्म के दो नाम हैं। प्रारब्ध और पुरुषार्थ गाड़ी के दो पहिये के समान हैं। जिस तरह एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकती, उसी तरह बिना पुरुषार्थ प्रारब्ध फल नहीं दे सकता। जिस तरह कुम्हार मिट्टी के ढेले से अपनी इच्छानुसार चीजें बनाता है, उसी तरह मनुष्य अपने पूर्व जन्म के लिये हुये कर्मों का फल आप ही प्राप्त करता है। अचानक सामने आये हुये, खजाने के लेने के लिये भी, पुरुषार्थ की दरकार होती है। सोते सिंह के मुख में बिना उद्योग किये ही, हाथी या हिरन घुस नहीं जाते। तिलों में तेल होने पर भी बिना कोल्हू में पेरे नहीं निकलता। तात्पर्य यह है कि बिना पुरुषार्थ, हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से, प्रारब्ध का फल मिल नहीं सकता।

उद्योग की सर्वत्र जरूरत है। उद्योग करना मनुष्य का धर्म है; फल मनुष्य के हाथ नहीं, फल देना विधाता का काम है। कहा भी है कि

उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैति लक्ष्मी।
दैवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति ॥
दैवंनिहत्य कुरु पौरुष मात्मशक्त्या।
यत्नेकृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥

उद्योगी पुरुष सिंह के पास लक्ष्मी आती है, प्रारब्ध से लक्ष्मी आती है। ऐसी बात कायर लोग कहते हैं। दैव या प्रारब्ध को त्यागकर, अपनी सामर्थ्य भर उद्योग करो, उद्योग करनेपर भी यदि सिद्धि न हो, तो किसका दोष है? जिस प्रकार छोटे जलाशय में मेढ़क और भरे सरोवर में पक्षी आप से आप आते हैं, उसी तरह उद्योगी पुरुष के पास सारी सम्पत्तियां आप-से-आप आती हैं। अतः पुरुषार्थ करना प्रत्येक प्राणियों का परम धर्म है।

श्रीमती रानी साहब जी टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस बाराबङ्की में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

सद्गुरु-वाणी

तारीख १०-१०-५३ दिन शनिवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि गृहस्थाश्रम में मनुष्य को पूजा, दान करना परम आवश्यक है।

पूजा न चेज्जिन पतेः पदपंकजेषु।
दानं न संयत जनाय च भक्ति पूर्वम्॥
नो दीयते किमु ततः सदवस्थतायाः।
शीघ्रं जलाञ्जलिरगाध जले प्रविश्य॥

जिस गृहस्थाश्रम में, जिनेन्द्र भगवान् के चरणकमलों की पूजा नहीं है। तथा भक्ति भाव से संयमी जनों के लिये दान भी नहीं दिया जाता है, आचार्य कहते हैं कि अत्यन्त गहरे जल में प्रवेश करके उस गृहस्थाश्रम के लिये जल की अँजलि दे देनी चाहिये।

भावार्थ—बिना दान पूजन के गृहस्थाश्रम किसी काम का नहीं। इसलिये गृहस्थाश्रम में रहकर भव्य जीवों को अवश्य दानदेना चाहिये।

कार्यं तपः परमिह भ्रमता भवाब्धौ।
मानुष्य जन्मचिरादात दुःख लब्धे॥
सम्पद्यते न तदणुव्रति नापि भाव्यं।
जायेत चेद हरहः किलपात्र दानम्॥

चिरकाल से इस संसार रूपी समुद्र में भ्रमण करते हुये प्राणियों को कष्ट से इस मनुष्य भव की प्राप्ति हुई है। इसलिये इस मनुष्य जन्म में अवश्य तप करना चाहिये। यदि तप न हो सके तो, अणुव्रत अवश्य ही धारण करना चाहिये, जिससे प्रति दिन निश्चय से उत्तम आदि पात्रों को दान देता रहे।

जिस प्रकार बटोही को टोसा सुख देता है उसी प्रकार परलोक को जाने वाले मनुष्य को सत्यपात्र दान सुख देता है। मनुष्य का जीवन क्षणिक है पता नहीं कि इसका प्राण पखेरू इस संसार से कब प्रस्थान कर जाय। क्योंकि एक पद कहा है कि:—

जा रहा हूँ बढ़ा जा रहा हूँ चला।
पर नहीं ज्ञान है कि कहां शाम हो॥
किस जगह पग रुके किस जगह मग छुटे।
किस जगह शीत हो किस जगह धाम हो॥

प्रत्येक व्यक्ति अपने पुत्र कलत्रादिकों के भरण पोषण करने के लिये रातो दिन बहुत परिश्रम करके नाना प्रकार का दुःख उठाया करता है, अगम्य स्थानों में जाया करता है तथा

वाह्य कुटुम्बियों को आभ्यन्तरिक मानकर उनके पीछे अपना प्राण तक खो बैठता है, परन्तु शरीरावसान काल में जिनके लिये उसने अपना अमूल्य जीवन रत्न नष्ट किया, खाना पीना छोड़ कर रातों दिन कमाने के लिये दौड़ता रहा तथा यहां तक कि जिस शरीर को अच्छे - पौष्टिक पदार्थों से परिपुष्ट किया, इत्रादिक नानाप्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से सुगन्धित किया। वह शरीर एक कदम भी साथ नहीं देगा।

अतः यदि आप अपना साथी बनाना चाहते हैं तो सत्पात्र में दान करके धर्म रूपी बान्धव को सर्वदा के लिये निश्चल साथी बनालें। इसके अतिरिक्त इस संसार में कोई दूसरा साथी स्थिर रहने वाला लाखों करोड़ों रुपया व्यय करने पर भी नहीं मिल सकता। कहा भी है किः—

विद्युच्चलं किं धन योवनायुर्दानं।
परं किं च सुपात्र दत्तम्॥
कन्ठगतैरप्यसुभिर्न कार्यं किं किं।
विधेयं मलिनं शिवार्चा॥

बिजली के समान क्षणिक कौन २ सी वस्तुयें हैं? धन, यौवन (जवानी) और आयुर्बल। सबसे अच्छा दान कौन सा है? जो सत्पात्र में दिया गया हो। प्राण कन्ठ आने पर भी क्या २ करना चाहिये, और क्या२ नहीं करना चाहिये? पाप नहीं करना चाहिये और कल्याणकारी पुण्य करना चाहिये। इस पर एक दृष्टांत दिया जाता हैः—

एक राजा को पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभाव से ज्ञान प्राप्त हो गया। राज्य भोग भोगने पर भी सहसा उनकी वैराग्य भावना जागृत हो गई अतः उन्होंने निश्चय कर लिया कि यह राज्य किसी को देकर आत्म कल्याण करना चाहिये। परन्तु राज्य देने पर उन्होंने यह घोषणा कर दिया था कि तीन घन्टे के अन्दर जो व्यक्ति सब प्रथम हमारे पास आयेगा उसे हम अपना संपूर्ण राज्य दे देंगे साथ ही साथ उन्होंने गुणग्राही पुरुषों की परीक्षा करने के लिये अपने राजमहल की चाहारदीवारी अर्थात् उसके आगार में अनेक प्रकार के सुन्दर व सुगन्धित पुष्पों की मनोहरिणी वाटिका, खाने पीने के लिये उत्तमोत्तम सुमधुर फल, शयन करने के लिये मखमली गद्दों की बहुत सुन्दर शय्या, मनोरंजक के लिये नाटक व सिनेमा तथा रमण करने के लिये परम सुन्दरी रमणियों की व्यवस्था इस अभिप्राय से कर दिया था कि देखें कौन बुद्धिमान् पुरुष इस क्षणिक मोहोत्पादक वस्तुओं में न लुभाकर हमारे पास राज्य प्राप्त करने के लिये आता है।

इस अद्भुत समाचार को सुनते ही देश देशान्तरों से अनेक नवयुवक अपना अनुपम सौभाग्य समझकर आने लगे। राजद्वार पर अनेक द्वार पाल अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर खड़े थे। वे लोग आगन्तुक पुरुषों को मन मोहक समस्त वस्तुओं का परिचय भली भाँति करा देते थे। आगन्तुक जन यद्यपि राज्य प्राप्त करने के लिये ही अपने २ घर से प्रस्थान किये थे, पर यहाँ आकर मोहान्धकार में फँसने के कारण कुछ लोग वाटिका के सुन्दर फूलों को देखने लगे, कुछ लोग अच्छे २ फल तोड़कर खाने लगे तथा साथ में ले चलने के लिये गठरी बाँधकर रखने लगे, कुछ लोग मखमली गद्दों पर सोकर खुर्राटे लेने लगे, कुछ लोग नाटक सिनेमा

देखने लगे, कुछ लोग सुन्दरी रमणियों के साथ रमण करने में मग्न हो गये तथा कुछ लोग वहाँ रक्खे हुये हीरा मोती आदि रत्नों की राशि ले चलने के लिये इकट्ठा करने लगे। केवल एक बुद्धिमान् पुरुष जो कि सबसे बाद में आया था वह भूख प्यास से पीड़ित था, पर भोग पदार्थों का परिचय प्राप्त होने पर भी उसने कहा कि हम पहले राजा के पास जायँगे। सौभाग्य वश यदि कहीं राज्य हाथ आगया तब तो ये समस्त भोग जीवन पर्यन्त भोगने को मिलेंगे ही। ऐसा निश्चय करके वह तत्क्षण राजा के पास जाकर प्रणाम किया। अभी तक राजा के सामने कोई अन्य पुरुष नहीं आया था। अतः राजा ने आते ही प्रसन्न होकर उसे राज्य देकर राजतिलक किया। तीन दिन की निश्चित अवधि समाप्त हो गई, किन्तु पूर्व के आये हुये अज्ञानी मनुष्य अभी तक भोग में ही निमग्न थे। निदान में राज पुरुष आकर इन मूर्खों को आगार से बाहर निकालने लगे, परन्तु वे लोग बड़ी दीनता से कहने लगे कि भाई! जरा राजा से हमें मिल आने दो, क्योंकि हम इसी कार्य के लिए यहाँ आए थे। राज पुरुषों ने कहा कि नहीं, तीन दिन की अवधि समाप्त हो गई अतः तुम लोग राजा के पास नहीं जा सकते। फिर वे लोग निराश होकर अपनी २ गठरी जिसमें फल फूल तथा रत्नादिक बाँध रक्खे थे लेकर चलने लगे। लेकिन राज पुरुषों ने कहा कि तुम लोग यहाँ से एक पत्ता भी नहीं ले जा सकते। अवधि के अन्दर तुम्हें केवल व्यय करने का ही अधिकार है। इसके अन्दर चाहे तुम भोग करलो चाहे दान पुण्य करके धर्म संचय करलो। फिर क्या था? सभी लोगों को राज पुरुषों ने मार पीटकर बाहर निकाल दिया। वे लोग मधु मक्खी के समान कर मल २ कर पछताते हुए अपने २ घर वापिस चले गए।

इसी प्रकार हमें यह मनुष्य जन्म बड़ी कठिन तपस्या से प्राप्त हुआ है। इससे हम मुक्ति श्री (मोक्ष लक्ष्मी) को प्राप्त करके सर्वदा के लिये सुखी बन सकते हैं। परन्तु खेद है! कि हम सब भी इस थोड़ी सी आयु में उपरोक्त मूर्खों की भाँति विषय वासना के कीचड़ में फँसकर अपना अमूल्य नर रत्न नष्टकर रहे हैं।

ग्रामान्तरं व्रजति यः स्वगृहादूगृहीत्वा।
पाथेय मुन्नततरंस सुखी मनुष्यः॥
जन्मान्तरं प्रविशतोऽस्य तथा व्रतेन।
दानेन चार्जितशुभं सुखहेतु रेकम्॥

जो मनुष्य अपने घर से अच्छी तरह पाथेय (मार्ग में खाने के लिये भोजन) लेकर दूसरे गांव को जाता है वह मनुष्य जिस प्रकार सुखी रहता है उसी प्रकार जो मनुष्य परलोक को गमन करता है उस मनुष्य के व्रत तथा दान से पैदा किया हुआ एक पुण्य ही सुख का कारण है। इसलिये जो मनुष्य परलोक में सुख के अभिलाषी हैं उनको व्रतों को धारण कर तथा दान देकर खूब पुण्य का संचय करना चाहिये। संसार में काम भोग के लिये तथा धन के लिये अथवा यश के लिये किया हुआ प्रयत्न यद्यपि दैव योग से किसी समय निष्फल हो जाता है। परन्तु उत्तम आदि पात्रों के नहीं होते हुये भी हर्ष पूर्वक दान देवेंगे ऐसा दान का संकल्प ही पुण्य का करने वाला होता है। इसलिये ऐसे उत्तम दान का मनुष्यों को अवश्य ध्यान रखना

चाहिये। बैरी भी यदि अपने घर आवे तो सज्जन मनुष्य मधुर २ वचनों से तथा भोजनादि से उसका बड़ा भारी सन्मान करते हैं तो जो उत्तम सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय के धारी है ऐसे पात्र में सज्जन हर्ष पूर्वक क्या नहीं करेंगे अर्थात् उसको अवश्य ही नवधा भक्ति से आहार देवेंगे आचार्य कहते हैं कि सज्जन पुरुष को पुत्र के मरने के दिन भी उतना दुःख का देने वाला नहीं होता जितना कि मुनि के दान रहित दिन दुःख का देने वाला होता है, क्योंकि विद्वान् पुरुष दुर्दैव से किये हुये कार्य को उतना अनिष्ट नहीं मानते जितना कि अपने द्वारा किये हुये, कार्य को अनिष्ट मानते हैं। इसलिये विद्वानों को अपने करने योग्य दान रूपी कार्य अवश्य करना चाहिये।

जिस प्रकार किसी मकान में चन्द्रकान्त मणि लगी हुई है, जब तक उसके साथ चन्द्रमा की किरणों का स्पर्श नहीं होता, तब तक उनसे पानी नहीं झर सकता। इसलिये उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं करता, क्योंकि जिस समय चन्द्रमा के स्पर्श होने से उनसे पानी निकलता है, उस समय उनकी बड़ी भारी प्रतिष्ठा होती है उसी प्रकार धनी पुरुष के चित्त में जो जिन मन्दिर बनवाना, तीर्थ यात्रा करना आदि धर्म के कारण उत्पन्न होते हैं वे बिना पात्रदान के सत्य भूत नहीं समझे जाते, किन्तु पात्रदान से ही वे सत्य-समझे जाते हैं। इसलिए गृहस्थों को पात्रदान अवश्य देना चाहिए क्योंकि यह सबमें मुख्य है,

जो मनुष्य धन के होते भी दान देने में आलस करता है तथा अपने को धर्मात्मा कहता है वह मनुष्य मायाचारी है अर्थात् उस मनुष्य के हृदय में कपट भरा हुआ है, तथा उसका वह कपट दूसरे भव में उसके समस्त सुखों का नाश करने वाला है। जो मनुष्य धर्मात्मा पने के कारण दानादि नहीं देते, और अपने को धर्मात्मा मानते हैं। उनको तिर्यञ्चगति में जाना पड़ता है. वहाँ पर उनको नाना प्रकार के भूख प्यास सम्बन्धी दुःख भोगने पड़ते हैं। इसलिये मनुष्य को कदापि मायाचार नहीं करना चाहिए।

गृहस्थियों को अपने धन के अनुसार एक ग्रास अथवा आधा ग्रास व चौथाई ग्रास अवश्य दान देना चाहिए, क्योंकि इस संसार में उत्तम पात्र दान का कारण इच्छानुसार द्रव्य कब किसके होगा।

भावार्थ—इच्छानुसार द्रव्य संसार में किसी को नहीं मिल सकता क्योंकि पुताधिपति हजार पति होना चाहता है। तथा हजार पति लक्षाधिपति, लक्षाधिपति करोड़ पति इत्यादि रीति से इच्छा की कहीं भी समाप्ति नहीं होती इसलिए ऐसा नहीं समझना चाहिए कि मैं, बहुत धनी हो जाने पर दान करूँगा। दान में श्रद्धा की विशेषता कही गई है अतः श्रद्धा पूर्वक गरीब मनुष्य यदि एक ग्रास भी सत्पात्र दान देता है, तो वह महान् पुण्य का बन्ध कर लेता है।

श्रीमती रानी साहब जी टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस बाराबंकी में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख ११-१०-५३ दिन रविवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि प्राण रहते जीव हिंसा कभी नहीं करना चाहिये:—
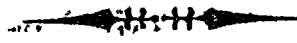
धर्मशास्त्रों में अनेक विषयों में मतभेद है परंतु अहिंसा परमो धर्मः इस वाक्य को सभी धर्म शास्त्र मानते हैं इस विषयमें कोई मतभेद किसी का नहीं है संसार में जीव हिंसा से निवृत्त करने के समान और कोई धर्म नहीं है फिर भी जाने क्यों अज्ञानी लोग अपने पेट के लिये पराई जान लेते हैं। धम्मपद में लिखा है कि सब मनुष्य दण्ड से डरते हैं सभी मनुष्य मौत से भयभीत होते हैं ध्यान रखो तुम भी उन्हीं के समान हो इस लिये किसी की हिंसा न करो न हिंसा होने दो और न हिंसा की भावना करो जो मनुष्य अपनी तरह सुख की इच्छा करने वाले प्राणियों को अपने लिये हिंसा करता है उसे मृत्यु के पीछे सुख नहीं मिलेगा। जो किसी की भी हिंसा नहीं करते हैं वे अटल सुख का भोग इस भव में तथा परलोक में कोई भी शत्रु नहीं रहेगा ऐसा ही हमारे धर्म शास्त्रों में भी कहा है जो सब तरह की हिंसाओं से विरत है कष्ट सहिष्णु है जो आश्रय देने वाले हैं वही स्वर्ग जाते हैं जो मांस खाता है जिस का मांस खाता है उन दोनों का अँतर देखो एक को तो क्षण भर के लिये सुख होता है दूसरा अपने प्राणों से जाता है शेख सादी ने भी कहा है।

जेरे पायन कर विदानी हाले मोर।
हम चोहा लेतस्त जेरे पाये पीर ॥

अर्थात् तुम्हारे पाव के नीचे दबी हुई चींटी का वही हाल होता है जो यदि तुम हाथी के पांव के नीचे दब जाओ तो तुम्हारा हाल हो, दूसरे के दुःख से तुलना किये बिना अपने दुःख का हाल मालूम नहीं हो सकता है। मतलब यह है कि हमें सभी जीवों को अपने समान समझना चाहिये पराये प्राणों को अपने प्राणों के समान समझना चाहिये दूसरे को कष्ट देते समय अपने ऊपर आने वाले कष्ट का विचार करना चाहिये कि जो हम को जिबह करे तो हमारा क्या हाल होगा। अगर मनुष्य यह विचार अपने हृदय में रखे तो किसी जीव को कोई कष्ट न हो किसी तरह का और भी जुल्म न हो कबीर दास बहुत सुन्दर दोहा कहा है कि:—
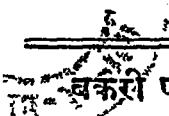
बकरी पाती खात है ताकी काढी खाल।
जो बकरी को खात है तिनको कौन हवाल ॥१॥
मुर्गी मुल्लासों कहै जिबह करत है मोहि।
साहेब लेखा मांगसी संकट परिहै तोहि ॥२॥
गला काटि कलमा भरे क्या कहै हलाल।
साहेब लेखा मांगसी तवहोसी कौन हवाल ॥३॥

इसी तरह और भी महात्माओं ने अहिंसा का उपदेश दिया है अतएव प्रत्येक मनुष्य को निःशंक होकर अहिंसक बनना चाहिये इसी में कल्यान है इस संसार पर यदि विचार पूर्वक गम्भीर दृष्टि डाली जाय तो मालूम होगा कि इसमें छन्दों अर्थात् दो विरुद्धगुणों की प्रतीत होगी जैसे जड-चैतन्य, प्रकाश-अँधकार, दिन रात, गर्मी सर्दी, सुख दुःख, और हिंसा अहिंसा, इत्यादि इनको फिर छान बीन की दृष्टि से देखा जाय तो एक गुण दूसरे से भला और प्रवल मालूम होगा। भला और प्रवल होने से एक देवी गुण कहा जाता सकता है और दूसरा आसुरी गुण, अब विचार करना चाहिये। कि उपरोक्त गुणों में से कौन देवी गुण है और कौन आसुरी जड और चैतन्य ! इन में से चैतन्य का जड पर अधिकार होने से चैतन्य देवी गुण है जड आसुरी गुण कहा जा सकता है। प्रकाश और अँधकार ! प्रकाश की सदैव अँधकार पर उसे नाश करने के कारण प्रवलता रहती है। परन्तु अँधकार प्रकाश को कभी भी नाश नहीं कर सकता। इस लिये प्रकाश देवी गुण और अँधकार आसुरी गुण है। प्रकाश (सूर्य) दिन का कारण होने से दिन देवी गुण और रात्रि आसुरी गुण है। गर्मी सर्दी गर्मी सूर्य का अङ्ग होने से देवी गुण और रात्रि आसुरी गुण है हिंसा और अहिंसा, हिंसाका सहायक अँधकार होने से हिंसा आसुरी गुण और अहिंसा उसके विपरीत देव गुण है अहिंसा देवी गुण होने के कारण हिंसा से बली और भली है अपने २ काल में हर एक गुणों की प्रवलता मालूम होती है इससे कदापि सिद्ध नहीं हो सकता कि आसुरी गुण देवी गुण से प्रवल है देवी गुण का उत्थान होते ही आसुरी गुण अपने से आप दब जाता है। यहाँ पर एक बात और विचारणीय है कि इस विश्व में आसुरी गुण की व्यापता मालूल होती है और देवी गुण समय समय पर उसके नाशके लिये प्रगट हुआ करता है। सारा विश्व अँधकार से अच्छा दिन है और सूर्य उसके नाश के लिये प्रगट हुआ करता है। इसी तरह हिंसा मयविश्व को अहिंसा मय बनाने के लिये महात्मा गांधी का आगमन यहाँ पर हुआ था। आपने आते ही आते पहिले पहल अहिंसा की परीक्षा दक्षिण अफ्रीका में ली और उस कसौटी पर कसने से यह सच्ची उतरी तब उन्होंने इस शस्त्र को लाकर भारत पर चलाया। इस शस्त्र के चलते ही पहिले पहल अधिकांश में भारत के नेतागण इस पर मुग्ध होगये और फिर धीरे २ इस की जड़ समस्त भारत वासियों मे जमने लगी बस क्या था यहां पर अब हिंसा और अहिंसा में गहरा संग्राम छिड़ गया अहिंसा की लहरें चारों ओर कल्लोल करने लगे और राज्य सिंहासन डांवा डोल होने लगा कहीं २ राज्यगणों के प्रति संघर्षण से हिंसा की ज्वाला धधक उठी महात्मा गांधी उस समय अपने मंचपर थे उन्होंने अहिंसाको हिंसा के रूप में परिणत नहीं होने दिया। उसे रोकने के लिये कठिन उपवास किये जिससे

जनता फिर शांत होकर अहिंसक बनगई समझौते के लिये नेतागण बुलाये गये वहाँ पर और विलायन में बड़ी सभायें हुई जिसके परिणाम स्वरूप कुछ मांगें पूरी कर दी गई परन्तु नेतागण पूर्णरूपेण संतुष्ट नहीं हुये, इसी बीच में सरकार और जनता ने अहिंसा को समूल नष्ट कर देना चाहा जिन २ स्थानों में अहिंसा नष्ट हुई वहाँ पर हिंसा ने उग्ररूप धारण कर लिया, सामूहिक अहिंसा का स्थान सामूहिक हिंसा ने ले लिया। अहिंसा स्वभावतः शरीर से अनासक्त और निर्भय रहते हैं, हिंसक होते ही उन्होंने आग-बबूला होकर मिनटों में जिले पर जिले राज्य सत्ता से हीन कर दिये गये यदि कहीं यह सार्वभौम हो जाती तो उसी कालमें एक दूसरा राज्य स्वाधीन दृष्टि गोचर होता परन्तु होनहार दूसरा ही था, वह इस कार्य को पूर्णतः अहिंसा से कर वाना चाहता था, और अन्त में वह उससे पूर्ण हो गया यह सब अहिंसाके उपयोगका परिणाम है और इस से हिंसा पर अहिंसा की विजय सिद्ध है। महात्मा गाँधी चले गए पर अहिंसाका बीज छोड़ गए यह भी बतलाते गए कि अहिंसा के वृक्ष में कैसे २ मीठे फल लगते हैं, सूर्य डूब जाता है पर उसका उतराधिकारी अग्नि हिमाच्छादित संसार के हिम भय अन्धकार को नाश करने के लिए रहता है, निराश्रय प्राणियों पर हिंसा की गड़गड़ाहट होते ही तुरन्त ही अहिंसा की अग्नि प्रज्वलित करना चाहिए वह तुरन्त ही हिंसा रूपी हिम भय अन्धकार को नष्ट करने में समर्थ होगा, उसको खूब भभकाने के लिये त्याग की आँधी लानी चाहिये तब देखिये कि वह क्या रङ्ग लाती है हिंसा को झकमार कर अहिंसा के सामने शिर झुकाना पड़ेगा या ऐसी परिस्थितियां हो जायेंगी कि हिंसा का गला आपसे आप छुट जायगा। जन साधारण के देखने पर यह अविश्वस्नीय सा मालूम देता है कि एक अहिंसक की विजय हिंसक के ऊपर कैसे हो सकती है उसको यह ऐसा ही असम्भव सा प्रतीत होता है। जैसा कि द्वन्द युद्ध में अस्त्र शस्त्र हीन व्यक्ति की शास्त्रधारी के सन्मुख हो सकती है हिंसक युद्ध में अवश्य अस्त्र शस्त्र हीन हार जायगा परन्तु यदि वह अहिंसा का आश्रय लेकर डटकर खड़ा हो जाय तो कभी भी हिंसक का हाथ उस पर नहीं उठैगा। कुत्ते या बन्दर को देखिये। यदि कोई उनसे डरकर भागै तो वे अवश्य काट लेंगे परन्तु यदि वह डटकर खड़ा हो जाये तो वे थम जायेंगे, सिंह जैसा हिंसक पशु भी ऐसे मनुष्य का बाल बांका नहीं कर सकता जो उसके सामने निर्भय होकर शान्त चित्त से खड़ा हो जाता है, हिंसा का उद्गम मनुष्य का क्रोध से भरा हुआ मन होता है। निर्भय और शान्त चित्त मनुष्य की शान्ति क्रोधी मनुष्य के मन में ब्रेक (रोक) का काम करती है जिससे उसका चित्त भी शांत होकर हिंसक विचार उसके नष्ट हो जाते हैं। यह एक ऐसा विषय है जिसको कोई भी परीक्षा करके देख सकता है यहां भारत काल में कंस एक बड़ी नीच प्रकृति का हिंसक राजा हो चुका है। उसकी बहिन का जब पाणिग्रहण हो चुका तब आकाशवाणी हुई कि तेरा काल इसी के उदर से जन्म लेगा, वह तुरन्त तलवार खींचकर अपनी बहिन का शिर छेदने को तैयार हो गया उसके पति के शांति चित्त से समझाने के कारण

हँ ठंडा हो गया परन्तु उसको उसने कारागार में बन्द कर दिया अहिंसकता की लड़ाई में हिंसक द्वारा ऐसे ही दण्ड भोगना अहिंसक की तपश्चर्या है। और अहिंसा भगवान का गुण होने के कारण यह हिंसक व्यक्ति की लड़ाई भगवान के प्रति समझी जा सकती है, मनुष्य का मन उसके शरीर भर में सीमित है जैसे मच्छर आदि यदि उसके किसी अङ्ग में बैठकर काटने लगें तो अनायास हाथ पहुँचकर उसकी बाधा को नष्ट कर देता है इसी तरह भगवान जिनका मन विश्वव्यापी है। अपने अहिंसक भक्तों के दुःख निवारणार्थ हिंसकों को दूर करने के लिये कोई न कोई कारण उपस्तित कर देते हैं, अन्त में कंश के अत्याचार से महाराज कृष्ण का जन्म हो गया और वह उनके हाथ से मारा गया। अत्याचारी की कभी भी विजय नहीं हो सकती है। वह सदैव पराजित ही होता रहता है। अर्थात् अहिंसा की सदैव जीत होती है।

महात्मा गाँधी ने भारत के उद्धारार्थ अहिंसात्मक सत्याग्रह का आयोजन किया इसमें सत्याग्रहियों को बड़ी विपति उठानी पड़ी और हजारों के जीवन समाप्त हो गये इन सत्याग्रहियों के अहिंसक चीत्कार के प्रभाव से मदान्ध वृटिश साम्राज्य को पश्चिम में दो बार दुर्दमनीय शत्रु से लड़ना पड़ा जिससे उसके अङ्ग प्रति अङ्ग शिथिल हो गये और भारत वर्ष में भी अहिंसात्मक सत्याग्रहियों में हिंसात्मक देविष की उत्पति होते देखकर उन्हें भारत को स्वतन्त्र करना पड़ा। उपरोक्त घटनाओं से स्पष्ट तथा प्रतीत होता है। कि हिंसकों का नाश हिंसक उपायों द्वारा ही हो सकता है। प्रकृतियां परमात्मा को अहिंसकों के प्रति अन्याय स नहीं हो सकता इसलिये किसी न किसी रूप हिंसकों के परास्त करने से लिये एक प्रबल द्वन्दी की उत्पति हो जाती है। अहिंसा यह है कि उसके प्रति अन्यायकारी हिंसक के मुँह में थपेड़ा मारने के लिये वह एक प्रबल दल की उत्पति कर देती है। इसलिये प्रकृति के नियमानुसार देश में अहिंसक वातावरण के रक्षार्थ अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित एक बड़ी शक्तिशाली सेना होना चाहिए। जिसमें सम्पूर्ण समाज को सुख-शांति की प्राप्ति होती रहै, इस समय भारत की वही दशा है जैसे किसी व्याधि ग्रसित मनुष्य के रोग को वैद्यगण असाध्य समझकर छोड़दें और दूसरे सहानुभूति रखने वाले वैद्य उसका ठेका ले लें सबसे बड़ी व्याधि भारत को जो सता रही है। वह गरीबी है। दरिद्रता के कारण बहुसंख्यक प्राणी बहुत पीड़ित हो रहे हैं सरकारी वर्ग इस रोग को दूर करने में असफल हो रहे हैं। देश में धनाढ्य व्यक्ति बहुत हैं यदि वे चाहैं तो संगठित रूपसे मिलकर निर्धनता दूर कर सकते हैं राणाप्रताप जिस समय धनाभाव के कारण स्वाधीनता के रक्षा करने में अपने को असमर्थ समझने लगे थे उस समय श्री भामाशाह जैन ने आकर उन की सहायता की थी जिससे वह स्वतन्त्र रह सके और देशके इतिहास में उन महापुरुषों के नाम अभी तक स्वर्णाक्षरों से निर्मित हैं। इस लिये धनाढ्यों को प्रसन्नता पूर्वक दरिद्रता निवारण के लिये अपनी गाढी कमाई का द्रव्य खर्च करना चाहिये इस धनसे बेकारों, अनाथों, विधवाओं, भिखमंगों को रोटी और वस्त्र दिये जावें तो देशका बहुत बड़ा उपकार हो सकता है।

श्रीमती रानी साहब जी टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस बाराबङ्की में छपाया

कृपया इसे संभाल कर रखिये।

टिकैतनगर में

तारीख १२-१०-५३ दिन सोमवार को

श्री जैनाचार्य १०८ देशभूषण महाराज जी ने अपने प्रवचन में कहा कि श्रद्धा के बिना धर्म कर्म नहीं हो सकता है।
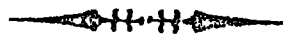
वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्।
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः॥
आत्मैक बोधेन विनाऽपि मुक्तिर्न।
सिध्यति वर्ष शतान्तरेऽपि॥

अर्थ—बिना आत्म बोध के सैकड़ों वर्षों तक शास्त्र बाचने पर, सत्कर्म करने पर तथा देवताओं को भजने पर भी मुक्ति कभी नहीं मिल सकती।

हे जीवो! तुमने अनेकों प्रकार का शास्त्र स्वाध्याय किया, अनेक देवताओं की पूजा-आर्चा किया, अनेक तीर्थों में गया तथा विविध प्रकार के देवताओं के सामने मस्तक झुकाया, पर क्या तुम्हारे मन का मैल गया? तुम्हारे मन में सच्ची श्रद्धा सच्चा ज्ञान तथा सच्चा विश्वास न होने के कारण देखा देखी किये हुये तुम्हारे सकल सत्कर्म निष्फल हुये। आपने बताया कि तुम हजारों बार देव के दरवाजे पर अपना माथा पटको दान दो तथा गुरुओं के सामने शिर झुकाओ, पर रुचि के बिना उपरोक्त सभी देव, गुरु तथा शास्त्र पत्थर स्वरूप ही हैं। देखो यदि लाखों रुपये का घन्टा ले आओ, पर यदि उसमें दो चार आने का छोटा लट्टू न लगाया जाय, तो जिस प्रकार वह घन्टा निरर्थक रहकर एक शब्द भी बोलने को समर्थ नहीं हो सकता, उसी प्रकार श्रद्धा व विश्वास के बिना सम्पूर्ण शास्त्र पुराण तथा दान धर्म व्यर्थ हैं।

धर्म की प्राप्ती के लिये जब तक विह्वल हो कर प्रेम न प्रकट किया जाय, भगवान की प्राप्ती के लिये भक्ति रस में लीन होकर आंखों से जब तक करुणाश्रु धारा न बहाई जाय तब तक भगवान् की प्राप्ति व सच्चा सुख कदापि नहीं मिल सकता। प्रेम के ऊपर एक दृष्टान्त दिया जाता है।

एक सेठ की स्थिति बहुत खराब हो गई। लाखों करोड़ों की उसकी सम्पत्ति देखते देखते नष्ट हो गई। यहां तक की खाने का भी जब ठिकाना नहीं रहा। तब उसने कुछ शेष धन अपनी धर्म पत्नी को देकर कहा कि प्रिये! तुम

धनोपार्जन के लिये बाहर जाते हैं। और तब तक तुम इस धन से अपना भरण-पोषण करना परिस्थिति विपरीत देखकर किसी प्रकार उसने अपने प्यारे प्रीतम के वियोग जन्य दुःख को सहन करना स्वीकार किया। पति के परदेश चले जाने पर कुछ समय के पश्चात् उसका धन समाप्त हो गया। उसका चरित्र परम निर्मल था। दो एक दिन तक तो उसने अनशन करके दिन बिता दिया, पर अन्त में उसे क्षुधा ने उसे उद्योग करने को प्रेरित किया। उसके पास भिक्षावृत्ति के अतिरिक्त कोई साधन उदरपूर्ति के लिये नहीं रहा अतः वह वहां से निकलकर कुछ दूर आगे जाकर एक नगर में भिक्षा मांगकर समय बिताने लगी। दिन भर भिक्षा मांगकर सायंकाल वह एक धर्मशाले में ठहर जाया करती थी। कुछ समय व्यतीत होने पर उसका पति देव बहुत सा धन साथ में लेकर परदेश से चलकर उसी धर्मशाले में आ पहुँचा जिसमें उसकी धर्मपत्नी भिक्षा मांगकर समय व्यतीत कर रही थी। जिस दिन वह उस धर्म-शाले में आ पहुँचा उस दिन दुर्भाग्यवश उसकी धर्मपत्नी को कुछ भी खाने को नहीं मिला। कुछ रात्रि बीतने पर जब उसे अत्यधिक भूख लगी तब वह उसकी वेदना से व्यथित होकर धर्मशाले के प्रत्येक यत्रियों से कुछ भोजन माँगने लगी। किन्तु समय का फेर था, अतः किसी ने कुछ नहीं दिया। अन्त में वह फेरी लगाते २ अपने पति के पास जा पहुँची और कुछ खाने को मांगने लगी। किन्तु इसके पति ने भी इसे पर जानकर कुछ नहीं दिया। निदान में वह अपना पेट लेजाकर कहीं पड़कर रात भर तड़पती रही इसके पति ने यद्यपि इसके खाने के लिये भांति-भांति के मेवे मिष्टान्न लाये थे, इसके पहनने ओढ़ने के लिये अच्छी २ साड़ियाँ तथा कीमती कपड़े लाये थे, किन्तु अपरिचित्त होने के कारण इसमें रुचि न होने से इसके पति ने इसे मिठाई की एक डली भी नहीं दिया। प्रातःकाल सभी लोग अपने अपने अभीष्ट स्थान को प्रस्थान कर दिये। परदेश से आये हुये सेठ अपने ग्राम में जाकर अपनी धर्मपत्नी को ढूँढ़ने लगे, पर ग्राम वासियों ने कहा कि आप की सहायता न मिलने के कारण चारों ओर से निराश होकर आपकी धर्मपत्नी अमुकनगर के धर्मशाले में रहती है। तथा किसी तरह से अपना भरन पोषण करती हैं। सेठ जी उल्टे पांव उसी नगर के धर्मशाले में वापिस आये, जहां कि वे रात्रि में ठहरे थे। पूछताछ करने पर पता चला कि इनकी धर्मपत्नी दर दर भिक्षा माँगकर पेट भरती है। और इन्होंने ही उस दिन रात्रि में भूख से पीड़ित होकर हमसे कुछ खाने के लिये मांगा था, पर परिचय व रुचि न होने के कारण हम कुछ नहीं दे सके। जिस समय दोनों को यह बात मालूम हुई कि उस दिन रात्रि में हम दोनों एक दूसरे को न पहचानने के कारण परस्पर में दुःख उठाये, उस समय दोनों एक दूसरे के गले में मिलकर फूट-फूटकर रोने लगे तथा अपनी खोटी भाग्य पर बारम्बार पश्चात्ताप करने लगे, अन्त में दोनों अपने घर पर गये और वहां जा कर एक दूसरे को प्यार करते हुये लौकिक सुख भोगने लगे।

ऐ मेरे धर्म बन्धुओं! इस दृष्टान्त से हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। कि जब एक

साधारण मनुष्य परिचय व रुचि न होने के कारण पास में विद्यमान रहते हुये भी दोनों दम्पति आपस में नहीं मिल सके तथा एक दूसरे का समाचार जानकर सुख नहीं उठा सके तब रुचिके अभाव से सर्वशक्तिमान् जगन्नियन्ता उस परब्रह्म परमात्मा के निकट जाकर तथा उनके समान बनकर हम कैसे सुख उठा सकेंगे। श्रद्धा के बिना भगवान की भक्ति करने से केवल दिखावा मात्र ही रह जाता है। तांबे के ऊपर सोने का मुलम्मा चढ़ाने से सराफ द्वारा परखे जाने पर उसकी कीमत पूरी सोने की नहीं मिल सकती है प्रत्युत मुलम्मा का माल बेचने वाले को लज्जित होना पड़ता है अतएव जो भी कार्य हो वह सच्ची श्रद्धा और सच्ची भक्ति के द्वारा ही पूर्ण करना चाहिये तभी लाभदायक सिद्ध हो सकता है, आजकल देखा देखी बहुत से नर-नारी मेलों में जाकर पूजन भजन बड़े प्रेम से करते देखे जाते हैं। परन्तु उनको यही नहीं मालूम है। कि हम जिनकी पूजा उपासना कर रहे हैं। वह कौन थे। और कैसे उनकी इतनी प्रसिद्ध हो गई याद इस विषय में वह ऊहा पोह करलें तो यह भेड़िया धसान मिट जायगा, और सच्चा हाल जान लेन पर उनकी वह भक्ति वहां से हट कर भगवान् के चरणों में बड़ी विनय के साथ लग जायगी। जब तक सानदार वस्तु का यथार्थ बोध न हो जायगा तब तक केवल देखा देखी इस में लवलीन होना कुछ भी कार्य कारी नहीं है अतएव सच्ची श्रद्धा और सच्चे विश्वास के साथ वस्तु के यथार्थ बोध प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिये। भगवान् के गुणों का स्मरण करके उनके गुणों को जान कर ही भक्ति करने से उस में तल्लीन हो जाने से अनेक भक्त जनों को मन चाही वस्तु की प्राप्त हुई है। विपुलाचल पर्वत पर भगवान् महावीर स्वामी का शमोसरण आया जान कर एक मेढक अपने मुख में एक कमल की पांखुड़ी दबा कर भगवान् के दर्शनों को चल दिया परन्तु राजा श्रेणिक हाथी पर चढ़े हुये भगवान् महावीर की बंदना करने के लिये जा रहे थे उस हाथी के पैर के नीचे पड़कर वह मेढक मृत्यु को प्राप्त हो गया और तत्काल देवलोक में जन्म धारण कर लिया और उसी समय वह देव भगवान् महावीर के दर्शनों के लिये विपुलाचल पर्वत पर आ गया जब राजा श्रेणिक शमोशरण में पहुँचे भगवान् की बंदना पूजाकर के मनुष्योचित स्थान पर बैठे तो देखा कि एक देव सुन्दरा कृति धारक जिस के मुकुट में मेढक का चिन्ह है सभा में विराजमान है भगवान से राजा श्रेणिक इस विस्मय कारक देवका विवरण पूँछा, भगवान् ने उत्तर में कहा कि राजन् यह थोड़ी देर पहिले पशु पर्याय धारी मेढक था एक कमल की पांखुड़ी मुख में दबाकर पूजन के लिये आ रहा था। तुम्हारे हाथी के पैर के नीचे दबकर मर गया। और सच्ची भक्ति श्रद्धा के कारण देवलोक में जाकर उत्पन्न हो गया इसीलिये यह मेंढक का चिन्ह है कहने का प्रयोजन यह है कि सच्ची श्रद्धा और भक्ति ही लाभदायक होती है सच्ची श्रद्धा भक्ति का ही यह प्रभाव हुआ कि उस मेंढक की पशु पर्याय नष्ट हो गई और उसे देवलोक के सुख प्राप्त हो गये—इसी तरह से उत्तरोत्तर श्रद्धा न बढ़ाने से संसार से मुक्ति मिलने में सुलभता हो जाती है बिना सच्चे ज्ञान श्रद्धान

...ुक्ति मिलना बड़ी दूर की बात है। बिना संसार रूपी जीव नष्ट किये मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है जैसे बीज जला देने से फिर अँकूरा नहीं निकल सकता है। यह मनुष्य शरीर बड़ी मुश्किल से मिला है। बार २ मिलना इसका दुष्कर है आयु थोड़ी है। उसमें बालपना और वृद्धपना का समय निकाल देने पर और भी आयु के समय कम हो जाते हैं फिर यदि रात्रि का समय सोने में व्यतीत हो जाने के कारण वह भी निकाल दिया जाय तो बिलकुल थोड़ी आयु बाकी रह जाती है तो इतनी थोड़ी आयु को भी सच्ची श्रद्धा और विश्वास के साथ भगवान् प्राप्ति के लिये प्रयत्न न किया तो फिर कौन सा समय आवेगा जब भगवान की भक्ति के लिये समय मिल सकेगा। मनुष्य भव के सिवाय और दूसरी गति में भगवान की भक्ति मिलना ना मुमकिन है। कहा है:—

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्यापुनर्मही।
एतत् सर्व पुनःलाभं न शरीरं पुनःपुनः॥

धन फिर मिल सकता है। मित्र भी फिर मिल सकते हैं स्त्री, पृथ्वी इत्यादि वस्तुयें पुनः पुनः मिल सकती है परन्तु मनुष्य शरीर बार २ नहीं मिल सकता है।

तरङ्ग तरलाँ लक्ष्मी मायुर्वायु वदस्थिरम्।
बुद्धिमन्तश्च पश्यन्ति अभुवद् भङ्गुरंवपुः॥

लक्ष्मी नदी की तरङ्गों के समान है। आयु हवा के समन अस्थिर है बुद्धिमानों को विचार करना चाहिये कि इसी तरह यह शरीर जल के बुदबुदा के समान नश्वर है।

प्रसवन्नवभिर्द्वारैः पूति गन्धान्निरन्तरम्।
क्षणक्षयं पराधीनं शश्वन्नर कलेवरम्॥

इस शरीर के नवद्वारों से निरन्तर मल निकलता रहता है इसे चाहे जितनी पवित्र और सुगन्धित वस्तुओं से लेपन किया जावे। परन्तु यह मनुष्य का शरीर पराधीन है। और क्षणक्षण में क्षीण होता रहता है।

अचला कमला कस्य, कस्य मित्रं महीपतिः।
शरीरंच स्थिरंकस्य, कस्यवश्या वराङ्गना॥

लक्ष्मी चंचल है यह कभी किसी के पास सदैव नहीं रही राजा किसी का मित्र नहीं है। इसी तरह यह शरीर किसी का स्थिर नहीं रहता है; जैसे वेश्या किसी एक से वशीभूत नहीं रहकर अनेकों को अपने चंगुल में फँसा २ कर मारा करती है।

सर्वा शुचि निधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः।
शरीर कस्यापिकृते मूढा पापाति कुर्वते॥

यह शरीर सर्वथा अशुचि अपवित्रता का स्थानक है कृतघ्नी है इसके साथ चाहे जितना उपकार किया जावे इसे चाहे जितनी उत्तमोत्तम वस्तुयें भोगने को दी जावें, चाहे जितना हृष्ट पुष्ट किया जावे। परन्तु दिन रात पाप ही करता रहता है। इससे कोई उत्तम लाभ की आशा करना व्यर्थ है।

ला० कृशचन्द जी जैन टिकैतनगर निवासी ने जनता प्रेस बाराबङ्की में छपाया